हिन्दी समिति ग्रन्थ-माला--२२८

भारत में मत्स्य-पालन

लेखक

डा० ज्ञान प्रकाश दुबे, एम. एस-सी., डी. फिल.,

संचालक, मत्स्योद्योग मध्य प्रदेश

तथा

गिरिजाकुमार चतुर्वेदी, एम. एस-सी., विशारद, डी. एफ. एस-सी. (बम्बई)

सहायक संचालक, मत्स्योद्योग मध्य प्रदेश
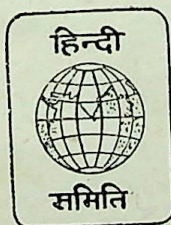
उत्तर प्रदेश शासन,

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन,

महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

भारत में मत्स्य-पालन

● प्रथम संस्करण, अक्तूबर १९७४
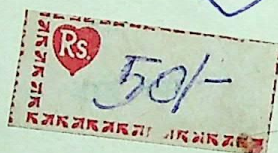
मुद्रक

भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी

१/८–७४

शुभाशंसा

वसंतराव उयके

मंत्री, कृषि, खाद्य एवं
आदिमजाति कल्याण,
भोपाल, मध्यप्रदेश

भारत के कृषि उद्योग के विकास में बुद्धिजीवी एवं प्रबुद्ध लेखकों के सहयोग व निर्देश की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है । बढ़ती हुई आबादी में खाद्य-समस्या को हल करने के लिए विभिन्न पहलुओं व पक्षों के अध्ययन की भी आज बहुत आवश्यकता है । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश के मत्स्य-विभाग के संचालक डॉ० ज्ञानप्रकाशदुबे एवं सहायक संचालक श्री गिरिजाकुमार चतुर्वेदी ने मत्स्य-पालन विषय पर ग्रन्थ लिख कर मत्स्योद्योग विकास की दृष्टि से बहुत उपयोगी कार्य किया है ।

मत्स्य-पालन के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए ग्राम-पंचायतों तथा जनसाधारण के बीच मत्स्य-पालन विकसित किये जाने के संबंध में लेखकों ने वैज्ञानिक अध्ययन तथा अपने अनुभवों का भी उपयोग किया है । निश्चय ही, इस ग्रन्थ के द्वारा शासन के अन्य अधिकारी, विशेषज्ञों तथा विद्यार्थियों को भी प्रेरणा मिलेगी ।

ग्राम-पंचायतों तथा निजी मत्स्य-पालकों के लिए भी यह ग्रन्थ उपयोगी है । पंचायतों के अपने क्षेत्र में मत्स्य-पालन के उद्योग विकास के लिए यह प्रथम हिन्दी ग्रन्थ है जो उन्हें मत्स्य-पालन के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन करेगा और उपयोगी सिद्ध होगा ।

लेखक द्वय बधाई के पात्र हैं ।

वसंतराव उयके

प्रकाशकीय

मत्स्यपालन, व्यावसायिक दृष्टि से आज संसार के प्रायः सभी देशों में महत्त्व रखता है। सर्वत्र आपको मत्स्य-भोजी व्यक्ति मिलेंगे। पोषक तत्वों और पदार्थों से संयुक्त होने के कारण भी भोजन में इसकी उपयोगिता और आवश्यकता पर ध्यान दिया जा रहा है। इस सन्दर्भ में, जहाँ सर-सरिताएँ, तड़ाग तथा जल-संचय के अन्य साधन हैं, मत्स्य-पालन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और नित्य-प्रति अनुसंधान किये जा रहे हैं।

भारत भी नदियों का देश है। यहाँ अनेक क्षेत्रों और प्रदेशों में प्रचुर जल उपलब्ध है। अतः स्वाभाविक है, यहाँ के लोगों का ध्यान भी मत्स्य-पालन की ओर जाये। आज इस क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में लोग लगे हुए हैं। शासन भी सक्रिय है। प्रायः सभी प्रदेशों में इसके विकास और अनुसन्धान के लिए मत्स्य-विभाग कार्यरत हैं। अतः आवश्यक है, इस विषय से सम्बद्ध साहित्य का अधिकाधिक प्रकाशन हो और इस क्षेत्र में संलग्न व्यक्तियों को प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन मिले।

इसी दृष्टि से 'भारत में मत्स्यपालन' नामक ग्रन्थ आपके सामने है। हिन्दी में इतना विशद विवेचन अभी तक नहीं आया। हमें प्रसन्नता है, मध्य प्रदेश के मत्स्योद्योग के निदेशक ज्ञान प्रकाश दुबे तथा उनके सहायक निदेशक श्री गिरिजा कुमार चतुर्वेदी ने, अपने अध्ययन और अनुभव का लाभ देने की चेष्टा की है। इस व्यवसाय में जो लोग कार्यरत हैं या रुचि रखते हैं, वे अवश्य ही इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे। पुस्तक में आवश्यक चित्र और रेखा-चित्र भी दे दिये गये हैं। हमें विश्वास है, यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा और इसका अधिकाधिक प्रचार हो सकेगा।

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
सचिव, हिन्दी समिति
उत्तर प्रदेश शासन

हिन्दी भवन
लखनऊ

प्राक्कथन

✣ ✣ ✣
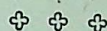
मत्स्योद्योग विषय पर भारतीय भाषाओं में लिखी गयी पुस्तकें अन्य विषयों पर लिखी गयी पुस्तकों की अपेक्षा नगण्य हैं। यह सच है कि पिछली दो दशाब्दियों में भारत में मत्स्य-पालन और मत्स्योद्योग संबंधी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। भारतीय मत्स्य-वैज्ञानिकों के कार्यों को विश्व में मान्यता मिली है। फिर भी इन अनुभवों को पुस्तकाकार रूप देने के लिए प्रयास सीमित ही हुए हैं। तकनीकी विषय को लेकर मत्स्य-पालन पर हिन्दी में किये गये सीमित प्रयासों में से यह एक है।

भारतवर्ष में मत्स्यपालन का उल्लेख प्राचीनतम ग्रन्थों में पाया जाता है। कुछ भागों में तो यह कृषि की भाँति, परम्परागत और मानव समाज का उपयोगी अंग बन चुका है। स्वतन्त्रता के बाद के योजनाबद्ध प्रगति के युग में इसकी उपयोगिता पहचानी गयी और खाद्य-समस्या के हल में इसकी उपादेयता स्थापित हो गयी। केन्द्रीय और राज्य-शासनों ने मत्स्य-पालन उद्योग के संवर्धन के लिए बहुत से प्रयास किये। इसके फलस्वरूप जो भी कार्य हुए हैं, मत्स्यपालन की क्रियाओं की उन्नति और उत्पादन वृद्धि में जो भी अनुभव हुए हैं, वे किसी भी अन्य क्षेत्र की प्रगति की अपेक्षा कम नहीं हैं। आन्तरस्थलीय मत्स्य-पालन (इनलैंड फिशरीज़) में भारत विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है।

किसी भी विषय में शोध कार्य करना, वैज्ञानिक अनुसंधान करके, नये-नये अनुभव प्राप्त करना अलग बात है और उन्हें सूत्र में बाँध कर पुस्तक का रूप देना अलग बात है। इस बात में हम कितने सफल हुए हैं, इसका लेखा-जोखा हम विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

इस पुस्तक में बहुत कुछ और भी जोड़ा जा सकता था, परंतु पुस्तक का कलेवर इतना न बढ़ जाय, जिससे पढ़ने वाले की रुचि में अवरोध उत्पन्न हो जाय, इसी दृष्टि से इसमें सीमित विषय ही रखे गये हैं। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा गया है कि इसकी उपयोगिता में कमी न आने पाये। पुस्तक की उपयोगिता विद्यार्थियों, प्रसार-कर्ताओं आदि के लिए तो है ही, परंतु मछली की खेती कर उत्पादन की वृद्धि और लाभ प्राप्त करने वालों के लिए भी यह उतनी ही उपयोगी और लाभप्रद होगी ऐसा हमारा विश्वास है। वर्तमान विकास कार्यों में मत्स्यपालन की उपयोगिता योजनाओं तथा आर्थिक सहायता से संबंधित परिच्छेद इसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर सम्मिलित किया गया है।

हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय स्वरूप देने के उद्देश्य की पूर्ति में वैज्ञानिक साहित्य शोध और चर्चा का विषय बना हुआ है। वैज्ञानिक विषयों में नवीन तकनीकी शब्दावली का उपयोग तथा उनके प्रयोग के बारे में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। भाषा की उन्नति के लिए नवीन शब्दावली का उपयोग आवश्यक है। एक नये विद्यार्थी के लिए लैटिन, ग्रीक, फ्रेन्च अथवा संस्कृतनिष्ठ सभी शब्द बराबर हैं, क्योंकि उसे तो नया शब्द ग्रहण करना है। सीखना है तो क्यों न अपनी भाषा का ही शब्द सीखें। जो विषय के बारे में कुछ जानते हैं, उनके लिए अपनी भाषा हेतु तनिक सी कठिनाई उठाना वान्छनीय है। फिर भी इस विषय पर अधिक साहित्य न होने के कारण आवश्यक स्थलों पर हमने अंग्रेजी शब्द भी साथ-साथ लिख दिये हैं।

इस पुस्तक को तैयार करने में जिन संदर्भ ग्रन्थों की सहायता ली गयी है उनके लेखकों, प्रकाशकों के हम आभारी हैं। फुटकर रूप से प्राप्त विभिन्न प्रकाशित लेखों से अथवा वैज्ञानिक पत्रिकाओं से जो सामग्री ली गयी है, उनका संदर्भ ग्रन्थ की सूची में उल्लेख नहीं है, परंतु हम उन सभी लेखकों, प्रकाशकों के कृतज्ञ हैं। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि की टंकण व्यवस्था अपने हाथ में लेकर पुस्तक को अंतिम रूप देने में श्री रामनरेश मिश्र का सहयोग उल्लेखनीय तथा सराहनीय रहा है। अन्त में प्रकाशन का भार अपने ऊपर लेने के लिए हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन के हम आभारी है। हिन्दी समिति के सचिव तथा उनके सहयोगियों ने, विशेष रूप से श्रीमती डाक्टर ऊषा चौधरी ने जिस मनोयोग और तत्परता के साथ इसे सँवारने में सहायता की हैं, उसके लिए कृतज्ञता व्यक्त करना औपचारिकता ही होगी।

भोपाल,
मध्य प्रदेश

डॉ० ज्ञान प्रकाश दुबे
गिरिजाकुमार चतुर्वेदी

विषय-सूची

चित्र सूची

भारत में मत्स्य-पालन

हिन्दी
समिति

अवस्थापन

हापे का प्रयोग

मेजर कार्प की अंगुलिकाएं

अंगुलिकाएं

मत्स्य-पालन का पुराना ढंग

मत्स्य-पालन का आधुनिक ढंग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१
मत्स्य-पालन का महत्त्व

भारत में प्राचीन काल से मत्स्य-उद्योग का प्रचलन रहा है। वर्ण व्यवस्था वाले भारतीय समाज में मछुआ, केवट, धीमर आदि संज्ञा एक ऐसे वर्ग-विशेष को दी गयी थी, जो मत्स्य-उद्योग में लगा हुआ था। भारत का मत्स्य-उद्योग विशेष रूप से इसी वर्ग के लोगों के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर चला आ रहा है। आज विशेष अध्ययन तथा अन्वेषण द्वारा इसे विकसित करने का प्रयास हो रहा है और सम-सामयिक बनाया जा रहा है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

मत्स्य-उद्योग और भोजन के लिए मछली के उपयोग के बारे में हमारे इतिहास में वैदिक काल से लेकर निरन्तर साहित्य मिलता है, जो इस उद्योग का महत्त्व स्पष्ट कर देता है। गृह्यसूत्र में स्पष्ट लिखा है कि मांस के न मिलने पर ही शाकाहारी भोजन किया जाता था। अन्नप्राशन के समय बालक को खिलायी जानेवाली वस्तुओं की सूची में मछली, बकरी तथा चिड़िया का मांस प्रथम श्रेणी में आता है। इनके मांस का सेवन अनेक बीमारियों में, विशेष रूप से हृदय-रोग में, किया जाता रहा है। रामायण और महाभारत काल में मछुआ जाति विशेष उन्नत स्थिति में थी और सम्पन्न थी। यह मत्स्योद्योग की उन्नति का परिचायक है।

सम्राट् अशोक के शिलालेखों में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उस काल में मछली पालने और मारने आदि के लिए भी नियम बना दिये गये थे। दिल्ली शिवालिक के पाँचवें शिलालेख[1] में पशु-पक्षियों के शिकार पर रोक लगाते हुए मछली

---

1. देहली शिवालिक का पाँचवा शिलालेख इस प्रकार है–

"देवानं पिये पियदसि लाज हेवं अहासडुविसति वस अभिसितेन में इमानि जातानि अवधियान-कटानि से यथा सुक सालिका अलुने चकवाके हंसे नंडिमुखे गलाटे जतुका अंबाकापीलिका यडि

मारने के संबंध में यह निर्देश है कि आषाढ़ पूर्णिमा से पौष की पूर्णिमा तक निम्नांकित तिथियों पर—पौष में पुष्यनक्षत्र और पूर्णिमा पर, चौदस और अमावस को तथा दोनों प्रतिपदा को मछली पकड़ने और बेचने पर प्रतिबन्ध लगा था।

इस शिलालेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि मत्स्य-उद्योग अर्थात् मछली पकड़ने और बेचने को मान्यता प्राप्त थी और भोजन में मछली का उपयोग अशोक महान् के काल में भी होता था। ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व मौर्य-काल में ब्राह्मण विद्वान् चाणक्य ने विभिन्न धर्मसूत्रों के अध्ययन के आधार पर शासन चलाने के लिए कौटिल्य-अर्थशास्त्र की रचना की और उसमें भी मत्स्य-उद्योग के लिए स्पष्ट नियम बनाये हैं। जनपद-निवेष के 19वें प्रकरण में कहा गया है[2]—"राजा जलाशयों में और झीलों में मछली पकड़ने, नौका चलाने और शाक-व्यापार पर अपना स्वामित्व रखेगा।"

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में मत्स्य-उद्योग और राज्य द्वारा संचालित मछली-व्यापार हेतु जनहितार्थ नियम भी बना दिये थे।[3] जीवों को वंश नाश से बचाने के लिए उनके 1/6 भाग की रक्षा राज्य द्वारा की जाती थी।[4,5] मछली पकड़ने की अनुज्ञा (लायसेन्स) के बारे में आदेश था कि पकड़ी हुई मछली का छठा हिस्सा शुल्क के रूप में जमा किया जायगा।[6] मछली की रक्षा, प्रजनन की व्यवस्था, शुल्क आदि प्राप्त करने, मछली के प्रबन्ध और प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त मछली का महत्त्व पूरा-पूरा आँका जाता था।

मछली की खाद के उपयोग के बारे में कौटिल्य अर्थशास्त्र के इकतालीसवें प्रकरण में लिखा है कि अंकुर फूटने के बाद छोटी-छोटी ताजी मछलियों की खाद देनी चाहिये एवं स्नुही के दूध से सींचना चाहिये।

अनाथ मछे वेद बेचके गंगा पुपुटके संकुछ मछे कपट सयके पंनस से सिमले संडके ओकपिंड पलसते सेतकापाते गायकपोते एवं चतुपदे ये पटिभोगं नो एति नच खादयति। अजका-मनानि पि च कानि आसंमासिके। वधि कुकेटे नो कठविये तुसे सजीवे नो झावतविये—तोसु चार्तुमासिसु तिसाय पुनमासिय तिनं दिवसानि चावदुसं पनंडसं परिपदाये धुवाये चा अनुपोसंथ मछे अवधिये नौपि विकेत विये।"

2. "मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतेपु राजा साम्यं गच्छेत।"
   कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (19) प्रकरणम् जनपद निवेशः (53·5)
3. "मत्स्याः नादयास्तटाक कुल्याद्रवा वा-हिंसा वेधेभ्यों रक्षयाः रक्षितिक्रमे पूर्वस्साहस दण्डः।
4. "पक्षि मृगानां जीवत् षड्भागमभय वनेषु प्रभचेत्।"
5. "सुनाध्यक्षः प्रदिष्टमभ्यानाम् अभयभवन वासिनाम् च मृग-पशु-पक्षि-मत्स्यानां वन्धन-वध हिंसायामुक्तमं दण्ड कारयेत्।" 43 प्रकरणम्-सुनाध्यक्ष (151-5)
6. "मत्स्यवन्धका नौकहाटकं षड्भागं दधुः।"
7. प्रख्ढाश्चाशुष्क कटु मत्स्यांश्च स्नुहीक्षीरेण वापयेत्।" – 41 प्रकरणम् सीताध्यक्षः (144-5)

समाज में मछली इतनी प्रचलित थी कि दैनिक जीवन में भी उसका प्रयोग प्रमुख हो गया था। यात्रा के समय अथवा कोई शुभ कार्य करते समय मछली का दर्शन शुभ माना जाने लगा था। भारतीय कथा-साहित्य में भी मछली की महिमा दिखाई देती हैं। भारतीय कवियों और साहित्यिकों ने मछली की सुन्दरता को प्रतीक माना है तथा सुन्दरियों के नेत्र-सौन्दर्य को मीनाक्षी या मछली जैसे नेत्र कहकर सराहा है। विक्रम संवत् 1127 में राजा सोमेश्वर ने **"मत्स्यविनोद"** नामक पुस्तक लिखी थी, जिससे उस काल में इस विषय का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में प्रचुर आन्तरस्थलीय जल-साधनों के आधार पर इस मत्स्य-उद्योग का प्रसार आवश्यक भी था। समय और आवश्यकता के अनुसार मत्स्य-पालन की पद्धतियों में अन्तर आता रहा है।

भारत का लगभग 5000 कि० मी० विस्तृत समुद्री किनारा देश के मछुओं के लिए सदा से ही उपयोगी रहा है। इस क्षेत्र में मछली की पैदावार निरन्तर होती रहती है। क्षेत्र के अनुसार वहाँ पर विभिन्न प्रकार के उपकरणों (नावों तथा जालों) का पाया जाना इस व्यवसाय की पुरानी परम्परा का जीता-जागता प्रमाण है।

कालान्तर में मत्स्य-उद्योग जनरुचि, उपलब्धि आदि सामयिक कारणों से कुछ विशिष्ट भागों में ही अधिक प्रचलित रहा। इसका प्रचलन बंगाल, बिहार, उड़ीसा के प्रान्तों में ही अधिक रह गया था, यद्यपि देश के अन्य भागों में भी न्यूनाधिक मात्रा में मछलियाँ पकड़ी जाती थीं। इन प्रदेशों में इसके विशेष प्रचलन के कारण वहाँ की जनता के दैनिक भोजन में मछली प्रमुख सामग्री बन गयी। वर्तमान में, जब खाद्य-स्थिति का संकट-काल है और जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में खाद्य-उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पा रही है, सहायक भोजन के रूप में मछली पर ही दृष्टि जाती है, जिसका उत्पादन बढ़ाकर खाद्य-समस्या का हल किया जा सकता है और इसके लिए समुचित साधन भी उपलब्ध हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि खाद्य-पदार्थों में मछली पर्याप्त लोकप्रिय है।

आर्थिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व

मत्स्य-व्यवसाय ने देश की अर्थ-व्यवस्था के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में भी स्थान बना लिया है। पिछले दस वर्षों के आँकड़ों से यह स्पष्ट है (सारणी–1) कि मछली-निर्यात (भार की दृष्टि से) दुगुना हो गया है, तथा निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा लगभग बारह गुना बढ़ गयी है। सन् 1972 में भारत का मत्स्य-उत्पादन 18·50 लाख मीट्रिक-टन हो गया था। यद्यपि यह आँकड़े मत्स्य-उत्पादन की वृद्धि की ओर संकेत करते हैं, परन्तु अन्य देशों की तुलना में यह उत्पादन बहुत कम है। इस सीमित उत्पादन में भी, मछली और उससे बनी हुई चीजों का निर्यात कर सन् 1972 में 58.13 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित कर भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को भी सुदृढ़ बनाने में सहा-

सारणी–1

भारत का मत्स्य-उत्पादन, निर्यात एवं निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा

वर्ष	मत्स्य उत्पादन (लाख टन)	निर्यात किया गया मत्स्य और मत्स्य सामान (हजार टन)	निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा (करोड़ रुपया)
1963	10.46	17.90	5.86
1964	13.20	21.46	6.85
1965	13.32	15.46	6.92
1966	13.67	19.15	13.52
1967	14.00	21.76	19.93
1968	15.26	24.81	22.08
1969	16.05	30.58	33.07
1970	17.46	37.17	35.54
1971	18.45	34.03	39.17
1972	18.50	38.27	58.13

यता मिली है। भारत का मत्स्य-उत्पादन निरन्तर प्रगति पर है, और प्रति वर्ष बढ़ रहा है। सन् 1970 में 6.70 लाख मीट्रिक टन का उत्पादन हुआ जो कुल उत्पादन का एक तिहाई रहा। हमारे विदेशी ग्राहकों में अमरीका, श्रीलंका, वर्मा आदि प्रमुख हैं।

मछली का पौष्टिक महत्त्व

समाज के लिए मछली की उपादेयता इतनी अधिक है कि उसका न होना अथवा उसके उत्पादन में कमी होना भी देश के लिए हानिकारक है। आज के विश्व में निरन्तर वृद्धिशील मानव समाज को खाद्य उपलब्ध कराना हमारी पहली आवश्यकता है। कृषि-योग्य भूमि की वृद्धि और उससे प्राप्त उत्पादन एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकते हैं। अतः इस ओर हमारा ध्यान बरबस खिंच जाता है। यहाँ प्राप्त होनेवाली मछली हमें सर्वोत्तम प्रोटीन देती है। समाज के लिए मछली विटामिन, प्रोटीन आदि से युक्त पौष्टिक आहार है। अन्य भोज्य पदार्थों की तुलना में इसमें अधिक मात्रा में प्रोटीन होता है।

सारणी–2

भोज्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा

सरल क्रमांक	भोज्य पदार्थ	प्रोटीन का प्रतिशत
1.	अन्न	7.3— 8.5
2.	शाक-भाजी	0.1— 5.0
3.	दूध	3.0— 4.3
4.	अण्डे	13.0—13.5
5.	मांस, कलेजी आदि	18.5—19.3
6.	मछली (मीठे पानी की)	14.0—20.9

(सारणी–2) अनाज, मांस, अण्डों आदि भोज्य पदार्थों के साधन भी सीमित हैं, परन्तु मछली की वैज्ञानिक उन्नति के साधन बढ़ते जा रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश में वर्तमान काल में घी, दूध आदि की कमी के कारण पौष्टिक मत्स्य-आहार ही हमारा एकमात्र सहारा होता है, जो प्रत्येक की पहुँच के भीतर हो सकता है। यह भी व्यावहारिक दृष्टि से सिद्ध हो चुका है कि एक एकड़ भूमि की खेती की अपेक्षा एक एकड़ जल से मछली का उत्पादन कहीं अधिक हो सकता है। देश और विश्व की भोजन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मत्स्य-पालन का अधिकाधिक प्रसार और मत्स्योद्योग की उन्नति विचारणीय है।

प्रति व्यक्ति मछली की खपत

हमारे देश में लगभग आधी जनसंख्या मत्स्य-भोजी है, परन्तु हम प्रति व्यक्ति केवल $2\frac{1}{2}$ किलो मछली ही खिला पाते हैं। इसकी तुलना में जापान में लगभग 44 किलो प्रति व्यक्ति मछली प्राप्त होती है। वर्तमान उत्पादन को लगभग 7 गुना करने पर ही हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आन्तर-स्थलीय मत्स्य-उत्पादन योजना हमारे सम्मुख आ जाती है, क्योंकि सामुद्रिक मछली के उत्पादन को बढ़ाया तो जा सकता है, परन्तु उसको नियन्त्रित करना सम्भव नहीं है। खारे पानी में मछली पकड़ने के साधनों की उन्नति करके हम उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं, मछली की बहुतायत से प्राप्ति, उसकी संख्या पर निर्भर है। कहीं-कहीं खारे पानी में तटीय स्थलों पर मछली की खेती के प्रयास किये जा रहे हैं। सम्प्रति हमें अपने मीठे पानी के क्षेत्र से ही सघन मछली की खेती द्वारा उत्पादन बढ़ाना है।

मत्स्य-पालन के संसाधन

भारत में आन्तरस्थलीय मत्स्य-पालन के लिए समुचित साधन और उपयुक्त स्थान की सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। यह हरा-भरा देश लगभग 70 हजार मील में विस्तृत नदियों, नालों और नहरों से भरपूर है और इसमें पायी जाने वाली एवं प्रजनन करनेवाली नाना प्रकार की मछलियाँ हमें प्रकृति की देन हैं। आन्तरस्थलीय मछली की प्रजातियों में शीघ्र बढ़ने वाली मछलियों की प्रजातियाँ भी हैं। देश में छोटे-बड़े असंख्य बारहमासी तालाब भी हैं। बहु-उद्देशीय नदी योजनाओं तथा सिंचाई के बाँधों के निर्माण के कारण अधिकाधिक आन्तरस्थलीय जलक्षेत्र प्राप्त होता जा रहा है। प्राप्त सूचना के अनुसार लगभग 85 लाख हेक्टर आन्तरस्थलीय जलक्षेत्र मत्स्य-उत्पादन के लिए उपलब्ध है।

सारणी–3

आन्तरस्थलीय जलों का प्राक्कलन

1. तालाब, झीलें और जलाशय	29.5 लाख हेक्टर
2. नदी नहरें	39.2 लाख हेक्टर
3. नदी मुहाने के स्थान (एश्चुरी)	12.0 लाख हेक्टर
4. मिश्रित-जलों के दलदल	14.2 लाख हेक्टर
योग	84.9 लाख हेक्टर

भारत सरकार की फिशसीड कमेटी (1966) ने अपने प्रतिवेदन में मत्स्य-पालन के लिए उपयोगी जलक्षेत्रों के निम्नलिखित आँकड़े दिये हैं :—

1. मत्स्य-पालन के अन्तर्गत जलक्षेत्र — 6.1 लाख हेक्टर
2. मत्स्य-पालन के लिए तुरन्त उपलब्ध अतिरिक्त जलक्षेत्र — 3.8 लाख हेक्टर
3. मत्स्य-पालन के लिए सुधार-योग्य जलक्षेत्र — 6.3 लाख हेक्टर

बहु-उद्देशीय नदी घाटी योजनाओं से निर्मित झीलें हीराकुंड, भाखरा-नांगल, गाँधीसागर, रिहन्द, कोलार, दामोदर घाटी योजना, नागार्जुनसागर आदि ऐसे महत्त्व-पूर्ण स्थान हैं, जिनसे मछली का बहुमूल्य उत्पादन उपलब्ध हो सकता है। इन सब झीलों की भौगोलिक स्थिति, जैविकी परिस्थितियों और मछलियों का अध्ययन करके विशेष कार्यप्रणाली और साधनों का चयन कर उत्पादन अधिक मात्रा में बढ़ाया जा सकता है।

मत्स्य-विशेषज्ञों के मतानुसार ऐसी भूमि जो कृषि-योग्य नहीं है, मत्स्य-पालन के लिए उपयोग में लायी जा सकती है। ऐसी अनुर्वर भूमि पर मत्स्य-पालन-प्रक्षेत्र या मछली-

पालन तालाब का निर्माण कर उससे मछली का पर्याप्त उत्पादन किया जा सकता हैं। इससे मत्स्य-पालन के लिए और भी अतिरिक्त स्थान मिल गया है।

आज भारतवर्ष में ही नहीं वरन् सारे विश्व में मत्स्य-उत्पादन की वृद्धि के लिए विभिन्न योजनाएँ एवं अनुसंधान-कार्य प्रारम्भ किये जा चुके हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त **'हिन्द प्रशान्तीय मत्स्य-परिषद्'** की स्थापना से एशिया के देशों में मत्स्य-पालन कार्यक्रम को सबल बनाने में बहुमूल्य योगदान मिला है। इस परिषद् की जब स्थापना हुई तब से लेकर अब तक की प्रगति में भारत का योगदान तथा कार्य बहुमुखी और महत्त्व-पूर्ण रहा है। भारत के प्रतिनिधि को निरन्तर सन् 1949 एवं 1950 के वार्षिक अधिवेशन का सभापति बनाया गया। इस क्षेत्र में अब भी भारत का विश्व में विशिष्ट स्थान है। इसके अतिरिक्त भारत-सरकार एवं अन्य प्रान्तीय सरकारों ने भी इस ओर समुचित ध्यान ही नहीं दिया है, अपितु मत्स्य-पालन, संरक्षण एवं अनुसंधान के लिए योजनाएँ भी बनायी हैं। योग्य संचालन के लिए तकनीकी शिक्षा का प्रबंध भी कर दिया है। इससे मत्स्य-पालन देश के गाँवों तक भी फैल गया है, और इसका महत्त्व यहाँ की जनता की आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक उन्नति के लिए अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इन बहुमुखी प्रयासों के फलस्वरूप अल्पकाल में ही मत्स्य-पालन का समुचित प्रचार हो गया है और मत्स्योद्योग निरन्तर उन्नति कर रहा है।

—:०:—

२

जलक्षेत्र और मत्स्य-पालन के लिए उनका उपयोग

जलक्षेत्रीय संसाधन

मत्स्य-पालन में पहली आवश्यकता समुचित जलक्षेत्र ही है। भारत के अधिकांश गाँवों में तालाब मिलते हैं। कई ग्रामों के पास तो अनेक तालाब उपलब्ध हैं। यद्यपि इनमें से बहुत से मत्स्य-पालन की आवश्यकतानुसार सुखाये नहीं जा सकते, तथापि इनका उपयोग भली भाँति किया जा सकता है। भारत में तालाबों की उपलब्ध जानकारी (फिशसीड कमेटी रिपोर्ट 66) सारणी–1 में दी जा रही है।

सारणी–1

देश में उपलब्ध स्थिर-जल संसाधनों की जानकारी (एकड़ में)

स. क्र.	राज्य	मत्स्य-पालन के योग्य उपलब्ध तालाब एवं जलाशय	सफाई के बाद मत्स्य-पालन हेतु उपलब्ध अतिरिक्त जलक्षेत्र	योग
1	2	3	4	5
1.	आन्ध्रप्रदेश	1,00,403	5,000	1,05,403
2.	आसाम	4,225	6,665	10,890
3.	बिहार	2,72,500	1,00,000	7,72,500
4.	दामोदर-वेली कार्पोरेशन	75,000	—	75,000
5.	दिल्ली	11,970	1,000	12,970
6.	गुजरात	13,000	5,300	18,300
7.	हिमाचल प्रदेश	32,470	30	32,500

8. केरल	22,190	1,580	23,770
9. मध्य प्रदेश	2,52,000	50,000	7,02,000
10. तमिलनाडु (मद्रास)	4,47,000	1,53,000	6,00,000
11. महाराष्ट्र	1,50,765	—	1,50,765
12. मणिपुर	13,438	8,970	22,408
13. कर्नाटक (मैसूर)	2,50,500	6,00,000	8,50,500
14. नागालैंड	80	500	580
15. नेफा	47	100	147
16. उड़ीसा	65,825	2,00,000	2,65,825
17. पाण्डिचेरी	2,300	100	2,400
18. पंजाब (हरियाणा सहित)	31,681	8,103	39,784
19. राजस्थान	1,22,000	60,000	1,82,000
20. त्रिपुरा	6,500	11,500	18,000
21. तुंगभद्रा बोर्ड	93,440	—	93,440
22. उत्तर प्रदेश	51,940	23,237	75,177
23. पश्चिमी बंगाल	40,000	40,000	80,000
महायोग :	24,79,274	15,75,085	40,54,359

वर्तमान काल में भारतवर्ष में 40.54 लाख एकड़ जलक्षेत्र है। इस स्थिति में नये जलाशयों के निर्माण की अपेक्षा उपलब्ध जलक्षेत्रों का ही मत्स्य-पालन के लिए उपयोग करना श्रेयस्कर है। सिंचाई के साधनों की वृद्धि के लिए जलाशयों का निर्माण निरंतर हो रहा है, जिससे हमें अधिक जलक्षेत्र मत्स्य-पालन के लिए प्राप्त होता जा रहा है।

जलक्षेत्रों का वर्गीकरण––तालाबों का वर्गीकरण उनके क्षेत्रफल, निर्माण की विधि, पानी रोकने के काल अथवा उपयोग के आधार पर किया जा सकता है। यह वर्गीकरण इस प्रकार है––

(अ) क्षेत्रफल के आधार पर

गाँव के छोटे-छोटे जलक्षेत्र तालाब एवं सिंचाई के एकत्रित जलक्षेत्र जलाशय ही कहलायेंगे।

1. ग्रामीण तालाब––ये तालाब गाँवों में गाँव के पास खेतों के बीच बनाये जाते हैं। इनका प्रमुख उपयोग ग्रामवासियों का निस्तार (ग्रामवासियों और पशुओं के

लिए दैनिक प्रयोग) होता है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इनके पानी से निकट के खेतों को सींचा भी जाता है।

2. **सिचाई के जलाशय**—ये तालाब विशेष उद्देश्य से बनाये जाते हैं और प्रमुखत: सिंचाई के लिए ही होते हैं।

3. **बहु-उद्देशीय जलाशय**—ये बहुत बड़े क्षेत्र में फैले होते हैं तथा ये सिंचाई और बिजली-उत्पादन दोनों के काम में आते हैं। वर्तमान में इस प्रकार के बहुत से जलाशय बन रहे हैं।

4. **बाढ़-नियंत्रण के जलाशय**—ये प्रमुखत: बाढ़ को रोकने के लिए बनाये जाते हैं। इनका विस्तार भी बहुत होता है। यद्यपि अन्य देशों में ये बहुत हैं तथापि भारत में भी इस प्रकार के जलाशयों का निर्माण हो रहा है।

(ब) स्थिति के अनुसार

इन्हें निम्नांकित रूप में बाँटा जा सकता है:—

1. **वास-स्थान के तालाब :** घर बनाते समय मिट्टी निकालने से जो गड्ढे बन जाते हैं, उनको और गहरा कर नियमित तालाब का रूप दे दिया जाता है। ये घर के पास होते हैं और घर के निवासियों के लिए मत्स्य-उत्पादन कर सकते हैं। यह नदियों के डेल्टा क्षेत्र में और समुद्री किनारों पर बहुतायत से प्राप्त हैं।

2. **बगीचों के तालाब**—गहन कृषि-क्षेत्रों में बागों और खेतों में विभिन्न रूप एवं पृथक्-पृथक् लम्बाई-चौड़ाई के जलाशयों का निर्माण किया जाता है।

3. **अधिप्लवन तालाब**—नदी के अधिप्लवन क्षेत्रों में नदी के मार्ग बदलने के कारण अधिप्लवन तालाब (स्पिल पौण्ड) बनते हैं। ये मत्स्य-पालन के लिए विशेष रूप से उपयोगी होते हैं।

4. **पुराने किलों के आसपास की खाइयाँ**—जो कालान्तर में निष्प्रवाही होकर तालाब बन गये हैं।

5. **रेलवे लाइन के पास के और खदानों के गढ़े**—ये गढ़े मिट्टी निकालने से बनते हैं और ये थोड़ी सी मरम्मत एवं सुधार के बाद अच्छे तालाब बन जाते हैं।

6. **सिंचाई के तालाब**—ये तालाब उपर्युक्त वर्णित जलाशयों में सबसे बड़े होते हैं तथा विस्तृत जलग्रहण क्षेत्र से पानी प्राप्त करते हैं।

(स) तालाबों में पानी के आधार पर

इस आधार पर इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. **मौसमी तालाब**—जिन तालाबों में पानी वर्ष के कुछ महीने ही रहता है।
2. **बारहमासी तालाब**—जिन तालाबों में पानी वर्षभर भरा रहता है।

(द) उपयोग के आधार पर

मत्स्य-पालन क्रियाओं में इन तालाबों को उपयोग किये जाने के आधार पर उनका वर्गीकरण प्रमुखत: निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है :—

1. **प्रजनन तालाब**—वे तालाब, जो पाली जाने वाली मछली-प्रजातियों के प्रजनन के लिए उपयोग में आते हैं। इन्हें सूखे बाँध भी कहते हैं, ये मौसमी होते हैं।

2. **संवर्धन तालाब** : वे तालाब, जो छोटे और मौसमी हैं तथा जिनको मत्स्य-बीज संवर्धन के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

3: **अभिपोषण तालाब**—वे तालाब, जिनका आकार छोटा होता है और जिन्हें शिशु-मीन-संगोपन के लिए प्रयोग किया जाता है। यहाँ आंगुलिकाएँ तैयार की जाती हैं। ये मौसमी अथवा बारहमासी किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।

4. **संचय या मत्स्य-पालन तालाब**—ये ऐसे बारहमासी तालाब होते हैं जिनमें मछली का बीज संचय करके मछलियाँ तैयार की जाती हैं।

तालाबों एवं जलाशयों की स्थिति—अधिकतर तालाबों की देखरेख तथा मरम्मत की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इनमें जल-वनस्पतियाँ बहुतायत से पैदा होती हैं और जल की सम्पूर्ण सतह को घेर लेती हैं। इस प्रकार के जलाशयों में अधिकतर मांसाहारी तृणक-मीन (फोरेज फिश) पायी जाती हैं। आसपास के क्षेत्रों का पानी बहकर इनमें आता है। बाँधों की मरम्मत या निकास द्वार की मरम्मत और देखरेख न होने से तालाबों में पर्याप्त पानी रुक नहीं पाता है और ये तालाब वर्ष में किसी भी समय सूख जाते हैं। ग्रामीण तालाब पुराने हो जाने पर उथले हो जाते हैं और इनमें पानी बारह मास नहीं रह पाता है। सिंचाई के तालाबों का जलग्रहण क्षेत्र विस्तृत होता है। बरसात में पानी का फैलाव बहुत होता है और गर्मियों के समय बहुत कम रहता है। इनका मुख्य उपयोग सिंचाई के लिए होता है इसलिए इनके नितल की पूरी सफाई नहीं की जाती है और नितल में पेड़, ठूँठ, झाड़ी आदि बहुतायत से उगे रहते हैं। इनमें मत्स्य-ग्रहण करना कठिन होता है। अधिप्लवन तालाब बहुत ही विस्तृत और गहरे होते हैं तथा वर्षाकाल में इनका सम्बन्ध नदी से जुड़ जाता है।

मछली के भोजन की स्थिति—तालाबों और जलाशयों से अच्छे मत्स्य-उत्पादन के लिए अनुकूलतम रासायनिक तत्त्वों की उपलब्धि के साथ-साथ समुचित मात्रा में मछली के भोजन पदार्थों, जीवाणुओं, प्लवकों आदि का होना आवश्यक है। आवश्यक तत्त्व जैसे—क्लोरीन, फ्लोरीन, आयोडीन, सिलिका, आर्सेनिक तथा मेंगनीज का पानी में होना आवश्यक है। साथ ही साथ कार्बन, हाइड्रोजन, गंधक, नत्रजन, फास्फोरस, पुटाश, चूना और लोहा भी एक निश्चित मात्रा में होना चाहिये। इन तत्त्वों की उपलब्धि जल एवं भूमि के

साथ वायु के निरन्तर सम्पर्क से होती है। अतः जल की परिस्थितियाँ उस भूमि से सम्बन्धित और निर्भर हैं जहाँ पर जलाशय बना हुआ है। जलाशय के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के जीवाणु पाये जाते हैं और इनका जीवनचक्र जटिल होता है। इन जीवाणुओं की रचना और विनाश का क्रम साथ ही साथ चलता रहता है। रचनात्मक जीवन-चक्र के लिए जल में घुले हुए अप्रांगारिक तत्त्व, ऊर्जा (गर्मी) और गैसें आवश्यक हैं।

जलाशयों और तालाबों की मरम्मत एवं सफाई—तालाबों की मरम्मत एवं सफाई के कार्य को निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता है:—

1. जल पौधों की सफाई
2. नितल की सफाई और जलाशय को गहरा बनाना
3. पुरानी मछली की सफाई
4. बाँधों की मरम्मत एवं नालियों का नियंत्रण
5. दलदलों की सफाई

1. **जलपौधों की सफाई**—जलाशयों की सफाई के लिए जलाशयों में उगी हुई विभिन्न प्रकार की पादप-प्रजातियों को नष्ट कर देना पहली आवश्यकता है। इन्हें इस प्रकार साफ किया जाना चाहिये कि यथासम्भव पुनः न उग सकें। इस प्रकार के जलपौधों को नष्ट करते समय ध्यान रखा जाय कि उन्मूलक-पदार्थ का प्रयोग पौधों की जाति विशेष के अध्ययन के बाद ही किया जाय। जल वनस्पतियों को निकालने के लिए बहुत से रासायनिक पदार्थ तैयार किये जा चुके हैं। इनको निकालने के लिए मानव-श्रम के साथ ही साथ अब नयी-नयी मशीनों का प्रयोग भी किया जाता है। नवीन विधियों के बारे में अनवरत प्रयोग किये जा रहे हैं। इनके नियंत्रण का एक तरीका जैविकी भी है। इसमें ऐसी मछलियाँ पाली जाती हैं जो जलपौधों का आहार करती हैं। सामान्यतः जलपौधों को निकालने के निम्नलिखित 7 ढंग हैं :—

1. आप्यका नियन्त्रण
2. श्रमिकों द्वारा
3. कर्षण क्रियाओं द्वारा
4. छायाकरण द्वारा
5. मशीनों द्वारा या यान्त्रिकी नियंत्रण
6. जैविकी नियन्त्रण
7. रासायनिक विधि

1. **आप्यका नियंत्रण**— आप्यका (एल्गी) नियन्त्रण हेतु यान्त्रिक क्रिया पूर्णतः सफल नहीं होती है, सीमित जलक्षेत्रों को जाल द्वारा साफ किया जा सकता है।

कहीं-कहीं तो जाल द्वारा सप्ताह में एक या दो बार आप्यकाएँ खींच कर सफाई की व्यवस्था की जाती है एवं निकाली गयीं आप्यकाएँ पशुओं के भोजन अथवा खाद के रूप में उपयोग की जाती हैं। कुछ वनस्पति-भोजी मछलियों के अतिरिक्त बहुत कम ऐसे जलजीव हैं जिन्हें आप्यका नियन्त्रण के लिए उपयोग किया जा सकता है। कुछ घोंघे आप्यका-भोजी होते हैं, परन्तु आप्यका नियन्त्रण में उनकी उपयोगिता बहुत ही सीमित है। कुछ मछलियाँ भी सूत्रवत् आप्यकाओं के लिए उपयोग की जा सकती हैं, जिनमें तिलापिया प्रयोगों द्वारा सफल मानी गयी है।

आप्यकाएँ जल से ही पोषण-तत्त्व प्राप्त करती हैं। अतः जल में घुलनेवाले रसायनों के प्रयोग से इनका नियन्त्रण किया जा सकता है। कहीं-कहीं तो यह विधि बहुत ही सफल हुई है। नीलाथोथा (कापर सल्फेट) इस कार्य के लिए बहुत उपयोगी है और पश्चिमी देशों में इसका बहुत प्रचार है। परन्तु यह अस्थायी प्रभावकारी है। नीलेथोथे का तनु घोल विशेष जातियों पर ही प्रभावकारी होता है। 1 से 2 पी.पी.एम. मात्रा से अधिक का विलयन जलक्षेत्र की आप्यका से पूरी सफाई कर देता है, तथापि यह मछलियों के लिए भी घातक हो जाता है। क्लेडोफेरा तथा ऐसी ही अन्य आप्यकाओं के लिए नीलेथोथे की उपयोगिता सीमित है। अतः ऐसी आप्यकाओं वाले तालाबों में इसे उपयोग करने के पूर्व यथासम्भव जल को निकाल देना चाहिये। इस विधि की खराबी यह है कि नष्ट आप्यकाएँ नितल पर जमकर सड़ने लगती हैं, जिससे ओषजन की कमी हो जाती है। यह स्थिति मछलियों के लिए घातक भी हो सकती है। अतः आप्यका-आवर (ब्लूम) स्थापित होने की संभावना से एक मास पूर्व ही यह उपचार कर देना चाहिये। साथ ही नितल का प्रांगारिक-मलबा भी निकाल देना उपयोगी रहता है।

बड़े पौधों का नियंत्रण––जलपौधों को नियंत्रण में रखने के लिए निवारक उपाय तथा उपचारीय विधि दोनों का उपयोग किया जाता है। इनकी उत्पत्ति के कारणों में उथलापन एक मुख्य कारण है। नितल की मोटी मिट्टी की तह भी इनके उत्पादन में सहायता करती है, अतः नितल की मिट्टी को समय-समय पर निकालते रहना चाहिये, जिससे पादप प्लवकों की उत्पत्ति किसी सीमा तक रुक जाती है। समुचित प्रांगारिक तत्त्वों सहित तल-प्रणाल (सर्फेस ड्रेनिंग्स) को भी रोकना चाहिये, क्योंकि इससे पोषक तत्त्वों में असाधारण वृद्धि हो जाती है। जहाँ ये निवारक उपाय सम्भव न हों, वहाँ उपचारीय विधियाँ कार्य में लाना चाहिये। उपचारीय विधियाँ साधारणतः निम्नांकित हो सकती हैं।

1. **श्रमिकों द्वारा**––यान्त्रिक विधि के लिए यन्त्र ले जाना अधिक खर्चीला हो और अन्य साधनों का उपयोग स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल न पड़ता हो, वनस्पतियों को श्रमिकों द्वारा निकलवा देना चाहिये। ऐसे स्थानों में जहाँ श्रमिक प्रचुर मात्रा

में उपलब्ध हों और अन्य साधनों की अपेक्षा मितव्ययी हों, वहाँ श्रमिकों द्वारा कार्य सम्पन्न करा लेना चाहिये। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती और स्थानीय व्यक्तियों को कार्य मिलता है।

सामान्य जल-वनस्पतियाँ
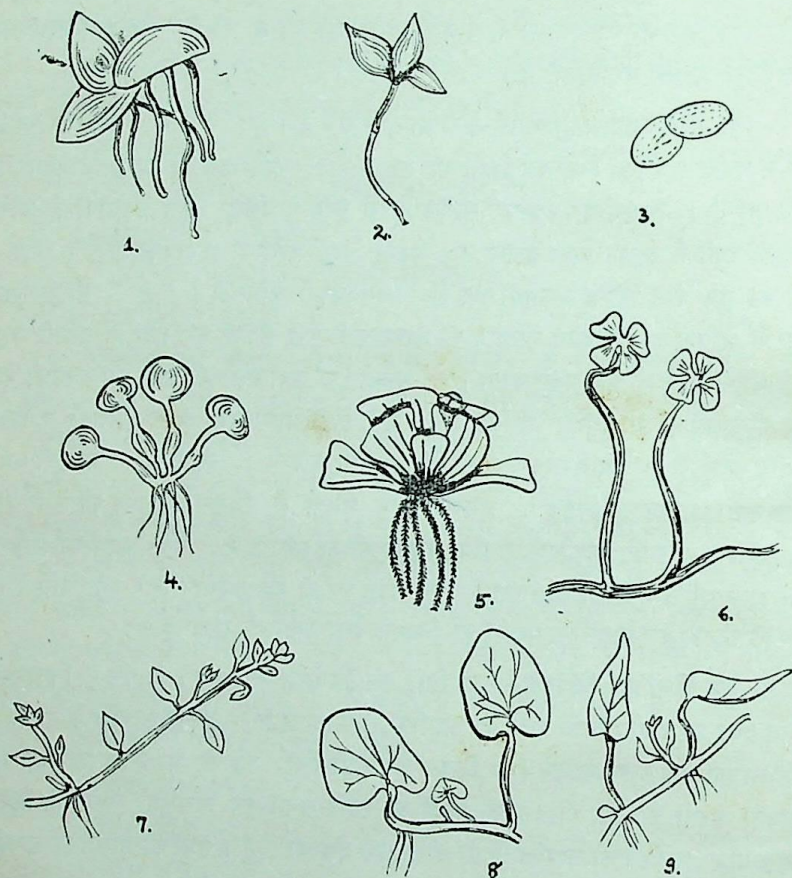
1. लेम्ना पोलीराहिजा 2. लेम्ना माइनोरा 3. वुलिफया 4. इकोर्निया 5. पिस्टिया स्ट्राइओटस 6. मार्सीलिया क्वार्डीफोलिया 7. जूसिया रेपेन्स 8. लिम्नेनथमम 9. आइपोमिया एक्वेटिका.

2. कर्षण-क्रिया (कल्चरल प्रैक्टिसेज) द्वारा—कर्षण-क्रिया के अन्तर्गत प्रचलित स्थानीय पद्धतियों का उपयोग सम्मिलित है। उथले जलाशयों में सूर्य की किरणों के नितल

तक पहुँचने के कारण 'भा संश्लेषण' (फेटो सिन्थेसिस) सम्भव होता है और जल में बड़े पौधों की उत्पत्ति के अनुकूल परिस्थितियाँ होती हैं। अतः जलाशयों के नितल की मिट्टी निकालकर उन्हें गहरा कर देने से निमग्न पौधों एवं प्लवकों की उत्पत्ति रोकी जा सकती है। जलाशय के आसपास और उथले जल में भी पशुओं को चराने से सीमान्तक एवं प्लावी-पादपों का नियन्त्रण सम्भव है। इसके लिए सोडियम, पोटैशियम एवं नत्रजन का मिश्रण (जिसे एन.पी.के. कहा जाता है) उपयोग किया जाता है।

3. छायाकरण द्वारा—जलाशय की सतह पर, यदि किसी भी प्रकार से छाया कर दी जाती है तो पादपों की आवश्यक क्रिया 'भा-संश्लेषण' बन्द हो जाती है। इस क्रिया के लिए प्रकाश अति आवश्यक है। इस क्रिया में छाया करने के लिए कोई भी विधि जो अन्य जीवों को हानिकर न हो उपयोग में लायी जा सकती है। एक विशेष प्रकार के रंग को जल में घोल देने से सूर्य की किरणों का तेज, नितल तक नहीं पहुँच पाता है और यह छाया प्रदान करता है। कहीं-कहीं विशेष आप्यकाओं की उत्पत्ति से अथवा दूसरे पौधों के उपयोग से भी छायाकरण किया जा सकता है। परन्तु यह विचारणीय है कि इस क्रिया में ऐसे ही पौधों का प्रयोग किया जाय जो बाद में स्वयं समस्या न वन जायँ। किसी भी पौधे के उपयोग के पूर्व पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिये।

4. जैविकी नियन्त्रण—जल पादपों के नियन्त्रण में अन्य उपयोगी प्राणियों तथा पौधों का जल में प्रवेश कराकर, जैविकी-नियन्त्रण सरल, सुरक्षित एवं मितव्ययी उपचार है। ऐसे प्राणियों की संख्या बहुत ही सीमित है, जिसका इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए वनस्पति-भोजी मछलियाँ बहुत ही उपयोगी हैं और साधारणतः इनका ही उपयोग करना चाहिये। ऐसी मछलियों में तिलापिया, सामान्य-शफर, दर्पण-शफर आदि की उपयोगिता सीमित है। इस कार्य के लिए सभी बातों को ध्यान में रखकर ग्रास-कार्प बहुत उपयोगी पायी गयी है। यह मछली भारतवर्ष में 1959 में लायी गयी थी तथा इसकी वनस्पति नियन्त्रण की उपयोगिता श्री अलोकुन्ही एवं श्री सुकुमारन (64) ने स्थापित कर दी है। इसका प्रसार अब अधिकांश राज्यों में हो गया है तथा बीज भी मिलने लगे हैं। कारण्ड (डक वीड) प्रकार के पौधों को यह रुचि से खाती है और जलाशय में इसकी उपस्थिति से पर्याप्त नियन्त्रण हो जाता है।

निमग्न पादपों के नियन्त्रण के लिए विशेष उर्वरकों के प्रयोग से आप्यका-आवर का उत्पादन कर दिया जाता है तथा प्रकाश न मिलने से निमग्न-पादप नष्ट हो जाते हैं। प्लावी वनस्पतियों का प्रवेश कराकर भी निमग्न-जल-पादपों को नष्ट किया जा सकता है। यह क्रिया मितव्ययिता तथा श्रम की दृष्टि से भी लाभकारी है परन्तु जल की भौतिक-रासायनिक (फिजिको केमिकल) स्थिति बिगड़ जाने का भय सदैव बना रहता है।

निमग्न जल-वनस्पतियाँ

1. नीलम्बा **2. ओटेलिया** **3. वेलिस्नेरिया**
4. हाइड्रिला **5. सिरेटोफिलम** **6. चारा**
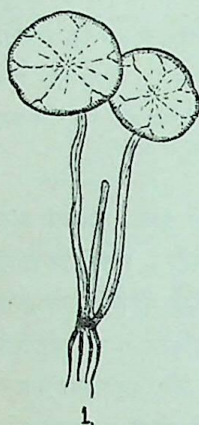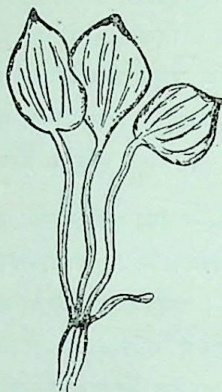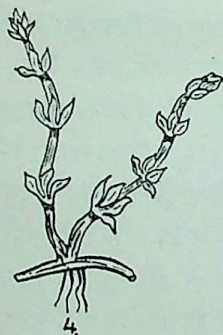
5. **यान्त्रिक नियन्त्रण (मशीनों द्वारा) विधि**––जलपौधों के नियन्त्रण के लिए यह पद्धति भारतवर्ष में पर्याप्त लाभकारी है और उपयोगी है। वनस्पतियों को ग्रभांकुश (ग्रेपनेल) तथा अन्य यन्त्रों की सहायता से खींचकर निकाल देना सर्वाधिक उपयोगी ' वधि है। इस विधि को समयान्तर पर पुनरावर्तन करने से अधिक लाभ तो होता ही है, साथ ही साथ मछलियों की वृद्धि भी अधिक होती है। जहाँ यह सम्भव नहीं है वहाँ पर लगातार

समयान्तर पर जलपौधों की कटाई करनी चाहिये । यह क्रिया वर्ष में 3–4 बार करनी चाहिये । इस प्रकार की कटाई के लिए ड्रेग स्मिथ, विन्चेज, अण्डरवाटर-वीडकटर इत्यादि प्रयोग किये जाते हैं । इनका प्रयोग जल में तथा किनारों पर भी किया जा सकता है । बड़े जलक्षेत्रों के लिए इन्जिन लगी वीडकटर मशीन तथा यान्त्रिक शक्ति से चलने वाली ड्रेजों का उपयोग किया जा सकता है । शक्तिशाली बाँधों और किनारे वाले जलाशयों में उत्थापकों जैसे यंत्रों का भी उपयोग किया जा सकता है । क्रशर्स, ग्रेपलर रोलर्स और अन्य स्थानीय यन्त्र भी उपयोग में लाये जा सकते हैं । प्लावी-पौधों को नाव के सहारे बाँधकर इकट्ठा किया जा सकता है ।

फल और बीजों की उत्पत्ति के पूर्व ही पौधों के निवारण का सबसे अच्छा समय है । इस अवस्था में निवारण से इनकी पुनः उत्पत्ति की सम्भावना बहुत कम हो जाती है । एकत्रित किये हुए जलपौधों की खाद बनायी जा सकती है । यह खाद खेती में प्रयोग की जाती है । इस प्रकार तालाब की सफाई के साथ-साथ अतिरिक्त खाद भी प्राप्त हो जाती है ।

6. **रासायनिक विधि**––बड़े जलाशयों में और ऐसे स्थानों पर जहाँ श्रमिक सरलता से न मिलते हों, रासायनिक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है । रसायन का चयन करने के साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पौधों को नष्ट करने वाले रसायन मछलियों, पशुओं और मनुष्यों के लिए घातक तो नहीं हैं । ऐसे ही रासायनिक पदार्थों का चुनाव करना चाहिये, जिनकी पहले जाँच हो चुकी हो और जो केवल पौधों पर ही प्रभावशील हों और अन्य प्राणियों पर जिनका कोई घातक प्रभाव न पड़े । जल की परिस्थिति तथा मिट्टी की रासायनिक जाँच कराना, प्रयोग के पूर्व ही आवश्यक है । ऐसे जल में, जिनमें बहुत अधिक घुले हुए तत्त्व होते हैं, उनमें पौधों को नष्ट करने वाले रसायनों का प्रभाव सीमित होता है ।

जलपादपों को नष्ट करने वाले रसायनों के उपयोग के पूर्व, यह ध्यान देना आवश्यक है कि जलाशय का पानी बाहर न जा सके, जिससे आस-पास की भूमि पर हानिकारक प्रभाव न पड़े । रसायनों के उपयोग के पूर्व उसकी मात्रा भी निश्चित करना आवश्यक है । बाजार में बिकने वाले रसायनों के उपयोग की मात्रा एवं विधि, इन्हें बनाने वाली कम्पनियाँ पहले से ही घोषित कर देती हैं । अतः यह मात्रा, प्रयोगों द्वारा पहले ही निश्चित कर ली जाती है । सोडियम आर्सेनाइट, सोडियम पेन्टाक्लोरस फिनोलेट आदि रसायनों का प्रभावकारी उपयोग किया जा सकता है । अमोनिया का प्रभावकारी उपयोग भी भारतवर्ष में अब होने लगा है । इससे विशेषकर प्लावी पौधे नष्ट किये जा सकते हैं । सोडियम आर्सेनाइट से 2 पी. पी. एम. की मात्रा से सिरेटोफिनम, पोटामोजीटोन आदि

पौधे नष्ट किये जा सकते हैं। सोडियम क्लोरेट टाइफा रीड्स जैसे उन्मग्न पौधों को सफलतापूर्वक नष्ट कर सकता है। इसका ढाई प्रतिशत का घोल किसी गर्म दिन में प्रयोग करने पर उथले पानी के सभी पौधों को नष्ट कर सकता है। यदि दो-तीन सप्ताह में ये पौधे फिर से उगते हुए दिखाई दें, तो फिर से उपचार किया जा सकता है।

रसायन का उपयोग इस प्रकार किया जाय कि, उसका वितरण पूरे तालाब में भलीभाँति और सर्वत्र बराबर हो जाय। घुलनेवाले रसायनों को बोरी में बाँधकर नाव के साथ लटका देना चाहिये। जब तक रसायन घुल न जाय, नाव को सारे जल में घुमाना चाहिये। ऐसा करने से रसायन की पूरी उपयोगिता मिल सकती है। छिड़कने वाली दवाओं का इच्छित घोल बनाकर पम्प द्वारा छिड़का जा सकता है। नीलेथोथे का प्रयोग बोरे में डालकर नाव द्वारा ही किया जा सकता है। नये प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि पौधों की वृद्धि को नियन्त्रित करने वाले कतिपय तत्त्वों को प्रबल मात्रा में प्रयोगकर पौधों को नष्ट किया जा सकता है, परन्तु ध्यान रहे कि यह मछलियों के लिए घातक न हो।

मिथोक्सोन, एग्रोसोन, 2–4 डी आदि कुछ न्यासर्ग तृणक-नाशक औषधियों का प्रयोग बहुत लाभकारी है। इनसे कुछ और लाभ भी हैं। पौधों को नष्ट करने के लिए उचित घोल मछलियों तथा अन्य प्राणिप्लवकों को किसी प्रकार भी हानिकारक नहीं है तथा छिड़कने वाली मशीनों की धातु पर भी कोई अवांछित असर नहीं करती है। ये हानिकारक नहीं हैं, अतः इनका प्रयोग सरलता से कोई भी कर सकता है। 2–4 डी को पौधे पत्तियों के द्वारा ग्रहण करके जहाँ तक पहुँचाते हैं वहाँ यह बढ़ने वाले अंगों पर असर करके असाधारण वृद्धि उत्पन्न कर देती है। नवीन प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि यह प्लावी एवं निमग्न दोनों प्रकार के पौधों को नष्ट कर सकती है। जलकुम्भी जैसे प्लावी पौधों का 0.2 प्रतिशत घोल मशीन द्वारा चार वर्गमीटर प्रति लीटर की दर से छिड़कने पर मछलियों को बिना हानि पहुँचाये तीन-चार सप्ताह में नष्ट किया जा सकता है। दवा छिड़कने पर ओस अथवा पानी गिर जाय तो दवाई का प्रभाव कम हो जाता है। अतः बदली वाले दिन या बरसात में इसका प्रयोग करना उचित नहीं है। हाइड्रिला तथा नाजाज़ जैसे निमग्न-पौधों पर इसका हानिकारक प्रभाव भी प्रतिपादित हो चुका है। रसायन के प्रभावशील होने के लिए पौधों की पत्तियों पर पहुँचना आवश्यक है, अतः विशेष परिस्थितियों में पानी कम कर देना आवश्यक है।

क्षारीय जलों में पी.एच. (समुअंक) को 'सल्फ्यूरिक एसिड' के प्रयोग से कम करने के बाद जल-पौधों को 20 दिन में नष्ट किया जा सकता है और यह मात्रा मछलियों के लिए घातक नहीं है।

भारतीय मत्स्य-वैज्ञानिकों के प्रयोगों के आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है, उसके अनुसार रासायनिक विधियाँ मितव्ययी हो सकती हैं।

श्री रामचन्द्रन (1969) ने जो सारणी दी है वह नीचे उद्धृत की जा रही है :—

सारणी

जलपौधे का प्रकार	प्रयोग होने वाले रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय अंश)	रसायन का अनुमानतः मूल्य रु.	श्रमिक व्यय रु	प्रति हेक्टर कुल व्यय रु.
जलकुम्भी	2–4 डी	15 मि.ग्रा/कि.	16=00	25=00	41=00
छोटी (13 कि/व.मी.)					
मध्यम (23 कि/व. मी.)		30 मि.ग्रा./कि.	56=00	100=00	156=00
वड़ी (35 कि/व.मी.)		,, ,,	84=00	100=00	184=00
सेजेज़ (Cyperus)	,, ,,	12 कि.हे.	120=00	50=00	170=00
निमग्न पौधे	*अमोनिया	18 पी.पी. एम.	360=00	180=00	540=00
आप्यका आवर	*साइमेजिन	0.5 पी.पी. एम.	400=00	10=00	410=00
हाइड्रिला	नीलाथोथा (मिट्टी की गोली में)	35 कि./हे.	..	..	510=00
जलकुम्भी		,,	..	..	750=00

*एक मीटर की औसत गहराई मानी गयी है ।

1. तालाबों में नितल की सफाई एवं गहरा करना—छोटे-छोटे गाँव के तालाबों में मत्स्य-पालन प्रारम्भ करने के पूर्व उन्हें सुखाना और तलछट की मिट्टी निकालना अत्यन्त आवश्यक है । ऐसे तालाब आसानी से सुखाये जा सकते हैं जिनमें नाली होती है और पानी निकालने के लिए नीची सतह की भूमि उपलब्ध होती है । जहाँ नाली न हो वहाँ पम्प आदि की सहायता से पानी निकाला जा सकता है, परन्तु इसमें व्यय अधिक होगा । पुराने बारहमासी तालाबों में तलछट का मलबा हटाने के लिए यह व्यय उठाना भी आवश्यक हो जाता है । नीचे की निकली हुई मिट्टी का उपयोग किनारों की मरम्मत में किया जा सकता है । वैसे यह खेतों के लिए उत्तम खाद है । ऐसे जलाशयों में जहाँ पुनः तालाब को भरने के लिए पानी की कमी हो और सुखाना भी सम्भव न हो, यान्त्रिक तरीकों से तलछट की मिट्टी निकाली जा सकती है । तलछट की मिट्टी निकालते समय यह भी विचारणीय है कि कितनी गहराई तक खुदाई की जाय । इतनी गहरी खुदाई

कदापि न की जाय जिससे तालाब में पानी रिसने लगे। सफाई के बाद 5 से 10 वर्षों तक पुनः तल की सफ़ाई की आवश्यकता नहीं होती है ।

2. जलाशयों में—सिंचाई के तालाबों में (जिन्हें जलाशय ही कहा जाता है), तलछट की मिट्टी निकालने की समस्या नहीं है। ऐसे जलाशयों में मछली पकड़ने में दूसरी वस्तुएँ अवरोध उत्पन्न करती हैं। इनमें बहुत से पेड़, झाड़ियाँ और ठूँठ आदि डूब जाने से, ये मछली पकड़ने के जाल को चलाने में रुकावट डालती हैं। इस कारण मछली निकालने में बड़ी कठिनाई होती है। इनकी सफाई की योजनाएँ कुछ राज्यों के मछली-विभागों ने बनायी हैं। इस कार्य को सफलतापूर्वक अपनाने में मध्यप्रदेश प्रमुख है। मध्यप्रदेश में इस कार्यक्रम के लिए मजदूरों के साथ-साथ पेड़ उखाड़ने के लिए विन्च, ट्रैक्टर, मशीनयुक्त आरी आदि यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। विन्च की सहायता से पेड़ और ठूँठ जड़ सहित उखड़ आते हैं। कुल्हाड़ी से काटे जाने वाले पेड़ भूमि के समानान्तर काटे जाते हैं। यह कार्य विशेष रूप से गरमी के मौसम में किया जाता है जब जलक्षेत्र कम से कम होता है और तालाब की अधिकांश भूमि सूखी होती है। विन्चेज की सहायता से डूबे हुए पेड़ों और ठूँठों को भी किनारे से खींचकर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार जलाशयों का उत्पादन बढ़ जाता है। यद्यपि इस प्रकार की सफाई पर 100 रु. से 250 रु. प्रति एकड़ का व्यय आता है तथापि उत्पादन बढ़ जाने से इसकी उपयोगिता तुरन्त ही सिद्ध हो जाती है।

3. पुरानी मछली की सफाई—हर तालाब में स्थानीय मछलियाँ आ ही जाती हैं। ये स्थानीय मछलियाँ पाली जाने वाली मछलियों के लिए हानिकारक हैं। कुछ मांसाहारी मत्स्य-प्रजातियाँ पाले गये मत्स्य-बीज को हानि पहुँचाती हैं तथापि कुछ तृणक-मीन, उपलब्ध मत्स्य-आहार का प्रयोग कर स्पर्धा करती हैं। इन दोनों प्रकार की मछलियों का निवारण अत्यन्त ही आवश्यक है। जिन तालाबों को तलछट की सफाई के लिए सुखाना हो वहाँ मछली निकालने की कोई समस्या नहीं है। परन्तु अन्य तालाबों में लगातार मछली मारने से माँसाहारी और तृणक-मछलियाँ निकाली जा सकती हैं। अवांछित मछलियों को विष देकर भी निकाला जा सकता है। प्रयोग किये जाने वाले विषों में रोटीनोन तथा महुआ की खली साधारण विष हैं। प्रति एकड़ 125 किलो की मात्रा में महुआ की खली के प्रयोग से सभी मछलियाँ नष्ट की जा सकती हैं।

4. बाँधों की मरम्मत और नालियों का सुधार—ग्रामीण जलाशयों में अधिकांश ग्राम-पञ्चायत के अधीन हैं। इनकी मरम्मत का विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है एवं वर्षाकाल में बाँध टूट जाने से पानी बह जाता है। मत्स्य-पालन करने से पूर्व ऐसे बाँधों को मिट्टी डालकर मजबूत करना आवश्यक है, जिससे कि पानी बहकर बाहर न

जा सके और पूरे वर्ष तालाब में पानी भरा रहे। आवश्यकता होने पर बाँधों को ऊँचा भी कर देना चाहिये।

जलाशयों में पानी निकालने और भरनेवाली नाली का ठीक होना जलस्तर नियन्त्रण के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की नालियों में सीमेण्ट के पाइप या मोहरी आदि का उपयोग किया जाता है, तथा इनका मुँह लोहे की जाली से ढक दिया जाता है। जिसके छिद्र लगभग 1/10 इञ्च से 1/2 इञ्च तक हो सकते हैं। इस जाली के होने के कारण न तो अवांछित मछलियाँ जलाशय में आ सकती हैं और न पाली हुई मछलियाँ निकल ही पायेंगी। इस प्रकार मरम्मत करने के बाद किसी भी प्रकार का छोटा तालाब काम में लाया जा सकता है।

5. **दलदलों की सफाई**—नदी के मुहानों के पास बहुत सा क्षेत्र धीरे-धीरे दलदल में बदलता जाता है। यद्यपि वहाँ पानी तो सदा भरा रहता है तथापि पानी के पौधे आदि बहुतायत से पैदा हो जाते हैं, जो वहाँ सड़ते रहते हैं और भूमि को दलदली बना देते हैं। ये क्षेत्र मत्स्य-उत्पादन के लिए भी अनुपयोगी हो जाते हैं क्योंकि यहाँ पर मछली का आहार उत्पन्न नहीं होता है और विषैली गैसें पैदा होती हैं। यहाँ गहराई भी कम होती है और समय के बीतने के साथ-साथ इस क्षेत्र का भी विस्तार होता रहता है। ऐसे क्षेत्रों की सफाई एवं पुनरुद्धार करके इनको अच्छे मत्स्य-उत्पादन प्रक्षेत्रों में बदला जा सकता है। इनकी सफाई का मितव्ययी तरीका श्री गजानन मित्र ने अपने प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर निकाला है, जिससे उड़ीसा में ऐसी बहुत-सी भूमि का उपयोग हो सका है। इस कार्यक्रम में निर्माण-व्यय प्रति एकड़ लगभग ढाई से तीन हजार रुपया आता है।

३

मत्स्य-बीज एवं मत्स्य-प्रक्षेत्र निर्माण

उपलब्ध ग्रामीण तालाबों एवं जलाशयों के उपयोग के समय मत्स्य-पालक को कुछ छोटी-मोटी मरम्मतों के बाद ही सन्तोष करना होता है। उत्तम फल एवं मत्स्य-बीज प्राप्त करने के लिए इच्छानुसार छोटे आकार के नवीन तालाबों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। नये तालाबों का निर्माण करते समय मत्स्य-पालन की सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छोटे-बड़े सभी प्रकार के तालाब बनाने आवश्यक हैं। अतः नये निर्माण को मत्स्य-प्रक्षेत्र की संज्ञा देना उचित है। ऐसे प्रक्षेत्रों का निर्माण व्ययकारी होता है।

मत्स्य-प्रक्षेत्रों का निर्माण शिल्पज्ञों की सहायता से होना चाहिये। निर्माण के प्रत्येक विवरण की जाँच और इसके पूर्ण होने 'तक किसी शिल्पज्ञ की सहायता लेनी आवश्यक है। इन विवरणों का ज्ञान साधारण मत्स्य-पालक को बिलकुल नहीं होता है। भारतवर्ष में ऐसे निर्माण बंगाल, बिहार, उड़ीसा को छोड़कर बहुत कम होते हैं और अधिकांश शासकीय क्षेत्र में ही हो रहे हैं। ये निर्माण-कार्य मजदूरों के द्वारा पूर्ण किये जा रहे हैं। बड़ी मशीनों जैसे––बुलडोजर, डिंगर तथा ट्रैक्टर कम ट्राली आदि बड़ी मशीनों का मूल्य और सञ्चालन जनसाधारण की पहुँच के बाहर है। यदि ये मशीनें किराये पर उपलब्ध हो सकें तो कार्य भी शीघ्र हो सकता है और प्रक्षेत्र के निर्माण मूल्य में भी कमी हो सकती है। साधारणतः ऐसी मशीनें शासकीय प्रक्षेत्र निर्माण के लिए जहाँ बड़े-बड़े मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्रों का निर्माण किया जाता है, अत्यन्त ही उपयोगी हैं। मध्यप्रदेश में मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्र के लिए यन्त्रों का प्रयोग आरम्भ किया गया है।

प्रक्षेत्र में विभिन्न प्रकार के तालाबों का अनुपात––मत्स्य-बीज और मत्स्य-प्रक्षेत्र में विभिन्न प्रकार के तालाबों का अनुपात क्या हो, यह प्रारम्भ में ही निश्चय करने की बात है। इसी के बाद स्थल-योजना (साइट प्लान) तैयार की जा सकती है। श्री अलीकुन्ही के मतानुसार साधारणतः प्रमुख सफर-मछली के पालन के लिए संवर्धनी (नरसरी) 5%, अभिपोषण (रिंयरिंग) 20%और संचय-तालाव (स्टाकिंग) 75% क्षेत्र में बनाना

चाहिये। सामान्यतः मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्र में उपर्युक्त प्रकार के तालाबों का ही निर्माण किया जाता है। उत्तम मत्स्य-प्रक्षेत्र में प्रजनन और बिक्री तालाब भी सम्मिलित कर लिये गये हैं। अतः क्षेत्रफल के आधार पर निम्नांकित अनुपात में निर्माण उपयोगी हो सकता है :--

संवर्धन तालाब	5%
अभिपोषण तालाब	20%
संचय तालाब	65%
प्रजनन तालाब	5%
बिक्री तालाव	5%

स्थल-चयन--मत्स्य-प्रक्षेत्र के लिए प्रथम और प्रमुख कार्य स्थान का चुनाव है। इस कार्य के लिए निम्नस्तरीय भूमि, जिसमें पानी रुकने की क्षमता हो और जहाँ जल का आवास हो अथवा सिञ्चन की उचित व्यवस्था हो, ठीक रहती है। स्थल-चयन के लिए निम्नांकित प्रमुख बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :--

(क) आवागमन के साधन

(ख) जल-स्रोत

(ग) भूमि की प्रकृति

आवागमन के साधन--मत्स्य-प्रक्षेत्र के लिए स्थल ऐसा चुनना चाहिये जहाँ आवागमन सुविधापूर्वक हो सके। यातायात की सुविधा पहली आवश्यकता है। यातायात सुलभ होने से मत्स्य-बीज-परिवहन, मत्स्य-परिवहन आदि में कठिनाई नहीं होगी। यदि विक्रय-केन्द्र तक उत्पादन पहुँचने में कठिनाई होगी तो लाभ कम होगा। अतः आर्थिक दृष्टि से सफलता प्राप्त करने के लिए यातायात के साधन होना आवश्यक है। परिस्थिति और स्थान के अनुरूप जलमार्ग से भी यातायात की व्यवस्था की जा सकती है।

जल-स्रोत--मत्स्य-प्रक्षेत्र को पानी से भरने के लिए केवल प्रकृति पर ही निर्भर रहना उचित नहीं है। प्रक्षेत्र को पानी के बहाव के पास निम्नस्तरीय भूमि पर बनाना सुविधाजनक एवं उपयोगी होगा जहाँ पानी बहकर आ सके। जल-ग्रहण क्षेत्र से एकत्र किये गये पानी का उपयोग किया जा सकता है। शिल्पियों के मतानुसार सामान्यतः एक इकाई क्षेत्र भरने के लिए दसगुना जलग्रहण-क्षेत्र होना चाहिये। यह अनुमान जलग्रहण-क्षेत्र की भूमि की किस्म पर भी निर्भर करता है। जंगल की भूमि में अधिक और कृषि भूमि में जलग्रहण क्षेत्र कुछ कम किया जा सकता है।

प्रत्येक प्रकार के प्रक्षेत्र के लिए अपनी स्वतन्त्र जल-व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह व्यवस्था चाहे नलकूपों के माध्यम से पूरी की जाय अथवा किसी बड़े निस्तार

तालाब से भी की जा सकती है। इसके लिए ऐसे नलकूप अच्छे होते हैं जिनकी क्षमता 7 से 10 हजार गैलन पानी देने की हो, यदि अधिक जल दे सकें तो और भी उत्तम होगा। यदि प्रक्षेत्र सिंचाई-नहर के समीप बन रहा है तो प्रारम्भ में यह देख लेना आवश्यक है कि नहर आवश्यकतानुसार विशेषकर गर्मी के दिनों में पानी प्रदान कर सकेगी अथवा नहीं। जल-स्रोत की सुविधा के अभाव में स्थल-चयन निरर्थक होगा।

यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि पानी के स्रोत के रूप में चुनी हुई भूमि जलप्लावन या बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र न हो। अन्यथा वेग से आने वाला जल निर्मित बाँधों को तोड़ देगा। वर्षा में बाँध टूट जाने से मरम्मत कठिन होती है, साथ ही मछलियों के बह जाने की भी आशंका रहती है। बंगाल प्रान्त और समुद्री किनारों पर एक सी भूमि रहती है और थोड़ी खुदाई करने पर जल प्राप्त हो जाता है किन्तु अन्य प्रदेशों में प्रक्षेत्र की भूमि यदि थोड़ी ढालू हो और दो छोटी पहाड़ियों के बीच हो तो लाभदायक है। इस प्रकार के स्थान में ऊपर बड़ा जलाशय बनाया जा सकता है और उसके नीचे मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्र का निर्माण किया जा सकता है।

भूमि की प्रकृति—प्रक्षेत्र-निर्माण में भूमि की प्रकृति और स्वभाव भी महत्त्वपूर्ण है। अनेक स्थानों पर भूमि का अनुपयोगी होना, असफलता का कारण हो चुका है। इस प्रकार के मत्स्य-पालन तालाबों के लिए आक्लिन्न मृद्रा (हयूमस क्ले) सर्वोत्तम मानी जाती है। रेतीली और कंकरीली भूमि को छोड़कर छोटे कणों वाली या जिसमें सिल्ट और क्ले कम से कम 60 प्रतिशत हो, इस प्रकार की भूमि भी उपयोग में लायी जा सकती है। इसके बाद हमारी पसन्द संमृदामय मृदा (लोम), खेतीली मिट्टी (मार्ल) और जीर्णक (पीट) मिट्टी की होगी। यदि मिट्टी रंध्रमय (पोरस) है तो उसे पंकीकरण के बाद सुधारा जा सकता है। रेतीली मिट्टी के बाँध जल्दी टूट जाते हैं, साथ ही उसमें पानी कम टिकता है। ऐसी भूमि जो खेती के लिए उपयोग नहीं की जा सकती है अथवा जिसमें अपेक्षाकृत कम लाभ प्राप्त होता है, मत्स्य-प्रक्षेत्र बनाकर लाभदायक बनायी जा सकती है। चट्टानों वाली पथरीली भूमि में खुदाई का काम अधिक व्ययकारी होता है। परन्तु यह देखना उचित होगा कि स्थल का भूमिगत जलस्तर कितना है। चुने हुए स्थल में ऊँची भूमिगत जल-सतह ही अच्छी मानी जाती है। इससे तालाबों में पानी भरे रहने में सहायता मिलती है।

समुद्री किनारों पर या मिश्रित जलक्षेत्रों के किनारों की भूमि में रासायनिक लवण इकट्ठे हो जाते हैं, वे मीठे पानी की मछलियों के लिए सर्वदा अनुपयोगी होते हैं। इस भूमि को सुधारने के लिए बार-बार मीठे पानी से भर देना चाहिये। मरम्मत और सफाई का कार्य पूर्ण होने तक, इस प्रकार के तालाबों में मिश्रित जल में पाली जाने वाली मछलियों का पालन किया जा सकता है।

निर्माण--निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व चुने हुए स्थल-आकार (कण्टूर) चित्र बना लेना चाहिये, तथा इसके आधार पर निर्माण की स्थल योजना का नक्शा तैयार किया जाता है। सामान्यत: नीचे स्तर पर संचय तालाब, ऊपर संवर्धन तथा अभिपोषण-तालाब और ढलवाँ भूमि पर प्रजनन-तालाबों को स्थापित करना अच्छा माना जाता है। इस विधि से पानी का पूर्ण उपयोग हो जाता है। यह एक मार्गदर्शन सिद्धान्त मात्र है। स्थल-चित्र के अनुसार ही इन तालाबों के निर्माण का स्थल नियत करना होता है। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है तथा इसके निर्णय के लिए मत्स्य-वैज्ञानिकों एवं शिल्पियों और अभियन्ताओं की सामूहिक सलाह की आवश्यकता है। स्थलयोजना की रूप-रेखा बन जाने के बाद निर्माण कार्य किसी भी अभियन्ता की देख-रेख में पूर्ण कराया जा सकता है। मत्स्य-प्रक्षेत्र का निर्माण-एक विशिष्ट प्रकार का कार्य है, अत: अनुभवी अभियन्ताओं से ही यह कार्य कराना उचित है। प्रक्षेत्र -निर्माण में मितव्ययिता का भी ध्यान रखना चाहिये।

स्थान के अनुरूप किसी भी क्षेत्रफल अथवा आकार के जलाशय बनाये जा सकते हैं तथापि चौखूँटे जलाशय, जिनकी लम्बाई चौड़ाई से अधिक हो, उपयोगी होते हैं। सामान्यत: आयताकार तालाब बनाये जाते हैं। चौड़ाई सीमित रखने से जलाशय का प्रबन्ध सरलता से हो जाता है साथ ही साथ मछली पकड़ने के समय दोनों ओर तक जाल फैलाया जा सकता है। अत: मत्स्य-बीज अथवा मछली पकड़ना सरल हो जाता है।

जलाशय की गहराई का विचार कर लेना भी आवश्यक होगा। स्थानीय मौसम एवं तालाब के उपयोग के आधार पर तालाब की गहराई तय की जाती है। साधारणत: संचय जलाशय के लिए दो मीटर से तीन मीटर तक और अभिपोषण तालाबों के लिए लगभग एक मीटर की गहराई सर्वोपयोगी होती है। संवर्धन जलाशय की गहराई लगभग एक मीटर होनी उचित है। गर्म स्थानों में जहाँ तापमान में विशेष अन्तर रहता है और पानी अधिक सूखता है, गहराई अधिक रखना ही उचित होगा। गहरी खुदाई कराने पर निर्माण-व्यय में वृद्धि होगी और खुदी हुई मिट्टी को एकत्रित करने के लिए अधिक स्थान भी चाहिये, अत: निकाली हुई मिट्टी से ही जलाशय का बाँध ऊँचाकर गहराई बढ़ाई जा सकती है। मत्स्य-पालन-प्रक्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाना हो तो पानी के प्रवेश वाले स्थानों की ओर से सब तालाबों में नालियों का प्रबंध कर देना चाहिये। ये नालियाँ पक्की हों तो उचित होगा।

स्थल की सफाई और निर्माण--जिस स्थान पर तालाबों का निर्माण होना है, उस स्थान के पेड़ झाड़ियाँ इत्यादि की कटाई और सफाई पहला काम है। भूमि के ऊपर की प्रांगारिक-तत्त्व मिश्रित पतली मिट्टी की तह को बटोरकर पृथक् रख देना चाहिये, जिसे बाद में खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। बाँधों की लम्बाई-चौड़ाई और उसका रूप भूमि की प्रकृति पर निर्भर करता है। संवर्धन-तालाब का जलक्षेत्र 0·1 हेक्टर और अभिपोषण तालाब का जलक्षेत्र 0.2 से 0.6 हेक्टर तक होना उचित है। साधारणत: 1:1

अथवा । 1 : 2 का ढाल दिया जाता है। रन्ध्रमय मिट्टी में यह ढाल 1:3 तक किया जा सकता है । बाँधों की ऊँचाई और चौड़ाई के अनुसार ढाल का रूप बदला जा सकता है, जो शिल्पियों की सहायता से ही पूर्ण किया जा सकता है । वास्तव में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि खुदाई की मिट्टी को दूर न ले जाकर वहीं उसका समावेश हो सके अन्यथा उसके ले जाने में अधिक व्यय होगा । इन सबके लिए स्थानीय परिस्थितियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ।

बाँध की ऊपरी चौड़ाई का निर्धारण भी आवश्यक है जो उसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। प्रमुख बाँध जिस पर से होकर आवागमन होगा वह बहुत दृढ़ बनाना होगा तथा बीच के बाँधों को उतना मज़बूत होना आवश्यक नहीं है । इन सबका निर्णय करने के बाद ही बाँध की नींव की चौड़ाई निर्धारित की जा सकती है । यदि नींव की चौड़ाई निश्चित नहीं की गयी तो वाञ्छित ढाल बाद में देना कठिन कार्य होगा ।

बाँध की नींव की भूमि को पहले भलीभाँति साफ करके गोड़ देना चाहिये, जिससे बाद में बाँध डालने पर मजबूती आ सके । रन्ध्रमय मिट्टी के बाँध के बीचों-बीच $\frac{1}{3}$ मीटर चौड़ी खाई खोदकर उसमें काली गीली मिट्टी के गोले बनाकर उससे भर देना चाहिये तथा अच्छी तरह कुटाई कर देना चाहिये । इस प्रकार की व्यवस्था कर देने से पानी का रिसना रोका जा सकता है । नीचे चट्टान होने की दशा में सीमेण्ट कांक्रीट से वह स्थान ऊँचाई तक, एक-सा कर देना चाहिये, इसमें शिल्पज्ञ की सहायता एवं देखरेख आवश्यक है । मिट्टी की सतह बैठने और जमने पर बाँध नीचा हो जाता है, अतः इसके लिए प्रति पाँच मीटर पर एक मीटर की छूट देनी चाहिये । तालाब के कोनों को टूटने से बचाना चाहिये ।

जलाशय के उत्तम प्रबन्ध के लिए पानी लाने और निकालने के लिए नालियों की सही व्यवस्था आवश्यक है । यह कार्य निर्माण के साथ-साथ ही किया जाता है । पानी के स्रोत के निकट ऊँचे स्थान पर पानी के आने की व्यवस्था रहेगी और अधिक गहरे दूसरे कोने में पानी निकालने की नाली बनायी जायगी । नाली का आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई आदि पानी के परिमाण पर अवलम्बित है । सफल प्रबन्ध के लिए नाली ऐसे स्थान पर बनायी जाय, जिससे सम्पूर्ण मत्स्य-प्रक्षेत्र के प्रत्येक तालाब को रिक्त किया जा सके । इससे नीचे की मिट्टी की सफाई के साथ-साथ मछली निकालने में भी सहायता मिलती है । भूमि की बचत एवं सुदृढ़ निर्माण के लिए पानी निकालनेवाली नाली को पक्का कर, उसी के ऊपर पानी भरनेवाली नाली बनायी जा सकती है । यद्यपि यह खर्चीली विधि है तथापि इससे भूमि की बचत होती है और निर्माण में दृढ़ता आती है । अतः यह कमी पूरी हो जाती है । आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े सीमेंट कान्क्रीट के नलों का उपयोग किया जा सकता है । नल की स्थिति ठीक रखने के लिए सीमेंट से जोड़ना और दीवार बनाना चाहिये । कहीं-कहीं पर जहाँ मिट्टी में सिल्ट और क्ले कम हो संवर्धन एवं प्रजनन-तालाबों को पक्का

बनाकर उनकी लम्बाई-चौड़ाई कम की जा सकती है। तालाब का सूखना मत्स्य-पालन क्रियाओं, विशेषकर मत्स्य-बीज-उत्पादन के लिए आवश्यक है। इससे नीचे की मिट्टी की सफाई के साथ-साथ मत्स्य-बीज और मछली निकालने में भी सहायता मिलती है।

पहाड़ी क्षेत्रों में बाँध की रक्षा के लिए अधिप्लवन-मार्ग आवश्यक है। उथले अधिप्लवन-मार्ग बनाने से जाली की आवश्यकता भी नहीं रहती है। अधिप्लवन-मार्ग बनाने के विस्तृत विवरण में शिल्पियों की सहायता आवश्यक है। जलाशय के लिए नहर आदि बनानी हो तो नाले के उस स्थान को चुना जाता है जहाँ की चौड़ाई कम हो और तल की भूमि कड़ी हो अथवा पथरीली हो। इससे मूल्य में कमी होती है और नीचे से पानी नहीं रिसता। इससे आवश्यकता होने पर स्फुरण-पट्टों (फ्लेश बोर्ड) द्वारा पानी के बहाव को रोका जा सकता है। स्फुरण-पट्ट लकड़ी के प्रदर्शक-पट्टों में लगाये जाते हैं, जो सीमेंट-कान्क्रीट में लगे रहते हैं। स्फुरण-पट्ट लकड़ी के खाँचों में पानी रिसने को रोकने के लिए लगाये जाते हैं।

रेतीली और मुरम मिट्टी के स्थानों में बहुधा यह देखा गया है कि जब तक समुचित साद-आवरण नहीं हो जाता है, पानी रिसता रहता है। ऐसे जलाशयों की मिट्टी को छोटे और भारी बेलनों तथा दुरमुट की सहायता से पीट कर एक-सी सतह कर देनी चाहिये, और बाद में 0.30 से 0.50 मीटर तक मोटाई की मिट्टी की एक तह बिछा देनी चाहिये। इसके साथ ही साथ पशुओं को घूमने फिरने दिया जाय अन्यथा मजदूरों से मिट्टी गुथवाने की व्यवस्था की जाय। इस क्रिया के बाद ऊपरी तह पर समृदामय मिट्टी की एक-एक तह बिछा देना चाहिये, जो मछली के भोजन के लिए भी लाभकर होगी। कहीं-कहीं रिसना रोकने के लिए तल की भूमि पर सीमेण्ट का लेपन कर दिया जाता है और दीवारों पर तख्ते जड़ देते हैं। परन्तु इस प्रकार की स्थिति में मछली को अधिकतर कृत्रिम आहार पर ही निर्भर रहना होता है। देश में ऐसे स्थलों पर कहीं-कहीं तालाबों को पक्का कर देने का प्रयोग भी किया गया है और इसमें सफलता भी मिली है। पक्के तालाबों में वार्षिक मरम्मत-व्यय न्यून हो जाता है, दी गयी खाद का पूर्ण उपयोग होता है तथा पानी की हानि भी कम होती है।

निर्माण-व्यवस्था में यह भी विचारणीय होगा कि नियमित कार्यकर्ताओं के निवास की व्यवस्था भी प्रक्षेत्र पर ही हो सके। इसे भी निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानना चाहिये तथा स्थल-योजना चित्र में इनका समावेश भी साथ ही साथ कर देना चाहिये।

मत्स्य-प्रक्षेत्र के लिए गर्मी के समय और वर्षा के पूर्व जल की तुरन्त आवश्यकता होती है। एक एकड़ मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्र के जलक्षेत्र के लिए लगभग वर्ष में चार-पाँच बार पानी की आवश्यकता होती है। यदि सामान्यत: एक मीटर गहराई तक पानी भर जाय तो पूरे वर्ष में लगभग 10 लाख घन फुट पानी चाहिये।

४

जल के भौतिक और रासायनिक गुण

जलाशय की मुख्य उपयोगिता उसके जल की उर्वरता पर अवलम्बित है। शुद्ध जल में जीवों के रहने की अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं होती हैं। जल में नत्रजन, फॉस-फोरस, चूना, पुटास, आदि लवणों का होना आवश्यक है, जिससे जल की उर्वरता बढ़ती है। इसी प्रकार, जल की गहराई, मलिनता पानी का बहाव, तापमान रोशनी का आवास आदि भौतिक गुण भी अपना विशिष्ट प्रभाव डालते हैं। इन आधारभूत रासायनिक तत्त्वों की सहायता से उचित भौतिक अवस्थाओं में अदृश्य छोटे-छोटे बैक्टीरिया (कीटाणु) अप्रांगारिक तत्त्वों को जटिल प्रांगारिक तत्त्वों में बदल देते हैं। इससे पादप-प्लवकों की उत्पत्ति होती है, जो बाद में छोटे जीव-प्लवकों का आहार बनते हैं। सूक्ष्म पादप-प्लवक और जीव-प्लवक दोनों ही विभिन्न प्रकार की मछलियों के भोजन हैं। पानी के बड़े पौधे सड़ने पर केवल मछलियों का भोजन ही नहीं बनते, परन्तु इनके ऊपर कुछ जीव-जन्तु ऐसे भी रहते हैं, जो कुछ मछली प्रजातियों के आहार हैं। यह जीवन चक्र जल की सामान्य भौतिक और रासायनिक दशाओं की अनुकूलतम स्थिति में चलता रहता है। सामान्य भौतिक और रासायनिक दशाएँ, नितल की भूमि पर आधारित रहती हैं। जल की भौतिक तथा रासायनिक दशाओं की सामान्य परिस्थितियों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

(अ) भौतिक गुण

(अ) 1. **गहराई**—जलाशय के नितल तक प्रकाश की किरणों का पहुँचना जल की उर्वरता के लिए महत्त्वपूर्ण है, अतः गहराई का इस संबंध में अपना विशिष्ट महत्त्व है। उष्णप्रदेशों में चार मीटर तथा कोष्ण प्रदेशों में दो मीटर से अधिक की गहराई जैविकी उत्पत्ति के लिए न्यूनतम महत्त्व रखती है। उथले-जलों में सामान्य जीवन के लिए अनुकूल स्थितियाँ प्राप्त होती हैं तथा मत्स्य-उत्पादन के लिए भी ऐसे जल उपयोगी सिद्ध होते हैं। निमग्न पादपों में परिपाचन (ऐसीमिलेशन) क्रिया मुख्यतः एक मीटर की गहराई में ही

होती है। जलाशय बहुत उथले भी नहीं होने चाहिये अन्यथा उष्ण प्रदेशों के संचय-तालाबों में इससे उर्वरता पर विपरीत प्रभाव होगा और मछली की हानि भी सम्भव है।

(अ) 2. **प्रकाश**––उष्ण प्रदेशों में सूर्य का प्रकाश सतह के जल को निरन्तर गर्मी प्रदान करता है। इससे पानी की गहराई में तीन प्रकार की सतहों-एपीलेम्निओन, थर्मोक्लाइन तथा हाइपोलेम्निओन का निर्माण होता है। इन तीन सतहों का निर्माण उथले तालाबों में अधिक नहीं होता है। कोष्ण प्रदेशों के विपरीत, उष्ण प्रदेशों में प्रतिदिन रात के समय नीचे ठण्डी सतहवाला हायपोलेम्निओन जल ऊपर आ जाता है और न्यून घनत्व वाली ऊपरी सतह नीचे चली जाती है। यह परिवर्तन ओषजन तथा अन्य पोषक द्रव्यों के तालाब के पानी में परिवहन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अन्य विद्वानों के मतानुसार ऐसे जलों को छोड़कर जहाँ वायु अति वेगवान होती है, उष्ण प्रदेशों के अन्य जलों में तीन मीटर से अधिक की गहराई में उपर्युक्त परिवर्तन नहीं होता है।

(अ) 3. **तापमान**––सीमाओं के भीतर तापमान के साथ-साथ जीवन क्रियाएँ बढ़ जाती हैं। तापमान की वृद्धि से सतह के जीवाणु तल की ओर जाना प्रारम्भ कर देते हैं। तापमान की वृद्धि परोक्ष रूप से घुली हुई ओषजन की कमी तथा जीवाणुओं की श्वांस-क्रिया में वृद्धि करती है। यद्यपि ताप की वृद्धि से ओषजन की अनुपातत: हानि होती है; तथापि अति अनुवेधन ऐसे समय में सहायक होता है जब गर्मी बहुत बढ़ जाती है। गर्मी की वृद्धि से मत्स्य-उत्पादन में वृद्धि होती है। मछलियों की ताप सहन सीमा अलग-अलग होती है। इस सम्बन्ध में अधिक शोध कार्य नहीं किया गया है। अधिक ताप-मान से मछलियों की हानि रोकने के लिए तालाबों पर छाया की उचित व्यवस्था कर दी जाती है। तालाब के तल में गहरी खाई अथवा गढ़ा खोदकर गहरा स्थान प्रयुक्त कर लिया जाता है परन्तु ऐसे स्थानों पर हिंसक मछलियों का भय अधिक रहता है। अतः कुछ मत्स्य-पालक केवल छप्पर आदि से ही ऊपरी छाँह की व्यवस्था उचित समझते हैं।

(अ) 4. **मलिनता (टर्बीडिटी)**––जल की मलिनता तैरते हुए मिट्टी अथवा प्रांगा-रिक तत्त्वों के सूक्ष्म कणों के कारण हो सकती है। बाढ़, वर्षा, गन्दे नाले के प्रवाह और यान्त्रिक प्रवाह के कारण यह मलिनता अस्थायी और निरन्तर वायु प्रवाह, जलवेग और भूमिगुणों के कारण स्थायी हो सकती है। मलिनता जल की उर्वरता का एक अवरोधक है। स्वच्छ-जलों में प्रकाश की किरणें अधिक-गहराई में जल -पादपों की वृद्धि में सहायता करती हैं। मलिन-जल में निर्माण क्रियाएँ कम हो जाती हैं और स्वच्छ तथा अधिक ओषजन युक्त जल में रहने वाली मछलियों का स्थान सर्पशीर्ष मछलियाँ (मरल्स) ले लेती हैं। पाली जाने वाली मछलियाँ सामान्य मलिन-जल में तो रह लेती हैं। मलिनता का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसके बारे में जानकारी सीमित ही है। मन्द-प्लवकों

की उत्पत्ति के कारण उत्पन्न हुई मलिनता उर्वरता बढ़ाती है परन्तु मिट्टी के कणों द्वारा उत्पन्न मलिनता हानिकारक होती है। अतः पानी को अधिक मलिन होने से रोकना चाहिये।

(अ) 5. **बहाव**––कुछ विशेष मछली-प्रजातियों के जीवन और प्रजनन के लिए वेग से बहने वाला पानी आवश्यक है। यद्यपि पाली जाने वाली लगभग सभी मछलियाँ रुके हुए जल में रहकर वृद्धि प्राप्त करती हैं तथापि कतला, रोहू, मिरगल आदि शफर-जाति की मछलियों के प्रजनन के लिए कभी-कभी बहता पानी आवश्यक होता है।

(ब) रासायनिक गुण

(ब) 1. **घुली हुई ओषजन (प्रविलीन जारक)**––जल में रहनेवाले जीव पानी से ओषजन प्राप्त करते हैं। मछली की श्वास क्रिया के विशेष अंग क्लोम-जल से ओषजन ग्रहण करते हैं तथा वहीं विषैली गैसें रक्त से निकलती हैं। इस प्रकार मछली और अन्य जल-जीव पानी में घुली हुई ओषजन पर ही श्वास के लिए अवलम्बित रहते हैं। ओषजन पानी को प्रकृति के अतिरिक्त, जल-पौधों के भा-संश्लेषण (फोटो सिन्थेसिस) द्वारा भी प्राप्त होती है। पानी में ओषजन घोलने की शक्ति तापक्रम पर निर्भर करती है। तापमान की वृद्धि से घुली हुई ओषजन कम हो जाती है परन्तु जीवों और मछलियों द्वारा ओषजन के उपयोग में वृद्धि हो जाती है। ठण्डे रक्त वाले जीवों में यह देखा गया है कि 10°. सें० तापमान की वृद्धि होने पर ओषजन का उपयोग लगभग दुगुना हो जाता है। घुली हुई ओषजन की कमी के मुख्य कारण जल-पौधों की अधिकता, प्रांगारिक तत्त्वों की सड़न, तापमान की वृद्धि आदि हैं।

पाली जाने वाली मछलियों के तथा उनकी विभिन्न आयु श्रेणियों द्वारा ओषजन उपयोग क्षमता के बारे में सीमित सूचना ही प्राप्त है। साधारणतः 5 पी. पी. एम. का (प्रतिदस लाख पर) समाहार 20° से० ताप पर, मीठे पानी की मछलियों के लिए हानि कारक होता है। क्लोमांशुओं में गैस-रोग हो जाने के कारण रुकावट हो जाती है और इसमें मछलियाँ मरते देखी गयी हैं।

(ब) 2. **कार्बन-डाय ऑक्साइड**––यह जल में प्राणी और पौधों की श्वास लेने और प्रांगारिक पदार्थों के सड़ने के कारण उत्पन्न होतीं है। पौधे दिन के समय 'भा-संश्लेषण' क्रिया में इस गैस का उपयोग करते हैं। रात्रि में जब भा-संश्लेषण क्रिया बन्द रहती है तब इस गैस की अधिकता हो जाती है। इस गैस का पानी में अधिक समाहार मछलियों के लिए घातक हो जाता है। इसकी अधिकता होने से जल की ओषजन घोलने की शक्ति तो घट ही जाती है, जीव उपलब्ध ओषजन का उपयोग करने में भी कठिनाई अनुभव करने लग जाते हैं। 5 सी. सी. प्रतिलिटर का समाहार मछली के लिए घातक होता है।

(ब) 3. **समुअंक(पी.एच.हाइड्रोजन आयन समाहार)**––समुअंक या पी.एच. पानी की

अम्लीयता अथवा क्षारीय दशा को वतानेवाला अंक है। किसी भी तरल पदार्थ की भाँति जल भी अम्लीय, क्षारीय अथवा क्लीव हो सकता है। क्लीव जल को 7 समुअंक से जाना जाता है। 7 समुअंक से अधिक होने से जल क्षारीय समझा जाता है और समुअंक से कम जल अम्लीयता का सूचक है। किसी जल का समुअंक उसकी उर्वरता को बताता है। जल में चूने का बाय-कार्वोनिट लवण होने से समुअंक 7·5 से 8·5 के बीच रहता है जो मछलियों के लिए अनुकूल है। यह रसायन प्रत्यारोधक का कार्य करता है। पानी में अम्लता-पोषक तत्त्वों के परिवहन को रोककर, प्रांगारिक पदार्थों को सड़ने से रोकता है तथा नत्रजन चक्र में अवरोध उत्पन्न कर समस्त जल जीवन पर प्रभाव डालता है। साधारणतः 5 समुअंक मछलियों के लिए अनुपयोगी होता है। 4 समुअंक का पानी मछलियों के लिए घातक होता है तथा किसी भी क्रिया से सुधारा नहीं जा सकता है। समअंक के कम होने से मछलियों की प्रजनन शक्ति पर भी बुरा असर पड़ता है। समुअंक 4.5 से. 6.5 के बीच हो तो चूने के प्रयोग से सुधारा जा सकता है और इसे 8 समुअंक तक सरलता से बढ़ाया जा सकता है। 9 से अधिक समुअंक भी मत्स्य-जीवन के लिए प्रतिकूल हो जाता है।

(ब) 4. जीव-रसायन-ओषजन आवश्यकता (जी० ओ० आ०)——अंग्रेजी में इसे बी. ओ. डी. (वायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमाण्ड) कहते हैं। किसी जल-क्षेत्र में अस्थायी प्रांगारिक पदार्थों द्वारा स्थायीकरण के लिए उपयोग में लायी जाने वाली ओषजन की मात्रा ही उसकी जीव-रासायनिक ओषजन आवश्यकता है। यह उस जल में उपलब्ध प्रांगारिक पदार्थों पर निर्भर है। प्रांगारिक पदार्थों का स्थायीकरण शाकाणुओं द्वारा होता है। किसी भी विशेष तत्त्व के स्थायीकरण में समय लगता है। अतः उसकी गणना 20° से. ताप पर पाँच दिन के अन्दर प्राप्त लक्षणों से की जाती है। एक जल जिसकी जी. जा. आ. 5 सी. पी. एम. पाँच दिन, 20° से. तापमान है, यह दर्शाता है कि इसमें कलुषीकरण बहुत नहीं है। जलाशय की तली में अस्थायी प्रांगारिक तत्त्वों की अधिकता तथा उत्प्रवाही के आगमन से जल का कलुषीकरण हो जाता है और जी. जा. आ. बढ़ जाती है। ऐसे में ओषजन की कमी के कारण मछलियाँ मरने लगती हैं।

(ब) 5. सिञ्चित क्षार——सिञ्चित क्षार को अम्ल-संयोजन-क्षमता की संज्ञा दी जाती है। इसके द्वारा मत्स्य-पालक जल-क्षेत्र, तालाब या जलाशय की मत्स्य-उत्पादन क्षमता को जान सकता है। सोडियम, पोटेशियम और मेगनीशियम के कार्वोनिट थोड़ी मात्रा में भी आरक्षित अम्ल तत्त्वों पर प्रभाव डालते हैं। प्रयोग के लिए इसे, जल में चूने की उपस्थिति के रूप में माना जाता है। जल के समुअंक को स्थिर रखने में कैल्सियम-बाई-कार्वोनिट को प्रत्यारोधक के रूप में जाना जाता है। जल में भा-संश्लेषण क्रिया के

कारण कार्बन-डाय-ऑक्साइड कम हो जाने के कारण समुअंक बढ़ जाता है और उपलब्ध कैल्सियम-बाई-कार्बोनेट, कार्बन-डाय-आक्साइड तथा चूने में अलग-अलग हो जायगा। यह क्रिया उस समय तक होती रहेगी जब तक समुअंक पूर्व स्थिति में न आ जाय। ये क्रियाएँ जल में निरन्तर होती रहती हैं जो समुअंक को स्थिर रखने के लिए आवश्यक हैं। पश्चिमी विद्वान हे (1941) और ह्यूट (1947) ने सिञ्चित क्षार के आधार पर पानी का वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया है--

(क) 0 से 0.15 सी. सी.	प्रति लिटर	मत्स्य-पालन के लिए अति अम्ल.
(ख) 0.15 से 2.00 सी. सी.	,,	,, उपयोगी.
(ग) 3.5	,,	,, अनुकूल.
(घ) 7.0 तथा अधिक	,,	,, अति कठिन-क्षारीय लवणों को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति.

(ब) 6. नत्रजन--उर्वरता के लिए अति आवश्यक तत्त्वों में नत्रजन प्रमुख है। पानी और भूमि को थोड़ी मात्रा में नत्रजन वर्षा और बिजली द्वारा प्रकृति से प्राप्त होती है। कुछ भूमि-शाकाणु भी नत्रजन को स्थिर कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। आवश्यक नत्रजन की प्राप्ति पूयन-चक्र (प्यूट्रिफिकेशन साइकल) से प्राप्त होती है। कुछ नीलहरि आप्यकाएँ भी नत्रजन को स्थिर करने की शक्ति रखती हैं। ओषजन-जीवी, अजारक-जीवी तथा अन्य शाकाणु मृत जीव और पौधों को सड़ाते हैं। शाकाणु नत्रजन को अमोनिया एवं हायड्रोजन सल्फाइड में विभक्त कर देते हैं। उद्जन की मात्रा पर अवलम्बित यह क्रिया न्यूनाधिक समय तक चल सकती है। उद्जन की समुचित मात्रा प्राप्त होने पर अमोनिया नाइट्रेट नाइट्राइट में परिवर्तित हो जाती है। यह इस चक्र की अन्तिम क्रिया है तथा नत्रजन प्राणियों को नाइट्रेट्स के रूप में प्राप्त होती है। यह नत्रजन-चक्र जलाशय में जीवन-चक्र के स्थिर रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नाइट्रेट्स, जो जल की उर्वरता के लिए आवश्यक है, प्राकृतिक तत्त्वों से पूरी नहीं हो पाती है; अतः मत्स्य-उत्पादन की वृद्धि हेतु और मन्द प्लवकों की अधिक उत्पत्ति के लिए प्रयोग शाला में 4 पी. पी. एम. नत्रजन, 1 पी. पी. एम. फास्फोरस और 1 पी. पी. एम. पोटाश की मात्रा को सन्तोषजनक फलदायक पाया गया है। नत्रजन और कार्बन की उपस्थिति का संयुक्त प्रभाव होता है। जलाशय के तल में कार्बोहाइड्रेट्स तत्त्वों की अधिकता होने पर शाकाणुओं द्वारा नत्रजन स्थिर किया जाता है। यह अजारक-जीवी प्राणियों को शक्ति प्रदान करता है और शाकाणु प्रसार का मुख्य तत्त्व भी है।

अमोनिया की मात्रा जल के कलुषीकरण की द्योतक है। शुद्धजल में इसकी मात्रा कभी भी 0.5 पी. पी. एम. से अधिक नहीं होती है। अमोनिया का विषैला प्रभाव 7.4 से 8.5 समुअंक के बीच अत्यधिक होता है।

(ब) 7. **फास्फोरस**--कार्बन नत्रजन आदि तत्त्वों की भाँति यह प्रकृति से उपलब्ध नहीं होता है। प्राकृतिक जलक्षेत्रों में यह सिलिका के साथ बहुत कम मात्रा में होता है। यह जल पौधों के लिए आवश्यक है। नत्रजन स्थिरण क्रिया में नत्रजन निष्क्रमण के साथ-साथ नष्ट जीवों में से फास्फोरस भी प्राप्त होता है, जो जल में प्राणी और पौधों की वृद्धि करता है। फास्फोरस की एक पी. पी. एम. की मात्रा प्लवकों की उत्तम वृद्धि के अनुकूल मानी गयी है।

(ब) 8. **पोटेशियम**--जल की उर्वरता को बनाने वाला यह दूसरा मुख्य रासायनिक संघटक है। जलाशय तल की स्थिति इसकी उपलब्धि की निदेशक होती है। रेतीली मिट्टी में पोटेशियम कम होता है और चिकनी-मिट्टी में पोटेशियम की मात्रा अधिक होती है। पोटेशियम, जल-पौधों के द्वारा सरलता से ग्रहण किया जाता है और उनकी वृद्धि करने वाला होता है। पौधों के सड़ने के बाद तालाब की मिट्टी में यह पुनः मिल जाता है। जल में इसकी मात्रा एक पी. पी. एम. अनुकूल मानी गयी है। यह बड़ी मछली की अपेक्षा छोटे बच्चों की वृद्धि पर अधिक प्रभावकारी होता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह क्षीण अम्ल-तत्त्वों को निकाल कर फास्फोरस-चक्र की सहायता करता है।

(ब) 9. **तालाब की मिट्टी**--तालाब की मिट्टी के रासायनिक रस का, तालाब की उर्वरता पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका पूरा ज्ञान नहीं हो पाया है तथापि इसकी उपयोगिता को स्वीकार लिया गया है। मत्स्य-पालकों का अनुभव है कि समान स्थिति में निर्मित जलाशयों की उर्वरता में भी अन्तर होता है। यह भी सम्भव है कि ऐसे तालाब का उत्पादन जिसमें उर्वरकों के प्रयोग न किये गये हों, उर्वरकों के प्रयोग किये गये जलाशय से कम अथवा बराबर हो। यह अन्तर भूमि की भौतिक और रासायनिक स्थिति से ज्ञात किया जा सकता है। तली में रहने वाले सूक्ष्म पौधों की उन्नति के लिए यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। जल की उर्वरता प्लवकों की उत्पत्ति का कारण बनता है तथा भूमि की उर्वरता के कारण नितल-जीवी सूक्ष्म-पादपों की वृद्धि होती है। जलाशय के उत्पादन का मूल्यांकन करते समय उसकी भूमि की जाँच को भी पूरा महत्त्व दिया जाता है। भूमि पोषक-तत्त्वों को जल में पहुँचाती है साथ ही जलाशय में वर्तमान तत्त्वों और बाहर से प्राप्त तत्त्वों को स्थिर करने में सहायता करती है। नितल-जीवी तो सदा ही इसी से पोषक-तत्त्वों की प्राप्ति कर वृद्धि को प्राप्त करते हैं। मत्स्य-पालन में लगातार उत्पत्ति क्षमता को बनाये रखने हेतु खनिजायन (मिनरलाइजेशन) आवश्यक है।

यह स्पष्ट है, जल की उर्वरता, उसकी मछली-भोज्य पदार्थों की उत्पादन क्षमता तथा पोषक-तत्त्वों को अनुकूल स्थिति में रखने के लिए रासायनिक प्रयोगों की समयावधि, जलों का वर्गीकरण, मत्स्य-पालन के वैज्ञानिक प्रचार और वृद्धि के लिए आवश्यक है।

इससे सम्बन्धित जीव-रासायनिकों की जिम्मेदारी भी बढ़ गयी है। उनकी मान्यता प्रयोगों और अनुभवों पर आश्रित होती है। आज भी अधिकांश मत्स्य-पालक पानी की जाँच स्वाद और रंग से ही करते हैं। स्फटिक स्वच्छ जल को मत्स्य-पालन के लिए अनुपयोगी माना जाता है। कुछ अलवण वाले समुद्री किनारों की नहरों का पानी भी अनुपयोगी माना जाता है। अतः मत्स्य-पालन के लिए आवश्यक है कि समय-समय पर पानी की रासायनिक जाँच द्वारा जल में उर्वरकों के प्रयोग का ठीक समय पता लगाया जाय और उसके बाद आवश्यक उपचार से उत्पादन क्षमता को बनाये रखने की कोशिश हो।

५

तालाबों के जल-जीव

प्रत्येक जलाशय या तालाब में प्राणि और वनस्पति-जगत् के असंख्य जीव विभिन्न अवस्थाओं में रहते हैं और प्रत्येक जीव-समूह की अपनी विशेष आवश्यकता होती है। अनुप्त (वरजिन) जलाशयों में यह जीवन प्राकृतिक रूप से चलता है। मत्स्योद्योग वाले तालावों में जीवों की रोकथाम करके केवल आवश्यक जीवों को ही रहने दिया जाता है और चुनी हुई मछलियों के उत्पादन और वृद्धि को ही महत्त्व दिया जाता है। अवाञ्छनीय जीवों को जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में मछलियों के लिए हानिकर हैं, जलाशय से बाहर निकालना और मछली के भोजन के लिए उपयोगी जीवों की उत्पत्ति कराना ही सफल मत्स्य-पालन के लिए आवश्यक है। ये आवश्यकताएँ मछलियों की जाति, उनकी भोजन रुचि और उनकी शारीरिक अवस्थाओं पर अवलम्बित हैं। उदाहरणार्थ प्लवक-भोजी (प्लेंक्टन फीडर) मत्स्य-पालन के लिए जलाशय का जीवन-चक्र इस भाँति सुधारना होगा, जिससे अधिकाधिक आवश्यक प्लवकों की उत्पत्ति हो सके और उसके आधार पर अधिक से अधिक मछली प्राप्त हो सके। वनस्पति-भोजी मछलियों के उत्पादन की सफलता के लिए आप्यका अथवा अन्य अनुकूल वनस्पतियों के उत्पादन में सहायता की जाती है। सर्वभक्षी तथा मांस भक्षी मत्स्य-जातियों के पालन में कृत्रिम भोजन द्वारा प्राकृतिक भोजन की पूर्ति की जाती है और चारा-मछली (दूसरी मछलियों के खाने के काम में आती है) को भी तालाब में बढ़ने दिया जाता है। ऐसे ही कुछ जीव और वनस्पतियों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

शाकाणु (बैक्टीरिया)—जलाशय के जीवों में शाकाणु विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रांगारिक वस्तुओं के खनिजीकरण के लिए आवश्यक है। उष्ण जलवायु में क्षारीय जलाशय इनकी उत्पत्ति के लिए अनुकूल होते हैं और ऐसे जलाशयों और तालाबों में इनकी प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति होती है। यह स्वतन्त्र प्लावी अथवा किसी पदार्थ पर चिपके हुए पाये जाते हैं। नितल की मिट्टी में शाकाणुओं की बहुतायत होती है। यह मन्द-

सामान्य जल-कीट
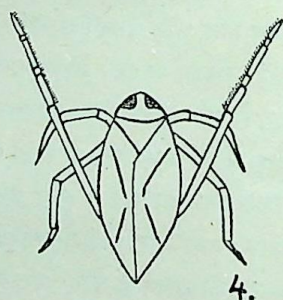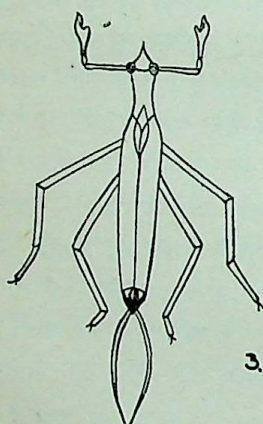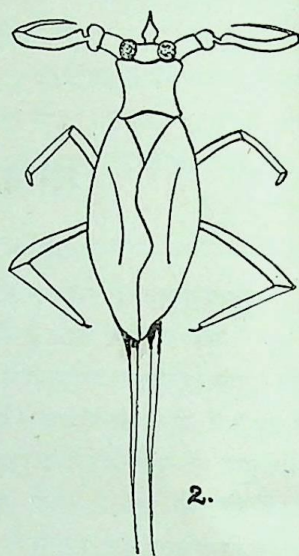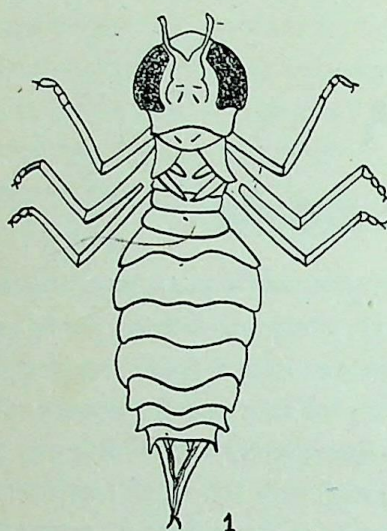
1. ड्रेगन फ्लाई का निम्फ
2. वाटर स्कॉरपियन
3. स्टिक इन्सेक्ट
4. बेक स्विमर

प्लवक मछलियों और प्राणि-प्लवकों के आहार तो हैं ही, साथ ही सड़ने के बाद नितल की श्लेषमीय मिट्टी (कोलाइडल) का निर्माण भी करते हैं। प्रयोगों से यह भी पता लगा है कि शफर जाति की मछली पालने के लिए पादक-प्लवकों की उपयोगिता सीमित ही है।

आप्यकाएँ (एल्गी)—आप्यकाएँ साधारणतः निमग्न रहती हैं परन्तु प्रचुर उत्पत्ति के बाद यह सैकड़ों की संख्या में पानी पर तैरती हुई दिखायी देती हैं। इनमें कारा, ओइ-डोगोनियम, लिंगविया, ओसिलेटोरिया नार्टेला एवं स्पाइरोगायस आदि प्रजातियाँ साधारणतः न्यूनाधिक मात्रा में वर्ष-भर जलाशय में प्राप्त होती हैं। इनके कुछ समूह संक्षिप्त अवधि के लिए ही मिलते हैं तथा कुछ ऐसी भी आप्यकाएँ हैं जो वर्ष भर नहीं रहतीं, फिर भी अधिकांश समय तक रहती हैं। यद्यपि आप्यकाओं के रूप और जातियों के ऊपर पानी की स्थिति और मौसम का असर अवश्य ही पड़ता है तथापि ये जलवायु अनुकूलन की अधिक क्षमता रखते हैं।

भारतवर्ष में जो प्रयोग हुए हैं उनसे यह पता चला है कि आप्यकाओं की प्रचण्ड उत्पत्ति साधारणतः वर्ष में दो बार होती है। ग्रीष्मकाल में वृद्धि कम और शीतकाल में अधिक होती है। सूत्र जैसी हरी आप्यकाओं में ज़िगमीना, स्पाइरोगायरा, बाल्वोकीटा तथा अगेगोनियम आदि प्रजातियों की शारीरिक वृद्धि प्रजनन और उत्पत्ति के लिए शीतकालीन मौसम अनुकूल रहता है, साथ ही डेस्मिड, क्लोरोकोकेल्स तथा मिक्सोफाइसी की कुछ आप्यकाएँ भी इस काल में प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं। ग्रीष्मकाल में डेस्मिड की उत्पत्ति कम हो जाती है, जिसका असर पादप-मन्द-प्लवकों पर भी पड़ता है, जो बिलकुल कम रह जाते हैं। वर्षा और वायु द्वारा पानी में होने वाली हलचलें तैरने वाले पौधों के साथ शत्रुवत् व्यवहार करती हैं।

पादप-मन्द-प्लवकों की उत्पत्ति के लिए जल में घुले हुए तत्त्वों का समाहार तथा भा-संश्लेषण के लिए समुचित प्रकाश सीमाकारक है। वर्षाकाल की सूर्य की रोशनी में विशेष आप्यकाएँ तालाब में उत्पन्न हो जाती हैं। यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है कि मन्द-प्लवकों की भाँति आप्यकाएँ भी मछलियों के लिए रुचिकर हैं और सुपच हैं। कुछ मछलियों में ये बिना पचे ज्यों की त्यों निकल जाती हैं। सूत्रवत् आप्यकाएँ मछली की गतिविधि में अवरोध उत्पन्न करती हैं तथा मछलियों के बच्चों के इनमें फँस जाने पर ये घातक भी हो जाती हैं। साधारणतः इन सूत्रवत् आप्यकाओं के होने पर प्लवकों की उत्पत्ति कम हो जाती है। संवर्धन-तालाबों में इनको नहीं होना चाहिये तथा अन्य तालाबों में इनकी अतिरिक्त वृद्धि रोकना उचित है। हरी तथा हरी-नीली आप्यकाओं की अधिक उपस्थिति से जल की सतह हरी और चिपचिपी हो जाती है तथा तालाब के नितल पर क्लेडोझोरा, स्पाइरोगायरा आदि जातियों की मोटी सतह जम जाती है। इनकी उत्पत्ति से असाधारण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो मछली पकड़ने में अवरोधक होने के साथ-साथ मछलियों के लिए भी घातक हो जाती हैं।

बड़े पौधे : तालाब के बड़े पौधों का वर्गीकरण साधारणतः उन्मग्न, निमग्न प्लावी तथा सीमान्तक रूपों में किया जा सकता है। इनमें निमग्न और प्लावी रूपों की बहुतायत

रहती है । नाइटेला, यूट्रीकुलेरिया, व्हेलिस्नेरिया, पोटामोजीटोन मीरियोफिलम, सिरेटोफिलम हाइड्रिला, चारा, रेननकुलस आदि साधारणत: प्राप्त समूल पौधों के वे रूप हैं जिनकी पत्तियाँ तैरती रहती हैं । लेमना, कुल्फिया, एजोला, पिश्चिया, तथा सेल्वीनिया ऐसे प्लावी रूपों के उदाहरण हैं जो साधारणत: मिलते हैं ।

तालाब में निमग्न-पौधे लाभदायक होते हैं और जल-जीवन को स्वस्थ रखने में सहायता करते हैं । ये कुछ मीन-प्रजातियों के आहार तो हैं ही, साथ ही अन्य आहार जीवों को संरक्षण भी देते हैं । यह अप्रांगारिक पोषक तत्त्वों को भूमि, जल और प्रकृति से ग्रहण करके जलाशय के जीवन-चक्र में लाते हैं । यद्यपि पौधे भी श्वास-क्रिया के लिए ओषजन का प्रयोग करते हैं तथापि दिन में भा-संश्लेषण क्रिया से यह कार्बन-डाय-ऑक्साइड को व्यय करके ओषजन उत्पन्न करते हैं जो जल-जीवन के लिए आवश्यक है ।

निमग्न पौधों में बहुत से समूल होते हैं । पौधों की अधिकता होने के कारण यह जल में वायुरोधक का रूप धारण करके हानिकारक हो जाते हैं । सिरेटोफिलम तथा यूट्रीपुलेरिया आदि कुछ जातियों में विशिष्ट मूल (जड़) नहीं होती है । अत: ये जल में तैरते रहते हैं । ये विशेष शारीरिक अंगों के कारण मछलियों के भोज्य जीवों को संरक्षण देते हैं । निमग्न-समूह में कमल और कमलिनी सुस्थिर मूल वाले पौधे है । इनके केवल पत्ते ही जल की सतह पर तैरते रहते हैं । ये निमग्न पौधे कभी-कभी इतनी शीघ्रता से बढ़ते हैं कि एक सप्ताह में ही जल में वायुरोधक स्थिति उत्पन्न हो जाती है । जल में पोषक-तत्त्वों की न्यूनता होकर प्लवकों की उत्पत्ति कम हो जाती है । ग्रास-कार्प, गौरामी तथा अन्य ऐसी ही कुछ मछलियाँ भोजन के लिए इनका उपयोग करती हैं । परन्तु यह अन्य मछलियों के गमनागमन में अवरोध उत्पन्न करने के साथ ही, इनकी भोजन-व्यवस्था पर ही प्रहार करती है । ऐसे जलाशयों में मछली पकड़ना भी कठिन हो जाता है । अधिक जल-पौधों के पैदा होने पर जल-जीवन की सामान्य स्थिति में अन्तर आ जाता है तथा मछलियों की भी हानि होनी प्रारम्भ हो जाती है । शफर जाति की कुछ मछलियाँ इन पौधों को सड़ती हुई स्थिति में खाती हैं तथापि इनके पोषक महत्त्व के बारे में अधिक खोज नहीं हुई है । रोहू, मिरगल आदि भोजन के रूप में इनका सीमित उपयोग करती हैं । कतला निमग्न-पौधे बिल्कुल ही नहीं खाती है ।

निमग्न-पौधों की प्रचुर उत्पत्ति द्वारा जीव-जनित निचूर्णियन (वायोजनिक डीकेल्सफिकेशन) होकर समुअंक बढ़ जाता है और यह अवस्था जल-जीवन के लिए हानिकारक है । इससे मछलियों में पक्ष-अपक्षय जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं । बहुधा अधिक मात्रा में जल-पौधों के सड़ने के कारण उनका खनिजीकरण असम्भव हो जाता है और इससे वातावरण दूषित हो जाता है ।

स्वतन्त्र प्लावी-पौधों का विशिष्ट उदाहरण जलकुम्भी (इकोर्निया) है । पिस्टिया

साधारणतः जल में श्वासावरोध उत्पन्न कर देती है। लेमना, एजोला आदि दूसरी जातियाँ पानी पर हरी सतह बना लेती हैं। बहुधा ये जातियाँ जल के ऊपर फैलकर उसे पूर्णतः ढक लेती हैं, जिससे प्रकाश और वायु के लिए अवरोध उत्पन्न हो जाता है। फलतः निमग्न सतह पर आहार उत्पादन अतिशय सीमित रह जाता है।

सीमान्तक और उन्मग्न-पौधों में किनारों, उथले जल और दलदली क्षेत्रों में उत्पन्न बड़े पौधे आते हैं। फ्रेग्माइटिस, टाइफा, स्किपर्स, एकोरस आदि साधारणतः उपलब्ध पादप जातियाँ है। मार्सीलिया, हरपेस्टिस, केमोलिना आदि सीमा पर पट्टी बना लेते हैं, और जूसिया, आइपोमिया आदि जल-सतह पर रहते हैं। ये पानी के किनारों पर भी उसी प्रकार रहते हैं जैसे कि पानी में निमग्न हो जाने पर। डूब जाने की अवस्था में इन पर कोई भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। संवर्धन तालाबों में यह हिंस्र कीड़ों के निवास और प्रजनन का स्थान बन जाते हैं। अतः इन्हें तुरन्त ही निकाल देना चाहिये। किनारों के जल पौधे, वायु और जल के जोरदार झोकों से तालाब के बाँध और किनारों की मिट्टी के कटाव को रोकते हैं। तुरन्त ही खाद युक्त तालाबों में जैविक वृद्धि के लिए इनकी उपस्थिति अनुकूल फलदायक होती है तथा कुछ मछलियों के प्रजनन के समय अण्डे रखने के लिए भी इनकी उपयोगिता है। तालाब में पौधों की उत्पत्ति एक सीमा तक ही लाभकारी है। अधिकाधिक उत्पत्ति से हानि प्रारम्भ हो जाती है। अतः इनका नियन्त्रण आवश्यक होता है। जलपौधों का नियन्त्रण विस्तार से अन्यत्र (दूसरे परिच्छेद में) लिखा जा चुका है।

प्राणि- प्लवक (जू-प्लेक्टंन)—पौधों की भाँति ही प्राणि-प्लवक भी प्लावी, स्थिर तथा नितल जीवी होते हैं। अन्वीक्ष्य प्राणि-समूहों में से क्लेडोसिरन्स, कोपीपोड्स रोटीफर्स और फ्लेजीलेट्स मुख्य हैं। इनकी प्रचुरता में पादप-प्लवकों की भाँति ही मौसम के अनुसार सामयिक परिवर्तन होता रहता है। प्रांगारिक तत्त्वों की प्रचुरता वाले जलाशयों में क्लेडो-सिरन्स अधिक, कोपीपोड्स तथा रोटीफर्स कम मात्रा में रहते हैं। यूट्रोपिक जलाशयों में रोटीफर्स की प्रचुरता होती है। प्राणि-मन्द-प्लवक की उपस्थिति मत्स्य-पालन जला-शय की उर्वरता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ये बच्चा-मछली के भोज्य पदार्थ हैं।

कुछ बड़े प्राणि समूहों में जलाशय के कीट, कृमि, घोंघे और क्रस्टेशियन्स महत्त्वपूर्ण हैं। नाग्रस चीटीगेस्टर, डीलो, ओरोफोरस आदि कृमि तल की मिट्टी तथा पौधों में निवास करते हैं। कीटों की इल्ली, पूर्ण अवस्थाओं की प्राप्ति सामान्यतः यहीं करती हैं। मेफ्लाई केडिसफ्लाई आदि साधारणतः मिलने वाली मछलियों की प्रजातियाँ हैं और यह कुछ मछलियों का आहार भी है। इल्ली मच्छर स्थिर-जल में वहुतायत से प्राप्त होती है, मच्छर की पाली जाने वाली जातियों का यह आहार है। काइरोनोमिड्स कीटों की इल्ली शफर-मछली का मुख्य आहार है। संवर्धन-तालाबों में रेनेट्रा, नीपा, नोटोनेक्टा आदि बहुत हानिकारक भी होते हैं, जिनका विस्तार से वर्णन अन्यत्र किया गया है।

अवाञ्छित मछलियों को भी प्रमुखतः दो विभागों में बाँटा जा सकता है––

(1) मांसाहारी मछलियाँ
(2) तृणक-मीन (फोरेज फिश)

अवाञ्छित मछलियों की मत्स्य-पालन तालाब या संवर्धन-तालाब में बिलकुल भी आवश्यकता नहीं होती है। ये हानिकारक होती हैं। परन्तु सिंचाई जलाशयों में किसी निश्चित मात्रा में इनकी उपस्थिति आवश्यक भी होती है। तृणक-मछलियाँ कीटों की इल्ली आदि नियन्त्रण के लिए आवश्यक और लाभदायक हैं। परन्तु ये पाली गयी मछलियों के साथ स्थान और भोजन में स्पर्धा करती हैं। अतः इनकी संख्या न्यूनतम और नियन्त्रित रखनी चाहिये। ऐसी इल्ली-भोजी मछलियों के रखने और पादप समूहों के नियन्त्रण से मच्छरों के प्रजनन को नियन्त्रण में रखा जा सकता है।

मांसाहारी मछलियाँ, पाली जाने वाली मछलियों के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार करती हैं। सर्पशीर्ष मछलियाँ (मरल्स) पढीन, एनाबस, डींगरा तथा अन्य विडाल मछलियाँ ऐसी ही मछलियाँ हैं। समय-समय पर पानी को निकाल कर जलाशय की सफाई द्वारा इन मछलियों की संख्या कम की जा सकती है। ऐसे जलाशयों में जिनके तल की मिट्टी नहीं निकाली जाती, जिनका पानी नहीं निकाला जा सकता है, इस प्रकार की मछलियों के निवास की अनुकूल परिस्थितियाँ रहती हैं। मांसाहारी मछलियों को निकालने का नवीन प्रयोग अमोनिया द्वारा किया जाता है। अमोनिया की दस पी. पी. एम. मात्रा से सर्पशीर्ष और मरल्स आदि मछलियाँ भी मर जाती हैं और तालाब की सफाई हो जाती है तथापि पाली जानेवाली मछलियों से युक्त तालाब में से काँटों और डोरियों की सहायता से निरन्तर मछलियाँ मारकर, इनकी संख्या कम की जा सकती है।

अन्य प्राणि-समूहों में से यद्यपि सभी पूर्णतः जलाशय में जीवन व्यतीत नहीं करते तथापि ऊदबिलाव भी मछली के लिए हानिकारक है। जल-कौआ, वगुला, किंग फिशर, फिशईगल इत्यादि पक्षियों का प्रमुख भोजन मछली है। जल-कौए २०-३० के झण्डों में पंखों को फड़फड़ाते हुए तैरती हुई मछलियों को उथले में खींच ले जाते हैं और उनका खुलकर आहार करते हैं। एक जल-कौआ प्रतिदिन अपने भार से दुगुने भार की मछली का आहार करता है या कर सकता है। मछलियों के विनाश को रोकने के लिए जलाशय के ऊपर डोरी फैला दी जाती है।

जलबिडाल मछलियों के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं और ये पहाड़ों तथा मैदान में समान रूप से पाये जाते हैं। एक बिडाल जल में घुसकर यद्यपि वहुत कम मछलियाँ खाता है तथापि वहुत मछलियों को मारकर नष्ट कर देता है। इसको रोकने का सर्वश्रेष्ठ उपाय विडाल-पिंजरा है। कहीं-कहीं जलबिडाल भोजी कुत्ते उपयोगी पाये गये हैं। कुछ साँप भी मछलियों के लिए हानिकारक होते हैं, जिन्हें सर्प-पिञ्जरे से पकड़ा जा सकता है।

६

संवर्धन-योग्य मछलियों का चुनाव

मत्स्य-पालन द्वारा एक इकाई जलक्षेत्र से, उतनी ही भूमि में कृषि-कर्म की अपेक्षा अधिक धन प्राप्त किया जा सकता है। मत्स्य-पालन से अधिक लाभ अर्जित करने और अधिक मछली उत्पन्न करने के हेतु मत्स्य-पालक को मछलियों के चुनाव और जल व्यवस्था के सम्पूर्ण उपयोग के लिए कुछ सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है। हर-प्रकार के जलाशय में मत्स्य-उत्पादन किया जा सकता है परन्तु प्रत्येक जलक्षेत्र में हर प्रकार की मछलियाँ नहीं पाली जा सकती हैं। अतः आधारभूत-सिद्धान्तों के विवेचन के पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि जलाशय में किस प्रकार का मुख्य भोजन प्राप्त होता है।

जलाशय के पोषक-तत्वों का चक्र

यद्यपि मत्स्य-पालन अन्य उच्च प्राणी-वर्ग के पालन से अधिक लाभकारी है तथापि प्रत्येक मछली की प्रांगारिक-तत्त्वों को मछली-मांस में बदलने की सापेक्ष क्षमता है। इसको ज्ञात करने के लिए जलाशय का पोषण-चक्र तथा आहार-शृंखला की जानकारी आवश्यक है। खनिज, वायु और सूर्य-शक्ति-गर्मी आधारभूत तत्वों को सड़ा कर शाकाणु समूह पोषक-चक्र की मुख्य और प्रथम कड़ी है। नाशक-शाकाणु (डिस्ट्रक्टिव बैक्टीरिया) सड़ाने की क्रिया में सहायता करते हैं परन्तु कार्बन डायऑक्साइड का उपयोग ये क्लोरोफिल के अभाव में नहीं कर पाते हैं और ऑक्सीजन का ही उपयोग करते हैं। प्राणी और वनस्पति को सड़ाने की मुख्य क्रिया, कुछ शाकाणुओं द्वारा उत्पन्न जीव किण्वों (फार्मेंट्स) द्वारा तेजी पकड़ती है। नाइट्रोजन पृथक् करने वाले शाकाणु तथा अन्य शाकाणुओं की मिश्रित क्रियाओं द्वारा मृत प्राणी और वनस्पतियों से नाइट्रोजन प्राप्त होकर पोषण-चक्र को प्राप्त हो जाती है। जलग्रहण-क्षेत्र से पानी के साथ-साथ कुछ विलीन नाइट्रेट्स, नाइट्राइट्स और फास्फेट्स भी प्राप्त हो जाते हैं। इन पोषक-तत्त्वों को आप्यकाएँ ग्रहण करती हैं और सम-यान्तर में ये आप्यकाएँ प्रजीवों (एल्गी), रोटीफर्स तथा अन्वीक्ष्य (माइक्रोस्कोपिक) क्रस्टे-

शियन्स का भोज्य बनाती हैं। प्रजीवों और रोटीफर्स को, कीट और क्रस्टेशियन्स आहार बनाते हैं। ये प्राणी और पादप-मन्द-प्लवक छोटी तथा बड़ी मछलियों का भोजन बनते हैं। कुछ मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को भी आहार बनाती हैं। आप्यकाओं मन्द-प्लवकों और मछलियों की मृत्यु के बाद शाकाणुओं द्वारा इनके शरीरों को पुनः अप्रांगारिक आधार-तत्त्वों में बदल दिया जाता है और पोषण-चक्र की पुनर्स्थापना होती है।
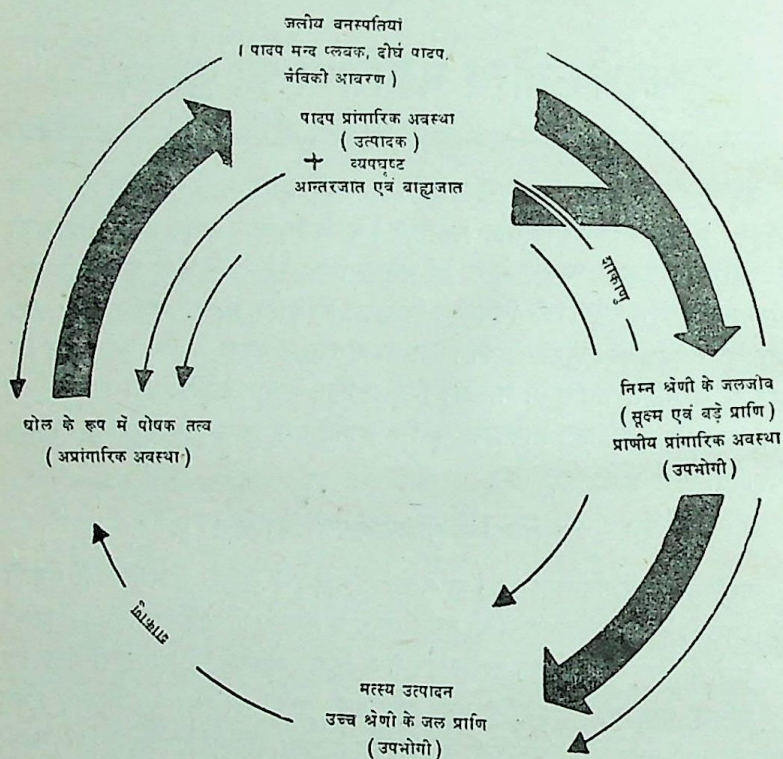
मीठे पानी में मत्स्य-उत्पादन का चक्र
(हुयेट से साभार)

यह भोजनचक्र की रूपरेखा मात्र है परन्तु बीच में विभिन्न जैविकी-शृंखला भी आ जाती है। यह चक्र वास्तव में एक जटिल चक्र है। यह पोषण-चक्र आ ह्रासी प्रत्याय (लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न) की प्रक्रिया है, कारण, इससे निरन्तर शक्ति का उष्मकरण (डिस्सीपेशन) होने से, पादप से प्राणि तक की, सम्पूर्ण शृंखला में भार की हानि होती रहती है। इस शृंखला में भार में कितनी कमी होती है, इसका पता लगाना असम्भव

ही है। श्री मेक गिनेटी (1935) के मतानुसार 10,000 पौण्ड आप्यकाएँ 1,000 पौण्ड अन्वीक्ष्य क्रस्टेशियन पैदा करती हैं, 1,000 पौण्ड प्राणि-मन्द-प्लवक 1,00 पौण्ड छोटी मछली-वनाती है। 100 पौण्ड छोटी मछली द्वारा 10 पौण्ड बड़ी मछली और जो 1 पौण्ड मानव वनाती है।

मत्स्यों के चुनाव सम्बन्धी विचारणीय नियम

सीमित परिमाण में प्राप्त होने-वाले प्रांगारिक तत्त्वों से अधिकाधिक भोज्य मीन-माँस को प्राप्त करना ही लाभकारी या मत्स्य-पालन का उद्देश्य है। अत: लक्ष्य पूर्ति के लिए मछलियों को चुनने में अधिक सावधानी वरतनी होगी। तथा निम्नांकित विचारणीय नियमों के पालन से सन्तोषप्रद लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(1) पाली गयी मीन-प्रजातियों की वृद्धि क्षमता अधिक हो अर्थात् जो कम से कम आयु में अधिक से अधिक भार प्राप्त कर सकें। अध्ययन के उपरान्त यह पाया गया है कि भारत की शफर-मीनें इस दृष्टि से अच्छी हैं।

(2) पाली जाने वाली मछलियाँ एक दूसरे के प्रति सहिष्णु हों तथा सव मछलियों की भोजन-सम्वन्धी आदतें समान न हों। एक ही प्रकार के तथा एक ही सतह पर प्राप्त भोजन को खाने वाली मछलियाँ न तो सुखी रह सकेंगी और न ही वाञ्छित वृद्धि को प्राप्त होंगी, साथ ही जल की अन्य सतहों में प्राप्त भोजन सामग्री का भी उपयोग न हो सकेगा। अत: विभिन्न सतहों और असमान प्रवृत्ति वाली सहिष्णु मछलियों के एक साथ पालन से, उपलब्ध समस्त भोज्य पदार्थ का उपयोग हो सकेगा और मछली उत्पत्ति में भी वृद्धि होगी। इसलिए भारतवर्ष के मत्स्य-पालकों ने अपने अनुभव के आधार पर कुछ "मीन-समूह" या "सहचारी-मछलियों" को एकत्र किया है, जो एक साथ उपस्थित रहते हुए, उपलब्ध समस्त भोज्य पदार्थों का उपयोग कर लेती हैं।

(3) पोषण-चक्र की शृंखलाओं को कम से कम करने वाली मछली की उपादेयता स्पष्ट ही है। आप्यका अथवा पादप-मन्द-प्लवकों से सीधे मछली की उत्पत्ति अधिक लाभ-कारी है, अत: पाली जानेवाली मछलियाँ 'प्लवक-भोजी' अथवा 'वनस्पति-भोजी' होनी चाहिये, हिंस्र, मत्स्य-भोजी (पिस्सीवोरस) अथवा स्ववंश-भोजी (केनीवलिस्टिक) नहीं होनी चाहिये। इन्हीं गुणों के कारण, देश में वनस्पति-भोजी अथवा व्यपघृष्ट (डेट्रीटस) भोजी मछलियों को ही पालते हैं। इनके वनस्पति-भोजी स्वभाव के कारण मछलियाँ एक दूसरे के प्रति साधारणत: सहिष्णु भी होती हैं।

(4) पाली जाने वाली मछलियाँ स्थिर-जल में प्रजनन की क्षमता रखती हों। इस कारण मछलियों के एक बार संग्रहण के बाद प्रजनन प्रारम्भ होने पर निरन्तर ही

मछली प्राप्त होती रहेगी तथा संचय की पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं रह जायगी। इससे उत्पादन के मूल्य में कमी होकर मत्स्य-पालन अधिक लाभदायक हो सकेगा।

मछलियों के किसी भी सहचारी समूह में उपरोक्त सभी गुणों का पाना कठिन है। तथापि सर्वाधिक गुणों से युक्त सहचारी समूह का पालन उपयोगी होगा और जो गुण न हो, उसे प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न करना चाहिये।

(5) अधिकाधिक मछली प्राप्त करने के लिए यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उत्पन्न की गयी मछली का बाजार में क्या मूल्य होगा। स्थानीय बाजार के ग्राहकों की पसन्द और खपत पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा और इसलिए मत्स्य-पालन में अहिंसक मछली के साथ ही साथ कुछ हिंस्र मछलियों का भी पालन करना ठीक रहेगा। माँसभोजी-मछली का माँस, वनस्पति-भोजी मछली के माँस की अपेक्षा अधिक सुस्वाद बताया जाता है। साथ ही जलाशय में प्रजनन करने वाली वनस्पति-भोजी-मत्स्यों के साथ-साथ सामान्यतः सीमित अनुपात में मांस-भक्षी मछलियाँ भी संग्रह की जाती हैं जिससे जलाशय में मत्स्य-आबादी के घनत्व को अनुकूलता प्राप्त होकर, वाञ्छित परिमाण में मछली मिलती रहती है। कुछ माँस-भक्षी मछलियों की बाजार में माँग होती है और उद्योग को लाभ पर चलाने के लिए जनता की माँग भी पूरी करनी होती है। किसी भी प्रदेश में मत्स्य-पालन करने के लिए उस प्रदेश की मुख्य माँग अथवा मितव्ययिता किसी एक को ही आधार नहीं बनाया जा सकता है।

मछलियों के चुनाव सम्बन्धी कतिपय महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानने के बाद यह ज्ञात होता है कि कोई भी ऐसी व्यापक-मीन नहीं है जिसके पालन का प्रस्ताव किया जा सके। मीन-संवर्धन और उत्पादन की निपुणता मछली तथा स्थानीय जलवायु की परिस्थितियों पर आधारित है। प्रत्येक मछली की ओषजन माँग, तापक्रम की सहिष्णुता, भोजन की आवश्यकता आदि पृथक् ही होती हैं। सम्भव है एक शीघ्र बढ़ने वाली मछली, जलाशय में उपलब्ध आहार का उपयोग न कर सके परन्तु अन्य साधारण मछलियाँ वहीं से अधिक वृद्धि प्राप्त कर सकती हैं। मीन विशेष का पालन तथा उसका आहार उपलब्ध करना भी मितव्ययी न होगा। हो सकता है किसी मछली की माँग स्थानीय बाजार में सर्वाधिक हो तथापि उसके अतिशीघ्र सड़नेवाले माँस को उचित स्थिति में बाजार तक लाना भी सम्भव न हो सके। इसी प्रकार कुछ मछलियाँ अधिक जीवित रहने की शक्ति सम्पन्न होने से बाजार में अच्छी हालत में पहुँच सकती हैं और अधिक बिक्री के योग्य हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में प्रयोग और अनुसन्धान द्वारा प्रत्येक जलाशय के योग्य मछलियों का चुनाव करना और भोजन की पोषण-क्षमता का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। उष्णप्रदेशीय मछलियों का संवर्धन-सम्बन्धी ज्ञान सीमित ही है और जो भी सूचना प्राप्त है वह केवल अनुभव के आधार पर ही है।
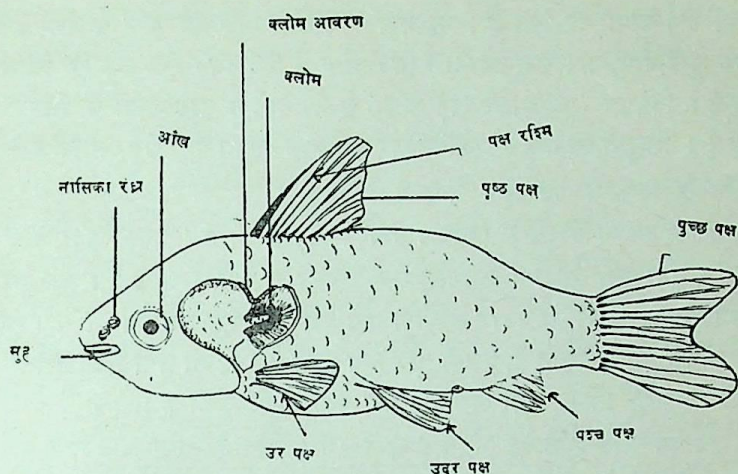
मछली के विभिन्न अंग

पाली जाने वाली मछलियाँ

(अ) प्लवक और व्यपघृष्ट जीवी (प्लेंकटन तथा डेट्रीट्स भोजी)

1. **कतला-कतला (भाखुर)**——यह उत्तर-भारत की सभी नदियों में प्राप्त होती है तथा दक्षिण में गोदावरी नदी में भी प्राप्य है। सञ्चय के कार्यक्रम के परिणामस्वरूप अब यह कृष्णा एवं कावेरी नदियों में भी सामान्यतः प्राप्त है। यह भारत की सबसे अधिक बढ़नेवाली (फास्ट ग्रोइंग) मछली है।

इसका शरीर दीर्घायत, ऊँचाई अधिक, अनति सम्पीडित, सिर चौड़ा, आँखें नीचे के भाग में स्थित, ऊपर की ओर उठा मुँह, नीचे का ओठ मोटा, स्पर्शा रहित, बड़े और नियमित शल्क, पार्श्वरेखा 40-43, इसका रंग सुरमई और पेट पर चाँदी जैसी चमक, पक्ष गहरे रंग के कभी-कभी काले इत्यादि इसको पहचानने के विशिष्ट लक्षण हैं। इसकी अधिकतम लम्बाई 1.8 मीटर तक होती है। इसके शिशु 1 से 3 से० मी० तक की लम्बाई में बड़े सिर तथा लाल-क्लोमों से पहचाने जाते हैं।

मीठे पानी की यह मछली अल्प अलवण-जल में भी रह सकती है तथा यह रुके हुए पानी (स्थिर जल) में पालने योग्य है। यह साधारणतः तालाब में प्रजनन नहीं करती है परन्तु विशेष परिस्थितियाँ उपलब्ध होने पर बाँधों के सीमित जल में भी प्रजनन पाया जाता है। यह वर्षाकाल में जून से अगस्त तक प्रजनन करती है। कतला 56 से० मी० लम्बी और लगभग 3-4 वर्ष की अवस्था होने पर लैंगिक परिपक्वता (सेक्सुअल

मेच्यूरिटी) प्राप्त कर लेती है। यह नदी के उथले किनारे की भूमि में अण्डे देती है। इसके अण्डे गोल, पारदर्शक तथा 2.0 मि० मी० से 5.2 मि० मी० तक के व्यास वाले होते हैं। निषेचन (फर्टीलाइजेशन) के 16 से 20 घण्टे के बाद अण्डों से शिशु निकल आते हैं। शिशुओं को नदी से एकत्रित कर आवश्यक स्थानों पर भेजा जाता है जहाँ ये संवर्धन के लिए सञ्चय किये जाते हैं।

कतला स्कम्भ और तल (कॉलम तथा सर्फेस) भोजी है। इसका बड़ा और ऊपर की ओर मुड़ा हुआ मुँह तथा क्लोमाँशु मन्द-प्लवकों का आहार करते हैं। डूबे हुए पौधे कतला के लिए किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं हैं। अतः ऐसे जलाशयों में जहाँ डूबे हुए पौधे अधिक मात्रा में होते हैं, इसकी वृद्धि कम होती है। इल्ली तथा शिशु कतला एक-कोशी आप्यका, कीटाणु और प्राणि-प्लवकों का आहार करते हैं।

एक वर्ष के अन्त में यह 38 से 450 से० मी० लम्बाई तथा 900 ग्राम भार की हो जाती है। दूसरे वर्ष के अन्त तक भार 4 से 5 कि० ग्रा० तक हो जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में इसकी लम्बाई 7.5 से 10.0 से० मी० प्रतिमास बढ़ती है। भारत के जलाशयों में अन्य मछलियों के साथ यह मछली सर्वाधिक मात्रा में पाली जाती है।

2. **लेबिओ-फेम्ब्रिएटस** (सफेद रोहू)—यह पञ्जाब, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बम्बई आदि प्रान्तों में प्राप्त होने के साथ-साथ मद्रास, आन्ध्र तथा मैसूर में भी प्राप्त होती है। मद्रास के जलाशयों में यह मुख्यतः संग्रहण के लिए उपयोग की जाती है। इसकी वृद्धि मन्द होते हुए भी यह लगभग 60-65 से० मी० की लम्बाई तक पहुँच जाती है।

रोहू और कालवसू की तुलना में इसका शरीर गंभीर होता है। पेट के अनुपात में पीठ अधिक उदुब्ज होती है। सिर की लम्बाई, तुण्ड रहित लम्बाई के बराबर होती है। तुण्ड सूजी हुई-सी, अधिकोण तथा छिद्रायुक्त तथा मुँह प्रलांबी होता है। इसके ओंठ मोटे और झल्लरित होते हैं, छोटे और पतले तुण्डास्थि (रोस्ट्रल) और उपजम्मु (मेक्सी-लरी) स्पर्शा होते हैं। पृष्ठ पक्ष की लम्बाई सर की लम्बाई के बराबर होती है तथा यह अधरपक्ष तक नहीं पहुँच पाता। इसका रंग चमकीला चाँदी जैसा होता है जो पेट और पार्श्व में हलका होता है, हर खपले के बीच में एक सुनहरा टीका सा होता है। इसके पक्षों पर काले और शल्कों पर लाल धब्बे होते हैं।

यह स्वभाव से नदी की मछली है परन्तु जलाशयों में भी संवर्धन के लिए उपयोगी है। यह जलाशयों में प्रजनन नहीं करती अपितु वर्षाकाल में नदियों में प्रजनन करती है। अत्यधिक ग्रीष्म होने पर और वर्षा न होने पर भी यह नदियों में अण्डे दे देती है। यह प्रथम वर्ष के अन्त में 20-25 से० मी० की लम्बाई प्राप्त कर लेती है। इसका मुख्य आहार सूत्रवत आप्यका, प्राणि-मन्द प्लवक है। प्राणि-मन्दप्लवकों में यह प्रोटोजोआ,

रोटीफर तथा कोपी पोइडस को अधिक पसन्द करती है। इसके पेट में उक्त पदार्थों के अतिरिक्त मिट्टी और रेत भी अवश्य ही प्राप्त होती है जो इसके भोजन सम्बन्धी स्वभाव को स्पष्ट करती है।

शिशु मुख्यत: फेम्ब्रिएटस, डायएटम्स और डेस्मिड्स खाते हैं।

3. **सिहिना-रीवा (रेवा)**—यह मलाबार क्षेत्र को छोड़कर लगभग सारे भारत में पायी जाने वाली गौण-शफर है। यद्यपि इसकी सर्वाधिक-अभिलिखित लम्बाई 30.5 से० मी० ही है तथापि मद्रास प्रान्त में संवर्धन के लिए इसका उपयोग अधिक किया जाता है।

इसका पैना सिर और षट्कोणीय शल्क, पहचान के विशिष्ट लक्षण हैं। पेट की अपेक्षा पीठ अधिक उठी हुई होती है। तुण्ड को छोड़कर सिर की लम्बाई-चौड़ाई के बराबर होती है। पार्श्व-रेखा में 35-38 शल्क होते हैं। एक जोड़ तुण्डास्थि स्पर्शा होते हैं। अंस-पक्ष की लम्बाई सिर के बराबर ही होती है। पुच्छ पक्ष के खण्ड गहन तथा शरीर का रंग चाँदी जैसा व नीली अन्वायाम (लोंगीट्यूडिनल) रेखायुक्त होता है। 10-15 मि० मी० लम्बे शिशुओं की पुच्छ पर तीन काले विशिष्ट धब्बे होते हैं, दो पुच्छ पर तथा एक पुच्छ-वृन्त पर पाया जाता है।

नदी की यह मछली जलाशय में भी पालने योग्य है। साधारणतया यह जलाशयों में प्रजनन नहीं करती है। परन्तु इसको वहीं पाला जाता है जहाँ प्रमुख शफरों के बच्चे नहीं मिल पाते हैं। यह जीवन के प्रथम वर्ष के अन्त तक ही लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। जून से सितम्बर तक वर्षाकाल में प्रजनन करती है और अपने अण्डे उथले स्थानों में देती है। अण्डों का व्यास 2.8-3.2 मि० मी० होता है तथा 28° डिग्री तापमान पर लगभग 15 घण्टे बाद शिशु पैदा होता है। पीतक-स्यून (योक) तीन दिन बाद समाप्त होता है।

2 से० मी० तक की लम्बाई होने तक, यह एक कोशीय आप्यका और प्रजीव का आहार करती हुई आगामी जीवन में प्राणि-प्लवक-भोजी बन जाती है। 8 से० मी० से अधिक लम्बी मछली का आहार प्रौढ़ों की भाँति होता है। इसके भोजन का 70-80 प्रतिशत हरित और नील हरित आप्यका, डायएटम्स, तथा बड़े पादपों का बचा हुआ हिस्सा होता है, शेष प्राणि-मन्दप्लवक होते हैं।

यद्यपि यह गौण शफर है, फिर भी बहुत शीघ्रता से बढ़ती है। प्रथम वर्ष के अन्त तक इसकी लम्बाई 25-28 से० मी० हो जाती है।

4. **सिरहिना-सिरौसा (वैन-केण्डाह)**—यह मछली दक्षिण भारत में तमिलनाडु की कावेरी नदी की मुख्य मछली है और सर्वाधिक प्राप्य शफर है। डे महाशय ने इसकी प्राप्ति कृष्णा और गोदावरी नदियों में भी बतायी है।

छोटा सर, कुण्ठित तुण्ड, पतले ओंठ तथा अभिदृश्य पृष्ठ-पक्ष 14-15 शाखायुक्त, पृष्ठ रश्मि सहित जिसकी कुछ रश्मियाँ अधिक लम्बी होती हैं, चमकीला रंग जिसके शल्कों पर पेट को छोड़कर, लाल धब्बे होना इसकी पहचान के मुख्य लक्षण हैं। पेट की अपेक्षा पीठ अधिक उठी हुई होती है। तुण्ड के अतिरिक्त सिर की लम्बाई-चौड़ाई बराबर होती है तथा दो जोड़ स्पर्शा होते हैं। तुण्डास्थि–स्पर्शा लम्बे होते हैं।

यह भी जलाशयों में प्रजनन नहीं करती है, फिर भी यह नदी की मछली, संग्रहण के लिए उपयोगी है। यह एक वर्ष की आयु पर जब 20-25 से० मी० लम्बी होती है, लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। नदी के तेज बहाव वाले क्षेत्रों में तथा जुलाई से नवम्बर (वर्षाकाल) में यह अण्डे देती है। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 35 से० मी० अभिलिखित है।

यह मछली, मिरगल की भाँति ही नितल-स्तम्भ (बाटम-कॉलम) भोजी ही ज्ञात होती है। मिट्टी और रेत युक्त निर्वासोदीय (म्यूसिलेजिनस) तत्त्व इसके भोजन का मुख्य भाग होता है। आहार का लगभग 60 प्रतिशत पादप-मन्द-प्लवक तथा शेष प्राणि-प्लवक होता है। इसके शिशुओं का भी यही भोजन होता है। यह सहिष्णु-मीन जलाशय में एक वर्ष के अन्त में 25-30 से० मी० लम्बाई तथा 350 ग्राम भार प्राप्त कर लेती है।

5. **लेबिओ-कोण्टियस (शूकर-मुख शफर)**—यह मध्यम श्रेणीय शफर भी दक्षिण भारत की कावेरी तथा कोलेरोन नामक नदियों में पायी जाती है। इसकी प्रकूट तुण्ड, झल्लरीयुक्त अधरोष्ठ, अधोवसानिक-मुख पहचान के विशिष्ट लक्षण हैं। आँखों के ऊपर सिर का भाग न्युब्जाकार तथा नेत्रों के बीच की जगह चपटी होती है। ओष्ठ मोटे तथा तुण्ड मुख के ऊपर प्रलम्बी होती है। पृष्ठ-रेखा 38-41 शल्कयुक्त, शरीर का रंग ललामी लिए हुए पीठ के ऊपर गहरा होता है। सर्वाधिक लम्बाई 60 से० मी० होती है।

यह विशेषतः वनस्पति-भोजी मछली है। इसका भोजन आप्यकांशु, डायएटम्स, तथा कुछ बड़े पौधे होता है। शाक-आहार के साथ कुछ कोपीपोड्स, रोटीफर्स तथा कीटाणु भी मिलते हैं। आहार का लगभग 1/3 भाग मिट्टी और रेत होता है। मुखाकृति तथा भोजन के कारण इसे नितल स्कम्भ भोजी कह सकते हैं।

जलाशयों में संग्रहण के लिए उपयोगी यह मीन, नदियों में वर्षाकाल में प्रजनन करती है तथा यह जलाशयों में अण्डे देतीहै। यह वहीं पर संग्रहण के लिए उपयोग की जाती है जहाँ पर प्रमुख-शफर प्राप्त नहीं होती है। प्रथम वर्ष के अन्त तक यह लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। इसके अण्डे जो तेज बहाव वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं निमज्जी, पार-दर्शी तथा 3.5-4.0 मि० मी० व्यास वाले होते हैं। इसके अण्डों से लगभग 20 घण्टे बाद शिशु निकलता है। शिशु क्रस्टेशिया-प्लवकों का आहार करते हैं और 14 दिवस बाद पहचाने जा सकते हैं।
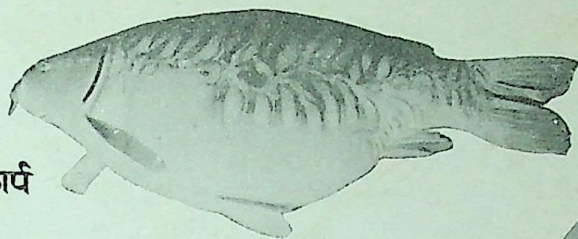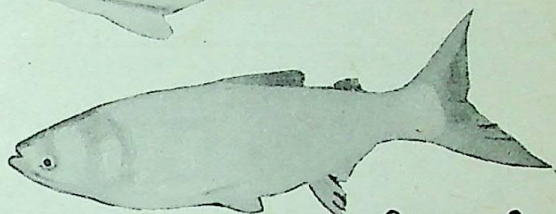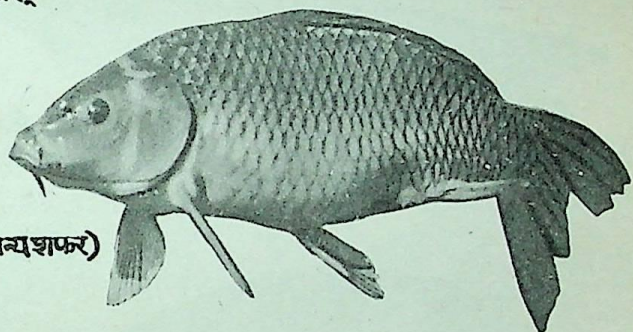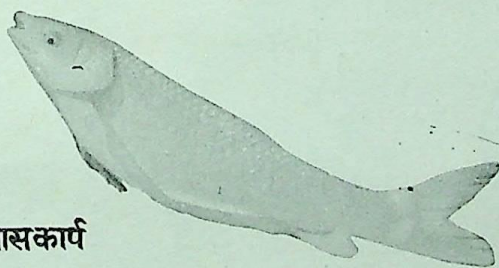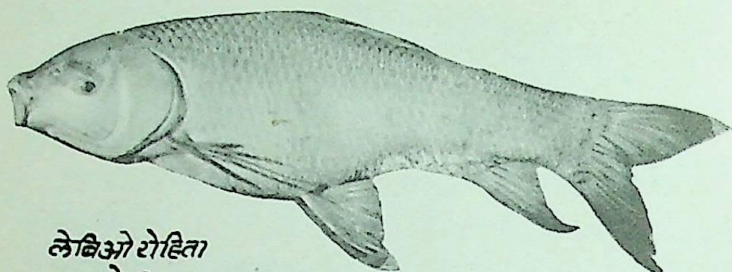
भारत में मत्स्य पालन

लेबिओ रोहिता
(रोहू)
सिर हिनस म्रिगला
(मिरगल)
कतला कतला
(भाखुरू)
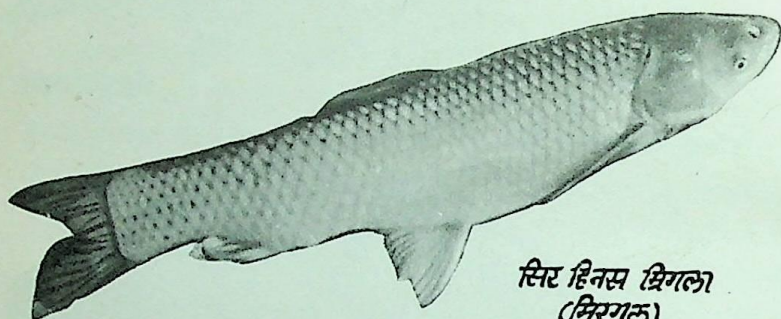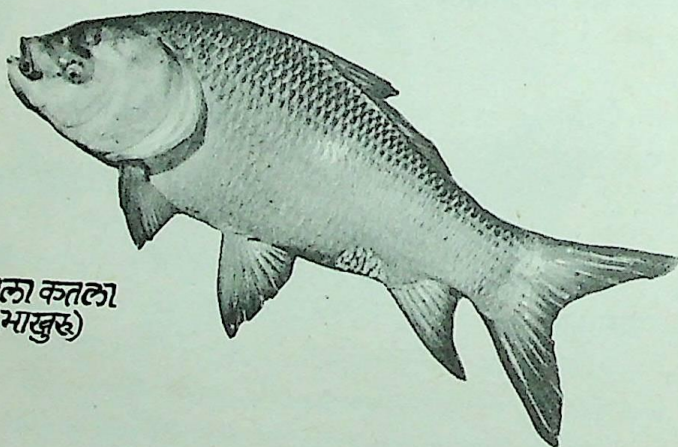
बन्द आधान में आक्सीजन भरते हुए

बन्द आधान में आक्सीजन भरा हुआ प्लास्टिक थैला
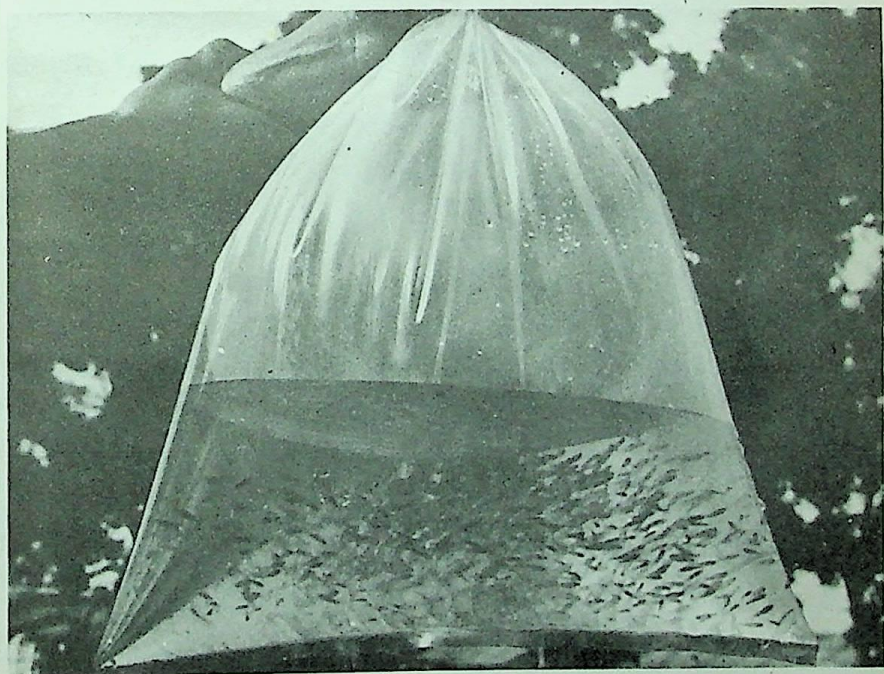
अवस्थापन करने के पिंजरे
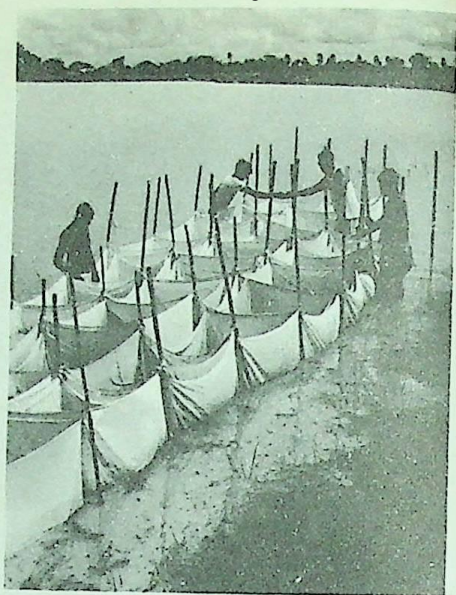
अण्डा-जनन के हापे

कतला प्रौढ़ मछली को प्रजनन हापे में रखते हुए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
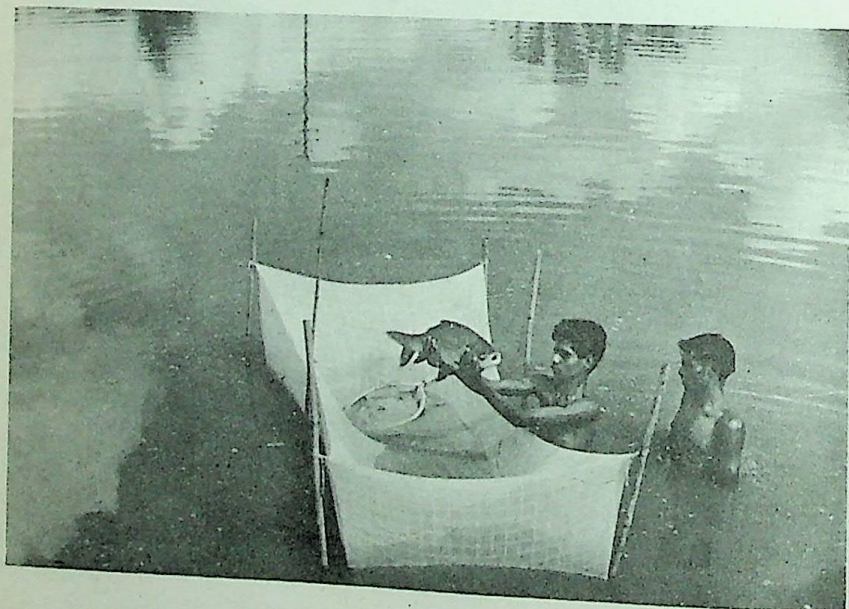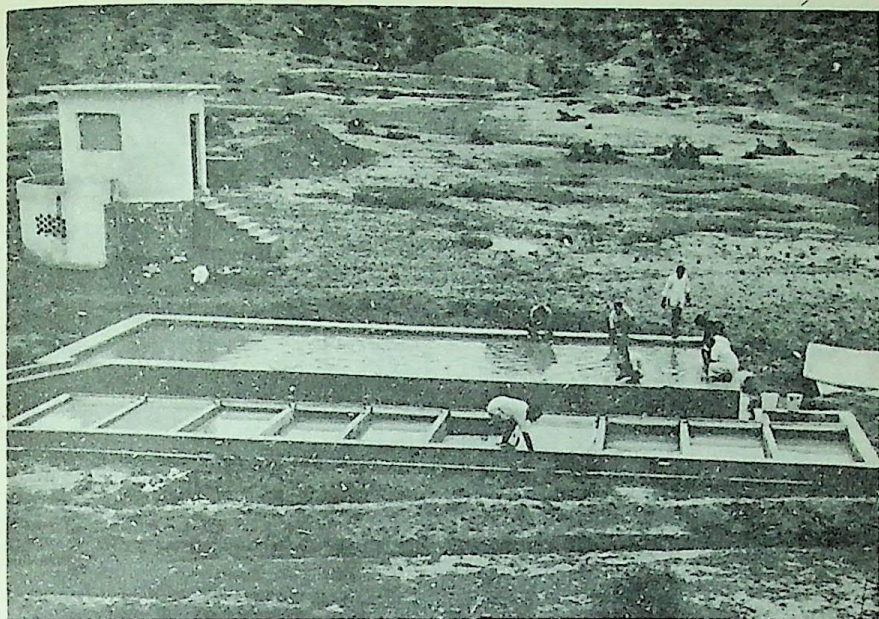
नौगाँव मध्य प्रदेश में निर्मित हेचरी का चित्र

तैयार अभिपोषण तालाब
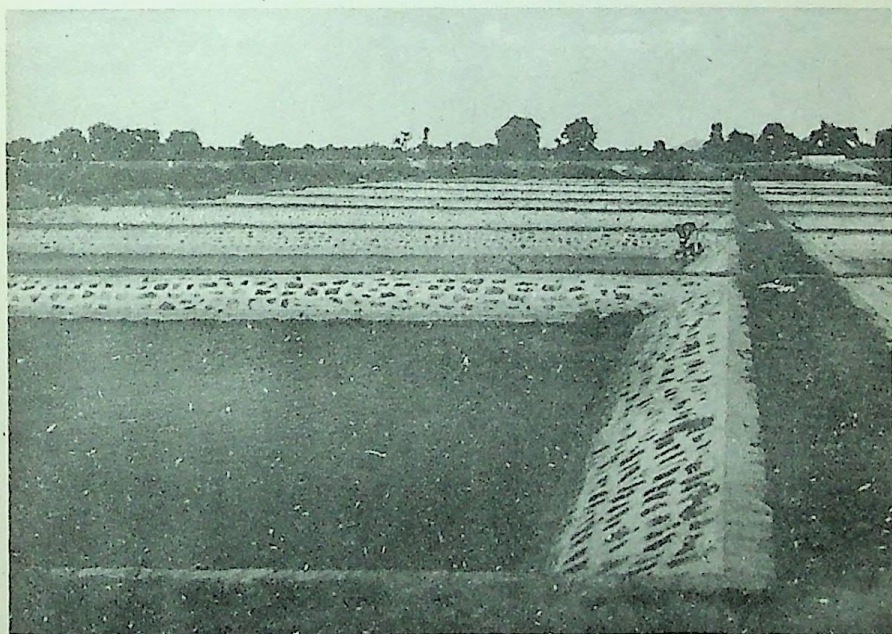
सामान्य शफर के अण्डे

शफर के निषेचित अण्डे
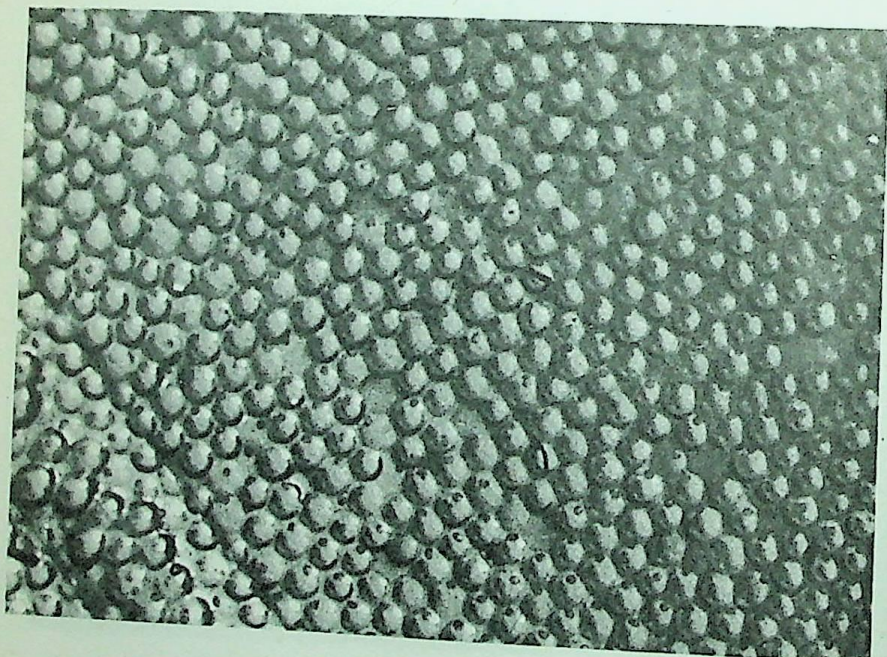
मछली पालन के लिए आदर्श जलाशय

पेड़, ठूंठ आदि युक्त तालाब—जिनमें मछली पालना कठिन होता है
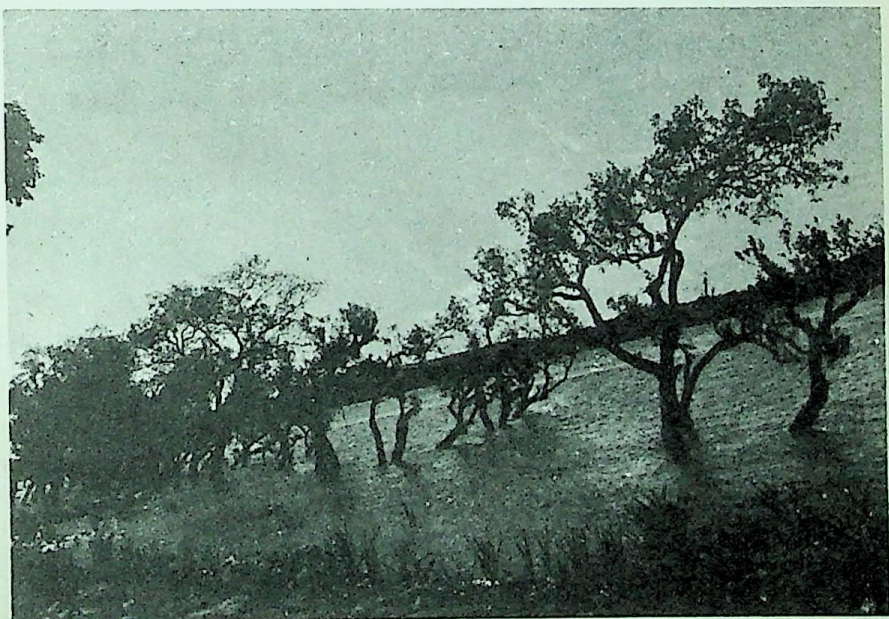
पौष-ग्रन्थि की स्थिति

पौष ग्रन्थि को निकालने की प्रक्रिया

ग्रन्थि निकाली हुई मछलियाँ
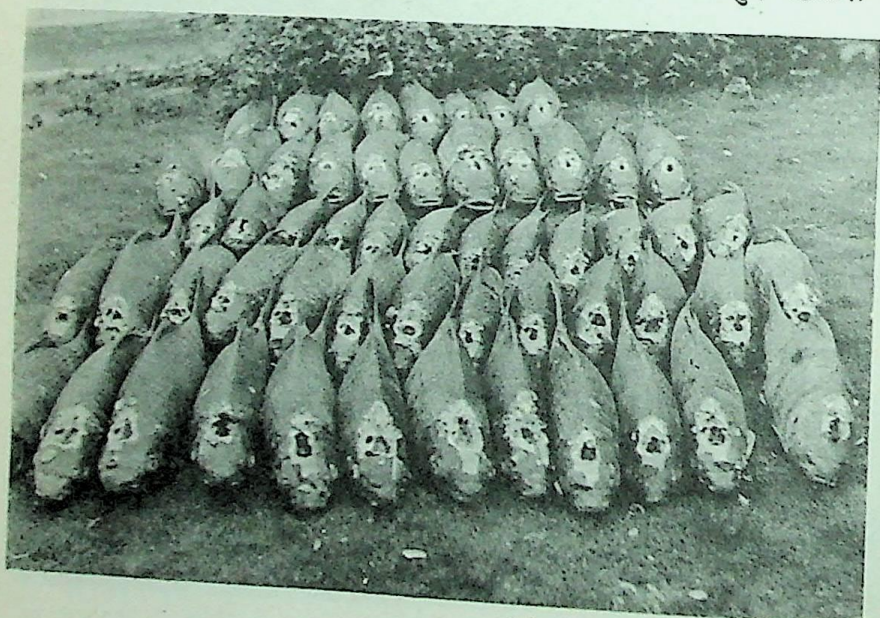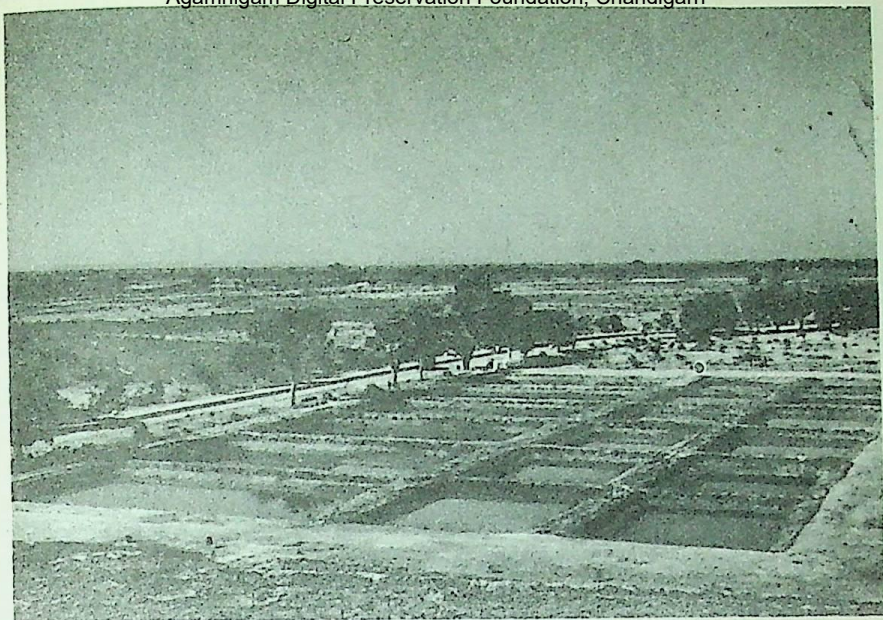
नर्सरी (संवर्धन) तालाब

मौसमी प्रजनन बाँध का माडल
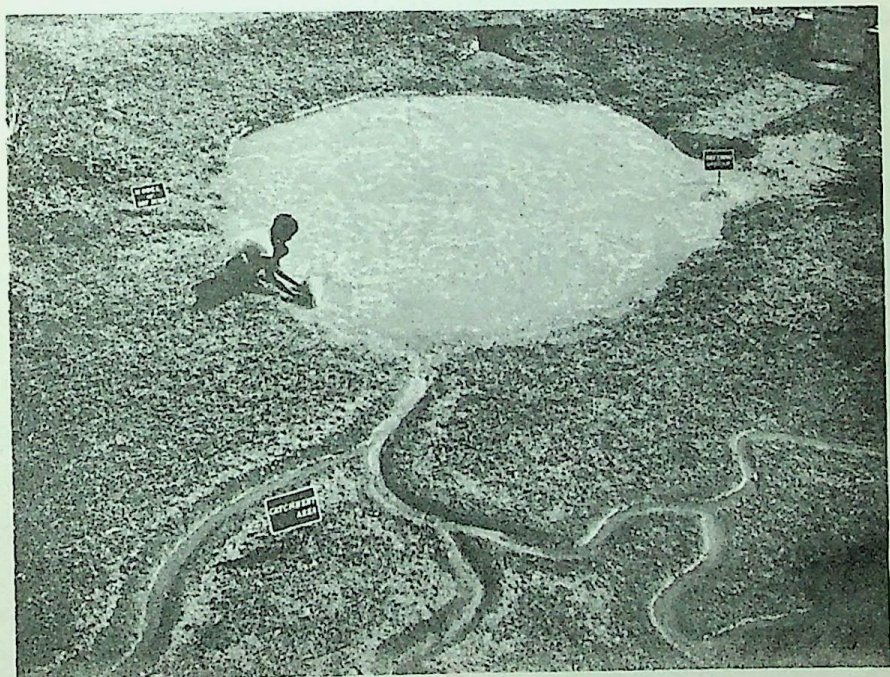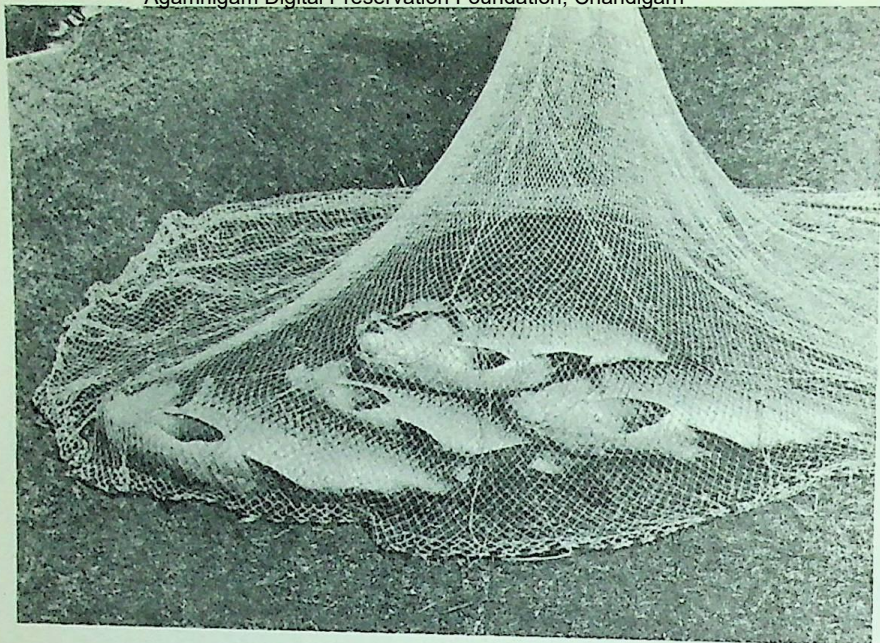
मछली की खेती का उत्पादन

कतला (प्रौढ़) मछली को सुई लगाते हुये
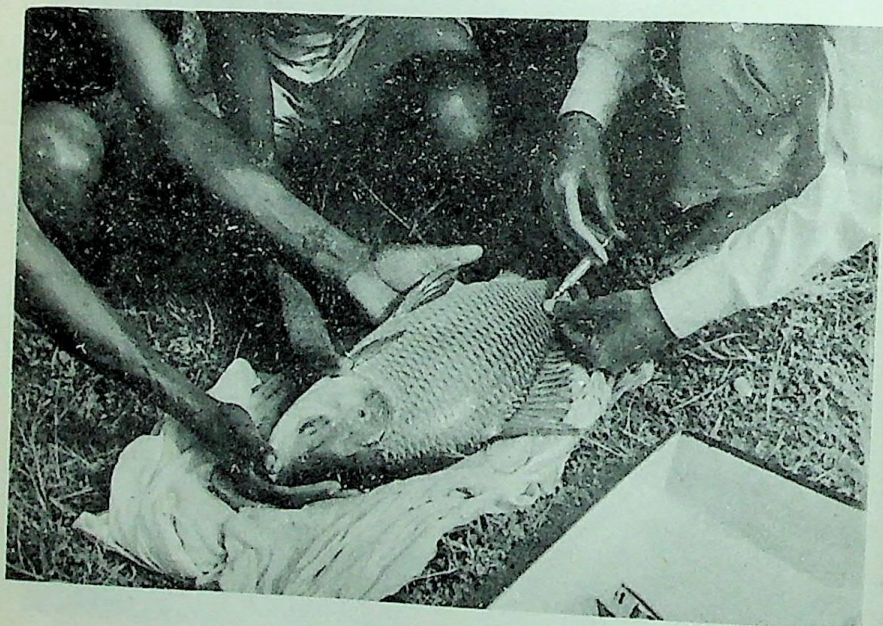
यह अति-सहिष्णु मछली काफी दूरस्थ स्थानों को ले जायी जा सकती है और एक वर्ष के अन्त में 23-30 से० मी० लम्बी तथा 350 ग्राम भार की हो जाती है।

6. **ओस्टियोकाइलस थोमेसी (नगेन्द्रम)**—दक्षिण भारत की कृष्णा, गोदावरी, तुंगभद्रा आदि नदियों में प्राप्त होने वाली यह मछली आन्ध्रप्रदेश में नगेन्द्रम के नाम से जानी जाती है। 60-62 से० मी० तक बढ़ने वाली यह मछली आन्ध्रप्रदेश में संग्रहण के लिए अधिक उपयोग की जाती है।

दीर्घायत शरीर, प्रकूट तुण्ड-जो प्रलाम्बी भी होता है, ऊपर का ओंठ झल्लरीयुक्त, तुण्ड के ऊपर रंध्र, गहरे रंग की धारीयुक्त 11-12 पक्ष-रश्मि वाला पृष्ठपक्ष इसकी पहचान के प्रमुख लक्षण हैं। स्पर्शा नहीं होते हैं। पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति पुच्छ पक्ष की अपेक्षा तुण्ड के निकट होती है। इसकी पार्श्वरेखा में 31 शल्क होते हैं।

इसका आहार मुख्यतः सूत्रवत् आप्यकाएँ तथा डायएटम्स ही है तथा यह नितल और किनारों पर चरती है। इसी कारण इसे प्लवक-भोजी मछलियों में रखा गया है।

यह मछली केवल नदियों में ही अण्डे देती है और जलाशयों में प्रजनन नहीं करती। एक वर्ष की आयु में जब यह 23 से० मी० लम्बी होती है इसे लैंगिक परिपक्वता प्राप्त होती है। इसके शिशु-मीन दिसम्बर मास तक प्राप्त होते रहते हैं।

7. **थिनिक्थिस-संढरखोल (संढरखोल शफर)**—यह मध्यम श्रेणीय शफर, जो लगभग 60 से०मी० तक लम्बी हो जाती है, दक्षिण भारत की गोदवारी, कृष्णा और तुंग-भद्रा इत्यादि नदियों में प्राप्त होती है। आन्ध्रप्रदेश में इसे आकूचम्पा कहते हैं।

तर्कु आकार की इस मछली का मुख अवसानीय तथा सिर बड़ा होता है। छोटे शल्क, पतले ओंठ, चपटा शरीर, स्पर्शा की अनुपस्थिति, वया-पलक (एडीपोज आयलिड) रहित नेत्र तथा 120 शल्क की पार्श्व-रेखा इसको पहचानने के प्रमुख लक्षण हैं। सीमित संख्या-नुपात में ही इसका प्रयोग संग्रहण के लिए किया जाता है।

शिशु और प्रौढ़, दोनों अवस्थाओं में इसका आहार मुख्यतः प्लावी-आप्यकाओं का ही है। इसके साथ भोजन में प्रांगारिक मलवा, रेत-कण और मृदा भी उपागण्य मात्रा में मिलते हैं। सम्भवतः यह मछली तल-स्कम्भ भोजी है जो अपने अवसानीय-मुख-स्थिति के कारण उथले किनारों से भी भोजन प्राप्त कर लेती है।

जलाशयों में प्रजनन न करनेवाली, नदी की यह मछली, संग्रहण के लिए उपयोगी है तथा एक वर्ष की अवस्था में यह 45-60 से० मी० लम्बाई की और 0.9 से 1.4 कि० ग्रा० का भार प्राप्त कर लेती है। एक वर्ष की आयु अथवा 30 से० मी० की लम्बाई पर यह लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है और वर्षाकाल (जून से सितम्बर मास तक) इसका प्रजनन-काल है।

8- **म्यूजिल-सिफेलस (ग्रेमलेट)**——भारत के तटीय जलों में उपलब्ध विभिन्न ग्रेमलेट्स (धूसर मलिना) मछलियों में से यह जाति, सर्वाधिक विस्तार से फैली हुई है।

इसका हरित सा रंग, पृष्ठपक्ष के आधार में विशिष्ट नीला धब्बा, पूँछ के किनारों पर लगातार गहरे रंग के धब्बे, दीर्घायत शरीर, पीठ का हिस्सा क्षैतिज,पेट की ओर सुस्पष्ट मुड़ा हुआ इत्यादि इसकी पहचान के लक्षण हैं। तुण्ड नुकीली, ऊपर से देखने में गोल, पुतली को ढकने वाले श्लेषीय (जिलेटीनस) पलक, दोनों ओठों के मुक्त मांस में दाँत समान झिल्ली तथा प्रथम पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति तुण्ड की नोंक और पुच्छपक्ष के आधार के बीच में होना अन्य प्रमुख लक्षण हैं। पश्च-रेखा स्पष्ट नहीं होती है। इसकी अभिलिखित सर्वाधिक लम्बाई 50 से० मी० है।

यह सामुद्रिक मीन खाड़ी, पश्चजल, नदी-मुख स्थलों पर पहुँच जाती है। इसका जलवायु-अनुकूलन मीठे पानी में सरलता से भलीभाँति किया जा सकता है और यह जलाशयों में संग्रहण के लिए उपयोगी मछली है। यह नदी अथवा जलाशय कहीं भी प्रजनन नहीं करती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शीतकाल में समुद्र में इसका प्रजनन होता है तथा अन्य जातियों के शिशुओं के साथ इस जाति की भी क्षुद्रमीन बहुधा अलवण जलयुक्त उपहृद (लेगून्स) और उपनदिकाओं (क्रीक्स) में प्राप्त होते हैं। प्राप्त होने का समय स्थान-स्थान पर अलग होता है। किन्हीं स्थानों में प्रचुरता से प्राप्त हो जाती है, अन्य में उपलब्ध नहीं होती। भारत में शिशु-मीन को एकत्र करने का समय दिसम्बर से मार्च तक है।

इसके शिशुओं का मुख्य आहार पादप और प्राणि-मन्द-प्लवक हैं, जिनमें यह डायएटम्स तथा पररोही साइनेनोफाइसी को पसन्द करते हैं। प्रौढ़ मीन आप्यकाओं के व्यपधृष्ट और अन्य मलवे को आहार बनाते हैं। जलाशयों में पाले जाने पर यह प्रचुर मात्रा में सड़े-गले पादपों को खाती है।

यह मीन द्रुतरोही है और प्रथमवर्ष के अन्त में अलवण जलों में 33 से० मी० तक, शुद्ध जल में 14 मास में 30 से० मी० तक बढ़ जाती है। धूसर-मलिना का जलवायु - अनुकूलन शिशुओं का संग्रहण आदि तमिलनाडु में प्रतिवर्ष होता है और इसको शुद्ध-जल में संचित किया जाता है। मद्रास के किले की खाई में तीन से छ: पौण्ड तक की मछली पकड़ी गयी है।

9. **म्यूजिल-पारसिया (धूसर मलिना)**——सीमित सम्पीडित दीर्घायत शरीर, दबी हुई तुण्ड, पृष्ठपक्ष पुच्छपक्ष के आधार के निकट अथवा तुण्ड और पुच्छपक्ष के बीचों बीच, पार्श्वरेखा 28-30 शल्कयुक्त, पीठ पर हरित सा रंग, पेट का रंग स्ववपीतारक्त (क्रीम); बहुधा दोनों ओर 3 से 6 तक अन्वायाम गहरे रंग की रेखाएँ इसको पहचानने के प्रमुख लक्षण हैं। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 40 से० मी० अभिलिखित है।

यह समुद्री-मीन सागर-संगम जलों में होकर बहुधा नदी, मीठे पानी की झीलों तथा दलदलों में पहुँच जाती है। यह मीठे जलाशयों और अलवण (ब्रेकिश) जलों में भी पाली जा सकती है। इसका प्रजनन जलाशयों में नहीं होता है, अनुमान है कि यह समुद्र में बच्चे देती है। शिशु मीन अक्टूबर से अप्रैल तक समुद्रतटीय जलों में पाये जाते हैं। एकत्रित किये हुए शिशुमीनों का उपयोग, जलवायुनुकूल के उपरान्त, जलक्षेत्र संचय के लिए किया जाता है। अलवण जलक्षेत्रों में ज्वारभाटे के कारण स्वतः ही शिशुमीन एकत्रित हो जाते हैं और स्वतः संचय हो जाता है।

सागर-संगम जलों में तल पर प्राप्त होने वाले प्राणी और पादप-मन्द-प्लवक शिशु-मीन का आहार है। प्रौढ़ मछली नितल भोजी है और नितल जीवी आप्यका, अन्वीक्ष्य प्राणी, व्यपधृत (डेट्रीटस) और सड़े हुए वनस्पति का आहार करते हैं। यह अलवणिक जल में एक वर्ष के उपरान्त 15-19 से० मी० तक लम्बी हो जाती है परन्तु मीठे पानी में इसकी वृद्धि कम होती है। बहुधा यह अन्य मछलियों के साथ ही पाली जाती है।

(आ) शाक-भक्षी (वेजीटेबिल फीडर या हर्बीवोरस)

1. **चोनोस चोनोस (चेनोस या पोमीन)**——समुद्रतटीय क्षेत्रों में, सागर-संगम स्थलों, और पश्च-जलों (बेक वाटर्स) में बहुधा प्राप्त यह समुद्री मछली लगभग 122 से० मी० तक बढ़ती है; तट के निकट की उपनदियों में से इनके शिशु पर्याप्त संख्या में एकत्र किये जाते हैं तथा मीठे पानी के जलाशयों में सञ्चित किये जाते हैं।

सीमित सम्पीडित दीर्घायत शरीर, अवसानीय मुख, छोटे शल्क, पार्श्वरेखा 75-80 शल्क युक्त, अंस और पृष्ठपक्षों के ऊपर और नीचे कक्षस्थ (एक्जीलरी शल्क), शरीर का रंग रजत-हरित पीठ पर तथा पेट पर सफेद; पृष्ठपक्ष के बीच में और पश्च-पक्ष के किनारे रंगीन होना, इसकी पहचान के लिए प्रमुख लक्षण है।

सागर-संगम जल में पायी जाने वाली यह मीन, मीठे जल और अलवणीय जलों में संचय के लिए उपयोगी है। इसका प्रजनन समुद्र में तट के पास ही होता है और इसके अण्डे तल प्लावी और 12 मि० मी० व्यास के होते हैं और 24 घण्टे में शिशु निकल आता है। 12 से 15 मि० मि० लम्बाई के शिशु किनारों पर प्रचुर संख्या में मिलते हैं परन्तु स्थान के साथ ही प्राप्ति का समय मार्च और अगस्त के बीच होता है। आंगुलिक अवस्था में प्रचुर संख्या में दक्षिण-भारत के सागरतटीय-स्थानों में प्राप्त होते हैं परन्तु प्रौढ़ मीन तट के निकट बहुत कम ही मिलती है। 13 से 15 मी० मि० लम्बी पारदर्शी इल्लियों को खारे पानी से मीठे पानी में सीधे ही डालकर संवहन किया जाता है। छोटी आंगुलिक अवस्था की अपेक्षा यह अधिक सहिष्णु होती है।

मीठे जल में यह प्रधानतः प्लवक भोजी ही रहती है, साथ ही यह शाक और पररोही

जीव भी खाती है। समुद्र औरस मुद्रसंगमीय स्थलों में शिशु-मीन मुख्यतः डिस्टोमी, मिक्जोफाइसी और क्लोरोफाइसी का आहार करते हैं और प्रौढ़ डायएटम्स कोपीपोड्स, घोंघा, मछली के अण्डे आदि खाते हैं। अलवणिक जलाशयों में शिशुमीन प्रधानतः उर्वरक तड़ागों की नितल मृदा ही खाते हैं जिसे 'लेब-लेब' (फिलीपाइन) और 'टाइआर' (इण्डोनेशिया) भी कहते हैं। 450 ग्राम से अधिक भार की मछली को यदि पसन्द का भोजन नहीं मिलता तो अनुपात से यह सूत्रवत् आप्यका और बड़े पौधे खाती है।

चोनोस खारे पानी (समुद्रीजल) और अलवणिक (ब्रेकिश) जलों की अपेक्षा मीठे पानी में अधिक बढ़ती है। भारत में इसकी लम्बाई एक वर्ष के अन्त में, मीठे पानी में 62 से० मी० अलवणिक जल में 48 से० मी० और खारे पानी में 38 से० मी० हो जाती है। शीघ्र वृद्धि, अहिंसक स्वभाव और अच्छे मांस के कारण यह प्रचुरता से पाली जाती है। एक वर्ष के अन्त में मछलियों की सामान्य लम्बाई 40 से० मी० तथा सामान्य भार 450 ग्राम हो जाता है।

2. **तिलापिया मोसाम्बिका**—संपीडित, दीर्घयित, गोल तुण्ड, न्युब्ज सिर, पृष्ठपक्ष सिर के बराबर अथवा अधिक लम्बा, दो अपूर्ण पार्श्वरेखाएँ प्रथम रेखा 18-21 तथा दूसरी रेखा 10-15 शल्कयुक्त, शरीर का रंग जलाशय के अनुसार अवपीत हरा (ओलाइव ग्रीन) अथवा भूरा अथवा काला, पृष्ठपक्ष तथा पुच्छपक्ष का किनारा पीला होना पहचान के लक्षण हैं। सर्वाधिक लम्बाई 40 से० मी० होती है।

यह सागर-संगमीय स्थानों में पायी जाती है तथा जलाशयों, तालाबों, चावल के खेतों आदि में संवर्धन के योग्य है। इसका प्रजनन हर प्रकार के जलाशयों और हर स्थिति में हो जाता है। लगभग छः मास की अवस्था और 8 से० मी० की लम्बाई पर लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है। वर्ष भर यह हर दो मास की अवधि के उपरान्त प्रसव करती रहती है। नर नितल में 35 से० मी० व्यास और 6 से० मी० गहराई का गड्ढा खोद देता है और मादा 75-250 अण्डे देती है, जो तुरन्त मुँह में रख लेती है। निषेचन मादा के मुँह में ही होता है। शिशुमीन 3 से 5 दिन बाद निकल आते हैं। अण्डों का व्यास 0.7 मि० मी० होता है।

यह शिशु केवल डायएटम्स, एक कोषा और प्लावी आप्यकाओं को ही खाती है। प्रौढ़ मछली वनस्पति-भोजी होती है। वनस्पति भोजन की अधिकता होने पर तिलापिया प्राणि-भोजन की चिन्ता नहीं करती है। वैसे यह सर्वभक्षी है और किसी भी अवस्था में रह सकती है।

अनुकूलतम जलवायु की स्थिति में इसकी वृद्धि शीघ्र होती है और एक मछली 850 ग्रा० तक भार की हो जाती है। परन्तु इसका सामान्य भार 85-140 ग्रा० हो जाता है। भारत में इसको केवल दक्षिण-भारत में ही पाली जाने की अनुमति मिली है।

3. **लेबिओ-रोहिता (रोहू)**––समस्त भारत में रोहू के नाम से विख्यात यह शफर-मीन किसी भी अन्य मछली से अधिक स्वादिष्ट मानी गयी है और इसका प्राकृतिक वितरण भी कतला की भाँति ही सारे भारत में हो गया है। यह गोदावरी में न्यूनमात्रा में उपलब्ध है तथा दक्षिण भारत की नदियों में भी संवर्धन के लिए ले जायी गयी है।

यह शफर अपने छोटे नुकीले सिर, लगभग अवसानीय मुख, नीचे का झल्लरीदार ओंठ, मन्द रक्ताभ शल्क और पाटित पक्ष, अधिकोण तुण्ड, सामान्यत: छोटे दो स्पर्शा, तुण्ड और पुच्छपक्ष के आधार के बीचो-बीच पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति आदि लक्षणों से पहचानी जाती है।

नदी की यह मछली थोड़े अलवणिक जल में भी रह सकती है तथा स्थिर-जल इसके प्रजनन के लिए अनुपयुक्त होता है। यह जलाशयों में संवर्धन के योग्य है। इसके अण्डे लालिमा लिए हुए पारदर्शी होते हैं। यह उथले किनारे वाले स्थलों में अण्डे देती है जिनसे 16-20 घण्टे में शिशु उत्पन्न हो जाते हैं। इसके प्रजनन का समय उत्तरभारत में जून से सितम्बर तक रहता है। कहीं-कहीं नियन्त्रित परिस्थितियों में यह बाँधों में भी प्रसव कर देती है। शिशु पुच्छप्रदेश में तीन काले चिह्न जो बाद में मिलकर एक हो जाता है तथा झल्लरीयुक्त नीचे के ओंठ के कारण पहचाने जाते हैं। इसके पक्ष हिंगल-रक्त रंग के होते हैं।

शिशुमीन एककोषीय आप्यका-भोजी होते है। अँगुलिक अवस्था में रोहू शिशु रोटीफर्स, क्रस्टेशिया आदि प्राणि प्लवकों को खाते हैं परन्तु प्रौढ़, नितल की मृदा, रेत आदि, सड़े हुए पादप, प्लवक, आप्यका आदि का आहार करती है। रोहू स्तम्भ-नितल (कॉलम बॉटम) भोजी है। विशेष मुखाकृति के कारण यह उथले तलों में चरती रहती है। कतला की अपेक्षा कम परन्तु अधिक द्रुतरोही (फास्ट ग्रोइंग) रोहू की एक वर्ष में सामान्यत: 35 से 45 से० मी० की लम्बाई और वजन 675 ग्राम हो जाता है। द्वितीय वर्ष के अन्त तक यह लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। तीन वर्ष में इसकी सर्वाधिक लम्बाई लगभग 100 से० मी० तक हो जाती है।

4. **ओस्फोनीमस गौरामी (गौरामी-ब्राह्मण मीन)**––मलय, स्याम आदि देशों की यह मछली भारत के लिए अभ्यागत है। यहाँ यह जावा और मॉरीशस से लायी गयी थी। तमिलनाडु और गोदावरी-नदी की शाखाओं आदि में यह भलीभाँति स्थापित हो चुकी है। यह विश्व की सर्वश्रेष्ठ भोज्य-मीन समझी जाती है तथा विभिन्न प्रकार के जल में रह सकती है, सहिष्णु भी है। तमिलनाडु से इसे भारत के अन्य भागों में ले जाया गया है, जहाँ पर इसका सफलतापूर्वक प्रजनन हो चुका है।

इसका शरीर सम्पीडित, दीर्घायित और उठा हुआ, मुँह छोटा, तिरछा तथा पृष्ठपक्ष

की उत्पत्ति अंसपक्ष से बहुत पीछे होना इसकी पहचान के चिह्न हैं। इसके शल्क बड़े और पार्श्वरेखा में 30-33 होते हैं। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 65 से० मी० होती है।

यह मीठे पानी की मछली नदी, दलदल, झील आदि में रहती है और जलाशयों में संवर्धन के योग्य है। यह किसी भी जलाशय में जिसमें, नीड़ बनाने हेतु पर्याप्त सामग्री होती है, प्रजनन कर सकती है। यह 75%तक लवणता वाले जल में भी रहने की क्षमता रखती है। नदियों में यह ग्रीष्म ऋतु में तथा जलाशयों में यह वर्ष भर अण्डे देती है। जलवायु पर आधारित रहने के कारण यह द्वितीय या तृतीय वर्ष में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। यह उथले स्थानों में जहाँ 30 से० मी० से अधिक गहराई नहीं होती, जल-पादपों की सहायता से नीड़ तैयार करती है। जल-पादपों रहित जलाशयों में इसके प्रजनन हेतु ताड़ आदि वृक्षों की पत्तियाँ डाल कर कृत्रिम साधन उपलब्ध कराये जाते हैं। नीड़ छिपे हुए स्थान में 10 से० मी० व्यास के और 30 से 38 से० मी० गहरे बनाये जाते हैं। इन नीड़ों में मादा द्वारा लगभग 3000 अण्डे दिये जाते हैं। जहाँ निषेचन होता है तथा नर और मादा दोनों नीड़ की रक्षा करते रहते हैं। इसके गोल अण्डों का व्यास 2.2 से 2.4 मि० मी० होता है। अण्डे उत्प्लावी और तैलगोलिकायुक्त होते हैं। शिशु उल्टे तैरते हुए श्लेषद् ग्रंथि की सहायता से जल-पादपों से चिपक जाते हैं और ये शिशु पाँच दिन की अवस्था से भोजन प्रारम्भ करते हैं।

प्राकृतिक रूप से शाकाहारी मछली होने के कारण यह कमल आदि जल-पादपों निमग्न-पादपों, सीमान्तक घासों तथा आप्यकाओं पर आहार के लिए निर्भर रहती है। अति न्यूनमात्रा में कीट, कीड़ें, प्राणि-मन्द-प्लवक आदि भी वनस्पति के साथ खा जाती है। परन्तु बन्दितावस्था (केप्टिविटी) में यह अण्डे, माँस आदि कुछ भी खा लेती है। शिशु प्राणि-मन्द-प्लवकों को खाती है परन्तु कुछ बड़ी होने पर यह वनस्पति के साथ-साथ प्राणि-प्लवकों को भी खाती है।

जलवायु के अनुरूप इसकी वृद्धि भी हर जलाशय में अलग-अलग होती है। साधारणतः जलाशय में यह प्रथम वर्ष के अन्त में 15 से० मी०, द्वितीय वर्ष के अन्त में 25 से० मी०, तथा तृतीय वर्ष के अन्त में 30 से० मी० हो जाती है। बहुधा गौरामी अन्य मछलियों के साथ पालने पर सन्तोषप्रद उत्पादन देती है।

5. ईट्रोप्लस सूराटेन्सिस (कारीमीन)——भारतवर्ष की यह पृश्नि-मीन भारत के ट्रावनकोर कोचीन, मलाबार तथा कनारा तक पश्चिमी-घाट पर और चिलका झील तक पूर्वीघाट पर, अलवणिक जलों में प्राप्त होती है। यह सागर-संगमीय स्थलों, उप-नदिकाओं तथा पश्च-जलों में रहती है।

पार्श्वीय सम्पीडित, दीर्घायत शरीर,गहरे हरे रंग की शल्क तथा कहीं-कहीं सफेद मोती

जैसे धब्बे तथा दोनों ओर आठ खड़ी धारियाँ इसकी पहचान के चिह्न है। यह अलवणिक जलों की मछली मीठे पानी में संवर्धन के योग्य है तथा जलाशयों में बिना किसी विशेष उपाय के पाली जा सकती है। साधारणतः अलवणिक जलों में यह हर मौसम में प्रजनन करती है परन्तु जलाशयों में यह सूखे मौसम में ही प्रजनन करती है। इस मछली को लैंगिक परिपक्वता दो वर्ष की आयु और 15-18 से० मी० की लम्बाई में प्राप्त हो जाती है। इसके अण्डे चूँकि नितल में उपलब्ध किसी भी आधार से संलग्न हो जाते हैं, नर और मादा इन स्थानों को साफ कर लेती हैं। अण्डे दीर्घायित, 1-2 मि० मी० व्यास के और भूरे रंग के होते हैं। अण्डों से शिशु 3 से 5 दिन के बाद निकलते हैं। प्रौढ़ मातापिता इन शिशुओं की रक्षा एक मास तक करते रहते हैं। यह 3 पौण्ड का भार और 30 से०मी० की लम्बाई तक पहुँच जाती है।

सम्प्रति इसकी शिशु और क्षुद्र-मीन अवस्थाओं के भोजन-स्वभाव के बारे में सीमित ज्ञान है और अलग-अलग मत प्राप्त होते हैं। प्रारम्भिक अवस्थाओं में इसके प्राणि-मन्द-प्लवक तथा बाद में वनस्पति-भोजन ग्रहण करने का अभिलेख है। एक अन्य मत से क्षुद्रमीन केवल वनस्पति-भोजी ही होती है तथा शिशु-मछलियों जलकीटों आदि पर अवलम्बित रहती है। प्रौढ़-मछलियाँ मुख्यतः वनस्पति-भोजी होकर नील-हरित और हरित-आप्यकाएँ तथा नष्ट प्राय सड़ते हुए पौधों का भोजन करती हैं। यह प्राणि-मन्द-प्लवक भी खाती है। स्वभाव से यह अहिंसक है। विभिन्न प्रकार के जलों में यह शीघ्र ही रहने की आदत डाल सकती है। बम्बई, बंगाल, हैदराबाद, कर्नाटक तथा कुर्ग इत्यादि प्रदेशों में यह सफलतापूर्वक स्थापित हो चुकी है।

6. **लींज़ा-कोर्सुला (मीठे-जल की धूसर मलिना)**—मध्यम लम्बाई की यह मछली जो 45 से० मी० तक बढ़ती है, सागर-संगमीय और अलवणीय जलों में प्राप्त होती है। यह नदियों में भी प्राप्त होती है और मीठे जल की मछली समझी जाती है। प्रमुख रूप से तल पर रहने के कारण, इसने वायव्यदृष्टि (एरियल विजन) प्राप्त कर ली है। यह अपनी बड़ी आँखों और उसके पास के स्थानों को पानी से ऊपर निकाल कर तैरती है।

सीमित सम्पीडित, दीर्घायत दबा हुआ शरीर, बड़ी और उठी हुई श्लेष्मीय पलक रहित आँखें, ऊपर का मोटा ओंठ, पार्श्व रेखा 48-52 शल्कयुक्त आदि इसकी पहचान के लक्षण हैं। यह स्थिर जल में संवर्धन के योग्य मछली है परन्तु इसके संवर्धन का प्रचार कम है। इसकी वृद्धि के सम्बन्ध में विश्वसनीय लेख प्राप्त नहीं है। लगभग 22 से० मी० लम्बी मछली लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है।

इसका प्रजनन, मीठे और अलवणिक, दोनों प्रकार के जल में होता है। अन्य मकिना मछलियों के स्वभाव के विपरीत मई से सितम्बर तक इसका अण्डौघजनन समय है जिसमें

जून-जुलाई मुख्य माह है। अण्डे तलप्लावी 0·90 से 1·035 मि० मी० व्यास वाले और तैल गोलिका- युक्त होते हैं तथा निषेचन के 16 से 18 घण्टे बाद ही शिशु उत्पन्न होता है। शिशु मीन जलाशयों में कोपीपोड्स और कीटों का आहार करते हैं और प्रौढ़ मछली प्राणी और पादप जीवों से युक्त सूत्रवत् आप्यकाओं का आहार करती है। बहुधा यह तालाबों और चावल के खेतों में स्वतः ही आ जाती है। यह तीन वर्ष में 35-45 से० मी० तक लम्बी हो जाती है।

(इ) सर्व-भक्षी (ओम्नीवोरस)

1. **सिप्रीनस-कार्पिओ (सामान्य-शफर)**—यह एक अभ्यागत मत्स्य है, जो श्रीलंका से सन् 1939 में भारत लायी गयी थी। यह मुख्यतः शीतल-जल की मछली है परन्तु अति सहिष्णु होने के कारण यह उष्ण प्रदेशों के गर्म जल में भी रह सकती है। पहले यह नीलगिरि की पहाड़ियों पर लायी गयी, जहाँ से अब यह अन्य प्रान्तों को भी बाँटी गयी है। यह लगभग 91 से० मी० तक लम्बी हो जाती है और तमिलनाडु के किले की खाई में यह 32 पौण्ड तक की पायी गयी है। भारतवर्ष में इसके केवल तीन प्रभेद ही प्राप्त होते हैं—दर्पण शफर (मिरर कार्प) के शरीर पर बड़े, चमकीले पीले शल्क होते हैं; शल्क शफर (स्केल कार्प) के शरीर पर छोटे शल्क होते हैं जिससे सारा शरीर ढका रहता है; चर्म-शफर (लेदर कार्प) का शरीर लगभग शल्क रहित होता है, जिस कारण चमड़े जैसी आकृति हो जाती है।

इसका शरीर सीमित सम्पीडित, दीर्घायित होता है और इसका मुँह साधारण, पतले ओंठों युक्त होता है। स्पर्शा चार होते हैं। पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति लगभग अधर-पक्ष जैसी होती है। इसके शरीर की ऊँचाई शल्क और पक्षों की उत्पत्ति, शरीर का रंग और आकार में प्रभेद के अनुसार विभिन्नता रहती है।

यह नदी की मछली है। यह शताब्दियों से पाली जाती है और यह संवर्धन के योग्य पायी गयी है। यह सहिष्णु मछली है तथा सीमित स्थान और ओषजन वायु की कमी वाले जलाशयों में भी रह सकती है। पहाड़ी स्थानों में यह एक वर्ष की आयु में, जब यह 38 से 45 से० मी० लम्बी और लगभग 3 पौण्ड भार युक्त होती है इसे लैंगिक परि-पक्वता प्राप्त हो जाती है। उष्ण जल में भी इसकी वृद्धि साधारणतः द्रुत होती है। इसका प्रजनन-काल नदियों में वसन्त ऋतु और उष्ण प्रदेशों में वर्षाकाल का प्रारम्भ है। जलाशयों में सामान्य-शफर लगभग वर्ष भर प्रजनन करती रहती है परन्तु इसका मुख्य समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है। मैदानों में इसकी वृद्धि शीघ्र होती है और लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है। मैदानों में गत वर्षों में मध्यप्रदेश में ही प्रजनन हुआ है। प्रजनन सफलतापूर्वक अन्वेषणशाला की सीमित परिस्थितियों में भी किया जा चुका है।

इसके अण्डे अभिलारी, स्ववपीतारक्त अथवा पीत रंग के तथा 1·5-2·0 मि० मी० व्यास के होते हैं। 1,00,000 प्रति मादा मछली के हिसाब से यह अण्डे प्लावी निमग्न पादपों अथवा अन्य निमग्न वस्तुओं पर चिपक जाते हैं। 18° सेटीग्रेड के तापमान पर छः दिन के अन्दर ही शिशु शफर निकल आता है। तापमान की वृद्धि से इस समय में कमी हो जाती है और 25° सेंटीग्रेड तापमान पर 3 दिन में तथा 30° सेंटीग्रेड पर दो दिन में ही शिशु निकल आते हैं।

क्षुद्रमीन का आहार प्रोटोजोआ और छोटा क्रस्टेशिया ही होता है। 10 से० मी० लम्वे शिशु नितल जीवी प्राणि-समूह का आहार करता है। जिसमें किरोनिमीडी, एफी-मरीडी, ट्रइकोपृरीडी, ट्यूवीफिएडी आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही सड़ी हुई पादप-जातियाँ और पर-रोही प्लावकों का आहार भी होता है। यह मुँह में नितल की मिट्टी भर लेती है और पाचन योग्य सामग्री को लेकर अवाञ्छनीय सामग्री निकाल देती है इस तरह यह नितल-वासी पादप समूह को नष्ट करती और पानी को गंदला करती है। कीटों की तलाश में यह वाँधों में छिद्र करती है।

2. **सिरहिना म्रिगला (मिरगल)**—संवर्धन की उपयोगिता की दृष्टि से भारत में यह रोहू और कतला के वाद ही आती है। समस्त उत्तर-भारत में पायी जाने वाली यह मछली दक्षिण में गोदावरी नदी में भी प्राप्त होती है। अन्य शफरों की भाँति यह भी नदी की मछली है। यह मछली सीमित सम्पीडित, सापेक्षतः अधिक लम्वी, दीर्घायित शरीर, कुण्ठित तुण्डयुक्त छोटा सिर, अवसानीय मुख, पतले-झालररहित ओंठ, चमकीला रजत रंग, दो स्पर्शा जो छोटे होते हैं, पार्श्वरेखा 40 शल्क युक्त तथा 12-13 पक्षरश्मि युक्त आदि लक्षणों से पहचानी जाती है।

साधारणतः यह शफर जलाशयों के स्थिर जल में प्रजनन नहीं करती है परन्तु विशेष परिस्थितियों में यह छोटे बाँधों में प्रजनन कर सकती है। दो वर्ष की आयु में इसे लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है। क्षुद्रमीन और इल्ली अवस्था में शिशुओं का दूरस्थ स्थानों तक संवहन किया जा सकता है। इसका प्रजनन काल वर्षारम्भ में जून से सितम्वर मास तक रहता है।

अण्डे 1·5 से 40 मि० मी० व्यास के तथा सामि-उत्प्लावी होते हैं। निषेचन के 16-19 घण्टे उपरान्त ही शिशु निकल आता है। 1·5 से 2 से० मी० लम्बाई वाले छोटे शिशुओं को कुण्ठित तुण्ड, पतले ओंठ और पुच्छप्रदेश में हीरा जैसे आकार के एक काले चिह्न से पहचाना जा सकता है। अवस्था की वृद्धि से पक्ष रक्ताभ हो जाते हैं। एक मास बाद ही प्रौढ़ चरित्र उत्पन्न हो जाते हैं।

यद्यपि नैंन नितल भोजी होती है तथापि आहार प्रारम्भ करते ही शिशु रोहू और

भांखुर जैसे प्लवक-भोजी होते हैं। 25 मि० मी० तक के आकार का क्षुद्र-मीन प्राणि-मन्द-प्लवक भोजी होते हैं और क्रस्टेशिया और रोटीफर्स विशेष रूप से पसन्द करते हैं। प्लावी आप्यकाएँ केवल आपत्ति-कालीन भोजन के रूप में ही उपयोग की जाती हैं। प्रौढ़-मीन हरित-नील सूत्रवत आप्यकाओं, डायएटम्स और महापादपों के मुलायम हिस्सों को खाते हैं जो लगभग समस्त आहार का 50 प्रतिशत होता है। आँगुलिक और प्रौढ़ावस्था में यह सड़ते हुए प्रांगारिक और पादप-तत्त्वों, पादप-प्लवकों तथा रेत का रोहू की अपेक्षा अधिक उपयोग करते है। आहार में प्राणि-तत्त्वों की अपेक्षाकृत कमी रहती है। यह नितल-भोजी होने के कारण, तल और स्कम्भ-भोजी मछलियों के साथ पाली जाती है।

यह रोहू और भाखुर की अपेक्षा धीरे बढ़ती है तथा छः मास की अवस्था में 340 ग्रा० भार और 24 से० मी० लम्बाई प्राप्त कर लेती है। यह मछली एक वर्ष की आयु में 1.1-1.8 कि० ग्रा० भार और 45-61 से० मी० की लम्बाई प्राप्त कर लेती है परन्तु जलाशय में मछलियों की संख्या कम होने पर अधिक वृद्धि भी प्राप्त हो सकती है। अत्यधिक अनुकूल परिस्थितियों में यह एक वर्ष में 66 से० मी० की लम्बाई और 2.3 कि० ग्रा० का भार ग्रहण कर लेती है।

3. लेबिओ कालबासू (कालबासू)—यह मलाबार क्षेत्र को छोड़ कर लगभग समस्त भारत की नदियों में मिलती है। यह साधारणतः अधिक संख्या में प्राप्त नहीं होती है परन्तु जहाँ कहीं भी प्राप्य है, संवर्धन के लिए उपयोग की जाती है। यह 76 से० मी० तक की लम्बाई प्राप्त कर लेती है, फिर भी अपेक्षाकृत कम बढ़ती है। गहरा काला रंग, छोटा नुकीला सिर, अधोवसानिक झल्लरीयुक्त ओंठ सहित मुँह, 2 काले स्पर्शा, सीमित संपीडित दीर्घायत शरीर, पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति पुच्छपक्ष के आधार की अपेक्षा तुण्ड के निकट तथा अंस आधार और पश्चपक्ष का काला रंग कालबासू को पहचानने के प्रमुख लक्षण हैं।

नदी की यह शफर, स्थिर-जलों में भी संवर्धन के लिए उपयोगी है। यह स्थिर जलो में प्रजनन नहीं करती है परन्तु विशेष परिस्थितियाँ प्रदान करने पर बाँधों में प्रजनन कर लेती है। यह किञ्चित् अलवणिक जल को भी सहन करने की क्षमता रखती है। यह प्रथम वर्ष के अन्त में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। भारतवर्ष में वर्षाकाल में (मई से जुलाई मास तक) प्रजनन करती है तथा क्षुद्रमीन अवस्था में इसको दूरस्थ स्थानों को सफलतापूर्वक संवहन किया जा सकता है। अण्डे जो नीले रंग के, निमज्जी, अण्डाकार और न चिपकनेवाले होते हैं, नदी के उथले स्थलों पर पाये जाते हैं। निषेचन के 16-20 घण्टे उपरान्त शिशु उत्पन्न होता है और एक मास की अवस्था में प्रौढ़मीन के लक्षण आ जाते हैं।

रोहू और नैन के आहारिक तत्त्वों पर ही भोजन करनेवाली यह मीन, कीट और घोंघों

को भी खाती है। इसके आहार में प्राणि-भाग बहुत ही कम रहता है। दो से० मी० लम्बी शिशु मीन एक कोषीय आप्यका खाती है, तत्पश्चात् इसके भोजन में 30% पादप प्लवक 50% प्राणि-प्लवक तथा शेष सड़ा हुआ प्रांगारिक-भोजन और डेट्रीट्स होता है। प्रौढ़ मछली नितलजीव प्राणियों, पौधों और पररोही प्लवकों के साथ नितल का मलवा भी खाती है।

अन्य मछलियों के साथ पालने पर, यह एक वर्ष के अन्त में 450 ग्रा० भारी और 30-35 से० मी० लम्बी हो जाती है।

4. बार्बस-हेक्जागोनोलेपिस (चोकलेट महाशीर)––यह मछली हिमालय की तराई में, आसाम की नदियों, तमिलनाडु में कावेरी तथा उसकी सहायक नदियों में प्राप्त होती है। यह बंगाल में कटली, आसाम में बोकर और मद्रास में कोरम्बाई कहलाती है। कावेरी में इसकी साधारणत: प्राप्त होने वाली लम्बाई 70 से० मी० और 9 पौण्ड भार है। यह एक उत्तम आखेट-योग्य मछली है और केला, केंचुआ, खली, तुलसी, पतम आदि सस्ते सुलभ चारे से पकड़ी जा सकती है।

इस मछली की अधिकतम लम्बाई 900 मि० मी० होती है। पानी के साथ ही साथ इसका रंग भी बदलता रहता है। यह भूरापन लिए गहरे नीले रंग की होती है और पक्ष गहरे रंग के होते हैं। इसका सम्पीडित, दीर्घायत शरीर, अधिकोण सम-गोल तुण्ड, वड़ा अधर मुँह, चार स्पर्शा पृष्ठपक्ष की अन्तिम रश्मि अस्थिमय और सम्पूर्ण, पश्चपक्ष में दो शल्य तथा पार्श्व रेखा 28-31 शल्कयुक्त, इसकी पहचान के प्रमुख लक्षण हैं।

पहाड़ी नालों की मछली स्थिर जलों में संवर्धन के लिए उपयोगी है। यदि 28° से० पर वहावयुक्त पानी मिल सके तो यह जलाशयों में भी अण्डौघजनन करती है। ऐसे जलाशयों का तला कंकरीला होना चाहिये। परिपक्व मछली में से कृत्रिम रूप से अण्डे निकाल कर कृत्रिम निषेचन भी किया जा सकता है। इसका प्रजननकाल अप्रैल से अक्तूबर तक है जिसमें अगस्त-सितम्वर मास मुख्य हैं।

अण्डे गोल, निमज्जी होते हैं और निषेचन के 4 से 7 दिन बाद शिशु पैदा होता है। मादा मछली 20 से० मी० की लम्बाई और नर 9 से० मी० की लम्बाई पर लैंगिक परिपक्वता प्राप्त करती है। जलाशय में एक वर्ष के अन्त तक यह 15 से 20 से० मी० लम्बाई और 110 ग्राम भारी हो जाती है।

शिशु मीन का आहार 60% डायऐटम्स तथा प्लावी आप्यकाएँ तथा 40% प्रोटोझोआ, रोटीफर्स और क्रस्टेशिया युक्त प्राणिप्लवक होता है। प्रौढ़ मीन महाशन (अत्यधिक खानेवाली) होती है और जल पादप, कीटाणु तथा उनकी इल्ली और घोंघों से इनका पेट सदैव भरा रहता है। इससे नितल-भोजी आदत ज्ञात होती है। आँगुलिक

अवस्था में यह कीटों की इल्ली, बीटिल्स और फ्लाईज ही खाती है तथा प्रौढ़ों के पेट में सीमान्तक-घास और जल-पादप ही अधिक मिलते हैं।

5. बार्बस कर्नाटिकस (कर्नाटक-शफर)—यह मछली सीमित संख्या में पाली जाती है। तमिलनाडु में नीलगिरि के नीचे, वायनाड, दक्षिण कनारा पहाड़ियों में तथा कर्नाटक में प्राप्त होती है। कावेरी नदी की प्रमुख और उत्तम आखेट-योग्य मछली है। तमिलनाडु में यह पौरी के नाम से जानी जाती है। इसकी अभिलिखित सर्वाधिक लम्बाई 100 से० मी० से ऊपर तथा वजन लगभग 25 पौण्ड होता है।

यह अपने दीर्घायित सम्पीडित शरीर, अधिकोण छोटी तुण्ड, छोटे चार स्पर्शा, छोटा सिर बड़े शल्क तथा हरित वर्ण से पहचानी जाती है। पृष्ठपक्ष की अन्तिम चार पक्ष-रश्मियाँ सम्पूर्ण और अस्थिमय होती हैं तथा पार्श्वरेखा 30-32 शल्क युक्त होती है।

यह मछली स्थिर जलों में पालने योग्य है और तमिलनाडु के तालाबों में संवर्धन के लिए उपयोग की जाती है। यह जलाशयों में प्रजनन नहीं करती है। कर्नाटक शफर को लैंगिक परिपक्वता अपेक्षाकृत शीघ्र प्राप्त हो जाती है और 12·5 से० मी० के नर और 15·0 से० मी० की परिपक्व मादा कावेरी में साधारणतः प्राप्त हो जाती है। यह लैंगिक परिपक्वता सम्भवतः जीवन के प्रथम वर्ष में ही प्राप्त हो जाती है। इसका प्रजनन-काल जून-जुलाई (वर्षाकाल) और नवम्बर-दिसम्बर है। इसके शिशुमीन कावेरी और भवानी नदियों से एकत्र किये जाते हैं। शिशु अवस्था में कर्नाटक शफर और चोकलेट महाशीर के शिशु देखने में लगभग एक-से दिखाई देते हैं तथा संग्रह-स्थल पर इनको पहचानने के लक्षण निम्नांकित हैं—

पहचान के लक्षण	कर्नाटक शफर	चोकलेट महाशीर
	(1·3 से० मी० से 5·0 से० मी० लम्बाई पर)	
1–पुच्छ चिह्न	स्पष्ट, ध्यानाकर्षी एवं गहरा	अस्पष्ट, प्रसृत और हल्का
2–पृष्ठ पक्ष	शाखी रश्मियाँ, रंग रहित	शाखी रश्मियाँ, आगे का हिस्सा काला अथवा गहरा भूरा
3–अंस एवं अधर पक्ष	पारदर्शी एवं रंग-रहित	पहली रश्मि पीत अथवा दूधिया रंग की
4–स्पर्शा–(4)	स्पष्ट, साधारणतः दिखाई देता है	अस्पष्ट तथा कठिनता से दिखाई देता है.

शिशु मीन के आहार में 55% पादप-मन्द-प्लवक, 10% प्राणि-प्लवक और 45% जलकीट सम्मिलित होते हैं। प्रौढ़ मछली के पेट में से महापादप, सूत्रवत् आप्यका, क्रस्टे-

शिया और कीट तथा मछली भी पायी गयी है। प्रधानतः कर्नाटक शफर शाकभोजी है, परन्तु लगभग 1/6 आहार प्राणि तत्त्वों का होता है। रेत-कण भोजन में साधारणतः अप्राप्य रहते हैं, अतः इसे नितलभोजी नहीं कहा जा सकता है। यह महाशन है और रात्रि के समय भी सक्रिय रहती है। इसके पेट से मछली के शल्क, मछली के हिस्से और कीट भी कभी-कभी पाये गये हैं।

जलाशय में यह एक वर्ष के अन्त में 16 से 20 से० मी० लम्बी और 115 ग्रा० भारी हो जाती है।

6. बार्बस डूबियस (कोजीमीन)—यह मछली कावेरी नदी में दक्षिण-भारत में पायी जाती है। तमिलनाडु में कोजीमीन के नाम से विख्यात यह एक मध्यम आकार की मछली है। जलाशयों में संवर्धन के लिए तमिलनाडु में इसका उपयोग किया जाता है और यह 60-62 से० मी० तक लम्बी हो जाती है। विशिष्ट नुकीले सिर, रक्षित तुण्ड, पृष्ठपक्ष की दृढ़ रश्मि युक्त शरीर इसको अन्य मछलियों से अलग पहचानने के लक्षण हैं।

यह मछली उत्तरपूर्वी वर्षाकाल में प्रजनन करती है तथा इसके आंगुलिक अवस्था के शिशु जनवरी-फरवरी मास में संवर्धन कार्यक्रम हेतु एकत्र किये जाते हैं। इनकी वृद्धि आदि के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

शिशु और प्रौढ़ दोनों नितल भोजी होते हैं, जैसा भोजन में ग्रेस्ट्रोपोड शंख, कीट और रेत-मिट्टी के मिलने से निश्चय हो गया है। प्रौढ़ सूत्रवत् आप्यकाएँ भी खाते हैं। नदी में कोजीमीन के शिशु, झुण्डों में उथले किनारों पर घूमते हुए मिल सकते हैं तथा इनकी उपस्थिति का ज्ञान मिट्टी में कीड़ों की खोज में किये गये उथले गड्ढों को देखकर किया जा सकता है।

7. बार्बस-सराना (पुटी)—समस्त भारत में प्राप्त होने वाली यह मध्यम आकार की शफर है जो लगभग 35 से० मी० तक लम्बी हो जाती है। यह तराई और दोआब तथा पहाड़ी नालों में भी पायी जाती है। इसे गहरे, सीमित सम्पीडित शरीर, छिद्र रहित कुण्ठित तुण्ड, तथा पार्श्वरेखा 32-34 शल्कयुक्त तथा पृष्ठपक्ष की क्रकय शल्य (सिरेटेड स्पाइन) से पहचाना जा सकता है। इसके चार स्पर्शाओं में से दो तुण्डास्थि पर और दो कुछ बड़े उत्तर हनु पर होते हैं। यद्यपि यह प्रजाति नियमित संवर्धन के लिए उपयोग नहीं की जाती है तथापि किन्हीं स्थलों में इसके शिशुओं का संग्रह नियमित रूप से किया जाता है। यह महाशन है तथा समुचित मात्रा में सड़ते हुए महापादप, गेस्ट्रोपोड शंख, कीट, कृमि और सूत्रवत् आप्यकाओं का आहार करते हैं। यह वर्षाकाल में नदियों में प्रजनन करती है परन्तु जलाशयों में प्रजनन नहीं करती। प्रमुख शफरों के शिशुओं के साथ-साथ ही इसके शिशु भी एकत्र करके संवर्धन के लिए संचित किये जाते हैं।

साधारणतः यह न्यून संख्या में ही जीवित रहते हैं और 10 मास में लगभग 25 से० मी० लम्बे हो जाते हैं और इसी समय इन्हें लैंगिक परिपक्वता भी प्राप्त हो जाती है।

15-30 मि० मी० लम्बे शिशुओं में पुच्छ-चिह्न और पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति के निकट पीठ पर एक छोटा काला चिह्न भी होता है। आँगुलिक अवस्था में पृष्ठपक्ष का काला चिह्न मिट जाता है और पुच्छ-चिह्न बना रहता है। इसके स्पर्शा स्पष्ट और विशिष्ट होते हैं।

8. **एनाबस टेस्टूडीनियस (कोई)**—विस्तृत वितरण वाली 'कोई' समस्त भारत में प्राप्त होती है। लगभग 23 से० मी० तक बढ़नेवाली यह मछली बहुत से स्थानों में अत्यधिक पसन्द की जाती है और प्रमुख शफर से भी अधिक मूल्य प्राप्त करती है। इसका शरीर पीछे की ओर संपीडित दीर्घायत तथा चौड़े सिर वाला होता है। इसके जबड़ों पर छोटे तिकोने दाँत और क्लोमावरण क्रकच होता है। पुच्छ पक्ष गोलाकार और पार्श्व-रेखा 26-31 खण्डित शल्क युक्त होती है। शरीर का रंग न्ययपीतहरि होता है और पेट पर यह हल्का हो जाता है।

साधारणतः यह मीठे पानी और दलदल की मछली है तथापि सागर-संगम स्थलों में भी कहीं-कहीं पायी जाती है। किसी विशिष्ट प्रयास से ही यह स्थिर और रुके हुए जल में प्रजनन कर लेती है। यह छः मास की अवस्था और 8 से० मी० लम्बाई प्राप्त कर लेने पर लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है। भारतवर्ष में इसका प्रजननकाल मई से अक्टूबर तक रहता है। अण्डों का रंग पीत अथवा श्वेत होता है, ये उत्प्लावी होते हैं और शिशु पैदा होने तक तैरते रहते हैं। शिशु 28° सें० पर 24 घण्टों में पैदा हो जाते हैं।

इल्ली और शिशुमीन पादप और प्राणि प्लवकों का आहार कर लेती है। बड़ी मछली 70% क्रस्टेंशियन्स, कृमि, मोलस्क और कीट, 25% महापादपों के मुलायम हिस्से और आप्यक्राएँ तथा शेष मलवे का आहार करते हैं। यह मछली धान के खेतों में धान के दानों और जलाशयों में दीमक और चारा मछली को भी खाती है।

साधारणतः यह अन्य मछलियों के साथ ही पाली जाती है और इसे आम्लिक-जल में भी पाला जा सकता है। यह अति सहिष्णु मीन है और स्थितिबोध इन्द्रिय के कारण जल के बाहर भी काफी समय तक रह सकती है। यह मछली प्रतिकूल परिस्थितियों में रह सकने में समर्थ है। इसके लिए अनुकूलतम तापक्रम 20° से 30° सें० है परन्तु यह हिमांक पर भी रह सकती है। यह प्रथम वर्ष के अन्त तक जलाशय में 12 से० मी० तक लम्बी हो जाती है।

9. **क्लेरियस-बेट्रेक्स (मांगुर)**—यह विडाल-मत्स्य (कैट फिश) सम्पूर्ण भारत-वर्ष में प्राप्त है तथापि अपेक्षाकृत मात्रा में कम ही पायी जाती है। यह लम्बे शरीर,

दबे हुए सिर, आठ स्पर्शा युक्त अनुप्रस्थ मुख, शल्क रहित शरीर और सिर पर अस्थिमय कणमय पहिकाओं की उपस्थिति से पहचानी जा सकती है। शरीर का रंग गहरा हरा अथवा भूरा जो पेट पर हल्का होता है। बहुधा उदग्र-पक्ष के किनारे लाल रंग के होते हैं पृष्ठपक्ष के शल्क घाव कर देते हैं जो कष्टप्रद हो जाते हैं। यह एक अच्छी भोज्य मछली है और बाजार में इसकी अधिक माँग रहती है तथा इसका मूल्य भी अधिक रहता है।

दलदल और नदी की यह मछली स्थिर जल में संवर्धन के योग्य है। साधारणतः यह जलाशयों और चावल के खेतों में अवाञ्छित मछली के रूप में आ जाती है और स्थिर जल में प्रजनन करती है। यह अल्प-अलवणिक जल भी सहन कर सकती है। नदियों में इसका प्रजनन-काल वर्षाऋतु है परन्तु जलाशयों में यह वर्ष भर प्रसव करती रहती है। इसके जीवन की दशाओं और विभिन्न परिस्थितियों में वृद्धि के बारे में अधिक अन्वेषण नहीं हुआ है।

यद्यपि यह हिंसक मछली है तथापि मीन-भक्षी (पिस्सीवोरस) नहीं है। मध्यम आकार की मछली प्रचिंगट को बहुत खाती है परन्तु कीट, कीट-इल्ली, रेत आदि भी इसके सामयिक भोजन हैं। शिशुमीन प्रोटोज़ोआ, छोटे क्रस्टेशिया, रोटीफर्स और पादप-प्लवकों को खाती है। कीट इल्ली, शिम्प्रस, कृमि, प्रांगारिक मलवा इत्यादि जो भी नितल पर प्राप्त हो सके प्रौढ़ मछली का आहार होता है।

सहायक श्वसनांग (लेब्रिन्थाइन रेस्पिरेशन) युक्त यह मछलियाँ अन्य मछलियों के साथ ही पाली जाती हैं और इन इन्द्रियों के कारण यह अन्य मछलियों के लिए घातक परिस्थितियों में भी रह सकती है। यह पतली मिट्टी और गीली मृदा में भी रह सकने योग्य है।

जलाशयों में एक वर्ष की आयु पर यह 20 से० मी० लम्बी हो जाती है और द्वितीय वर्ष के अन्त तक सर्वाधिक लम्बाई की हो जाती है।

10. हेटरोप्न्यूस्टिस फोसिलिस (सिंधी)—सारे भारत में प्राप्त होने वाली यह विडाल-मत्स्य सहायक श्वसनांग (एक्सेसरी रेस्पिरेटरी आर्गन्स) से युक्त होती है और प्राकृतिक वायु को ग्रहण कर सकती है। इसका माँस पौष्टिक होता है, बाजार में सर्प-शीर्ष मरल से इसका मूल्य कम ही आता है। यह मछली अपने पृष्ठपक्ष के शल्कों के कारण स्थानीय सूजन और कष्टप्रद घाव पैदा कर देती है, जिससे कभी-कभी बुखार भी आ जाता है।

इसका शरीर लम्बा और सिर छोटा होता है। उत्तर हनु के स्पर्शा बड़े होते हैं और पृष्ठपक्ष को बीच में काट कर अलग किया हुआ होता है। शरीर का रंग शीशे जैसा पारदर्शी होता है। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 45 से० मी० होती है।

मीठे पानी वाली नदियों और दलदलों में रहने वाली यह मछली स्थिर जलों, दलदलों और तृणक-युक्त कच्छों में पालने योग्य होती है। यह वर्ष भर अण्डौधजनन करती रहती है। इसके तीन चौथाई भोजन में प्रोटोज़ोआ, क्रस्टेशिया और कीट कृमि होते हैं और शेष पादप-प्लवक और आप्यकाएँ होती हैं। यह नितल भोजी है। सहायक श्वसनांग होने के कारण यह पर्याप्त काल तक गीली-मिट्टी में रह सकने योग्य है। जलाशयों में प्रथम वर्ष के अन्त में यह 20 से० मी० तक लम्बी हो जाती है।

11. टिन्का टिन्का (टेञ्च)—यह अभ्यागत मीन है, जो भारत में सन् 1874 में लायी गयी थी। यह दक्षिण-भारत में उटकमण्ड-झील, तमिलनाडु में लायी गयी थी जहाँ यह सन्तोषप्रद वृद्धि प्राप्त कर चुकी है। वहाँ से सुन्केसुला-फार्म (आन्ध्रप्रदेश) में यह लायी गयी थी वहाँ यह सफलतापूर्वक पाली गयी है। यह छोटी शल्क, गोल पूँछ और शरीर के गहरे हरितस्वर्ण रंग से पहचानी जा सकती है। टेञ्च स्थिर-जल को पसन्द करती है और साधारणतः यह नितल-जीवी मीन मानी जाती है। हिन्द-प्रशान्तीय क्षेत्र में यह डायएटम्स, हरित नील आप्यकाएँ, सूत्रवत् आप्यकाएँ तथा शाक-मलवा का आहार करती है। इसके आहार का एक तिहाई भाग जल में रहने वाले प्राणी मोलस्का, कृमि और कीट होते हैं। आँगुलिक अवस्था में शिशु प्लाविक-क्रस्टेशिया का आहार पर्याप्त मात्रा में करते हैं। शिशु-मीन केवल प्राणि-प्लवकों का आहार करते हैं।

यह जलाशयों में 16° सें० पर प्रजनन करती है। उटकमण्ड-झील में इसके प्रजनन की प्रमुख ऋतु फरवरी से अप्रैल है। कृत्रिम रूप से इसके अण्डे निकाल कर कृत्रिम निषेचन भी सफलतापूर्वक किया जा सका है। इस मछली को सामान्यतः छोटी अवस्था में ही लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है और साधारण मादा, शरीर के प्रति पौण्ड भार पर 2,00,000 अण्डे के हिसाब से अण्डे देती है। अण्डे 1 मि० मी० व्यास के होते हैं। चूँकि अण्डे चिपकने वाले होते हैं अतः ये निमग्न-पादपों की पत्तियों और अन्य वस्तुओं पर सरलता से चिपक जाते हैं। अण्डे 5-6 दिन के बाद फूटते है और शिशु तब पैदा होते हैं। इसकी वृद्धि प्रति वर्ष 12.5 से० मी० से 15.00 से० मी० तक होती है। मादा-मछली अपने छोटे क्षीण अधर-पक्ष और क्षीण श्रोणि-अस्थियों के कारण अलग पहचानी जा सकती है। यह शफर मीन के साथ 10% अनुपात में पाली जा सकती है। इसका सर्वाधिक भार 3 कि० ग्रा० और लम्बाई 40 से० मी० हो जाती है।

12. टोर-टोर (महाशीर)—भारत की एकमात्र आखेट-योग्य मत्स्य महाशीर, समस्त भारत में पायी जाती है। यह पहाड़ी नदियों और नालों में जहाँ पर चट्टानें होती हैं, प्रमुखता से पायी जाती है। स्वच्छ उथले और पथरीले नालों में इसके छोटे शिशु बहुतायत से घूमते मिलते हैं।

मोटे होठ, नीचे के जबड़े पर सम्पूर्ण झल्लर, दो जोड़ स्पर्शा, उत्तर हनु-स्पर्शा, तुण्डास्थि के स्पर्शा से बड़े और आँख तक पहुँचने वाले, पृष्ठपक्ष अधर पश्च के सम्मुख ही स्थित और शरीर की ऊँचाई से केवल 3/4 ऊँचा, पृष्ठपक्ष की अन्तिम पूर्ण लक्ष-रश्मि चिकनी और कड़ी, मोटाई और लम्बाई अस्थिर, अंसपक्ष की लम्बाई तुण्डास्थि को छोड़कर सिर की लम्बाई के बराबर पुच्छ पक्ष के खण्ड गहन होते हैं, प्रस्तुत लक्षण इसको पहचानने के लिए प्रमुख है। पार्श्वरेखा 25-27 शल्कयुक्त होती है। शरीर का रंग हरित अथवा रजत ऊपर पेट पर तथा पार्श्व में स्वर्ण-रजत मिश्रित रंग होता है। नीचे के पक्ष लालिमा लिये हुए पीत होते हैं। डॉ० सु० ला० होरा के अनुसार यह 119 पौण्ड तक की पायी गयी है। यह बहुधा शीघ्र बढ़ती है।

यह अधिकतर स्वच्छ जल में प्रजनन करना पसन्द करती है। वर्ष में तीन बार जनवरी, जून-जुलाई और सितम्बर-अक्तूबर, इसके प्रजनन के समय हैं। यह प्रमुख-शफरों की भाँति नदियों से बहुतायत से मिलती हैं। प्रमुख-शफर के साथ इसका सम्वर्धन मध्य-प्रदेश में प्रारम्भ किया गया है, और इसके फल सन्तोषप्रद रहे हैं। यह ढाई-तीन वर्ष में 6 से 8 पौण्ड तक भारी हो जाती है। इसकी भोजन-सम्बन्धी आदतों पर अधिक कार्य नहीं हुआ है। पहाड़ी स्थानों के जलाशयों में इसकी वृद्धि अति उत्तम रहती है।

(ई) हिंसक-मीन (कार्नीवोरस)

1. लेटिस-कल्केरीफर (भेटकी)——साधारणतः तटीय-स्थानों में पायी जाने वाली यह प्रश्नि सर्वाधिक लोकप्रिय आलवणिक जल की भोज्य और आखेट योग्य मछली है। यह 170 से० मी० तक लम्बी हो जाती है। यह हिंसक मीन है तथा अन्य मछलियों, प्रान्स, श्रिम्प्स और घोंघों का आहार करती है। यह आलवणिकता के विस्तृत विस्तार को सहन कर सकती है। नदी के क्षेत्र में पहुँचकर यह स्वतः ही मीठे पानी में रहना शुरू कर देती है। मीठे पानी में यह एक वर्ष में 45 से० मी० लम्बी हो जाती है।

यह दीर्घायत, सीमित सम्पीडित शरीर, दबे हुए सिर, न्युब्जाकार पीठ, तिरछा मुँह, निचला ओठ आगे को निकला हुआ, क्लोमावरण क्रकच, दाँत युक्त जबड़े, तालू तथा नीचे जुड़े हुए दोनों पृष्ठ पक्षों से पहचानी जाती है। पश्चपक्ष में तीन शल्क होती है। पार्श्वरेखा 52-61 शल्कयुक्त होती है। शरीर का ऊपरी हिस्सा हरित और पेट का हिस्सा रजत वर्ण का होता है।

यह स्थिर-जलों में पालने योग्य मछली है और बहुधा जलाशयों में अवन्धित मछली के रूप में पायी जाती है। यह शफर मीन के साथ हिंसक स्वभाव के कारण नहीं पाली जा सकती। बंगाल के मछुए कुछ सीमित संस्था में इसको शफर जलाशय में छोड़ देते हैं, जिससे शफर-मछली को बचाव के लिए काफी दौड़ मिलेगी और वृद्धि होगी, ऐसा उनका

विश्वास है। आलवणिक जलों में यह सीमित संख्या में पाली जाती है। इसके संवर्धन की सफलता *भेरी में चारा मछली की उपलब्धि पर अवलम्बित है।

यह जलाशय में प्रजनन नहीं करती है। इसकी शिशुमीन नदी, उपनदिका तथा उप-ह्रदों में से इकट्ठी की जाती हैं। जलाशयों में चारा-मछली की न्यूनता होने पर कृत्रिम आहार देना पड़ता है। खुले स्थानों में यह मलिना, विडाल मीन और सार्डीन इत्यादि मछली और क्रस्टेशियन (एक प्रकार का जल-जीव) का 75% आहार करती है। यह स्कम्भ-भोजी है, तथा अन्य मछलियों के साथ पाली जाने योग्य नहीं है।

प्रथम वर्ष के अन्त में यह 500 ग्राम भारकी और 30 से० मी० लम्बी हो जाती है।

2. मेगालोप्स सिप्रीनोइडिस (टारपन)—मध्यमाकार की यह भोज्य और शिकार योग्य मीन तटीय-स्थलों पर पायी जाती है तथा वर्षा ऋतु में निकट के तड़ागों और जलाशयों में यह चढ़ आती है। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 100 से० मी० अभिलिखित है। यह किञ्चित् सम्पीडित, दीर्घायत शरीर, तिरछा मुँह, विशिष्ट और बड़ा निचला ओठ, पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति तुण्ड और पुच्छाधार के बीचोबीच, पृष्ठपक्ष की अन्तिम रश्मि सूत्रवत् अंस और अधर-पक्ष के ऊपर कक्षस्थ शल्कों की उपस्थिति, बड़े नेत्रों के ऊपर पलक, हलास्थि तालू तथा जबड़ों में दाँत, छोटे शल्क, पार्श्वरेखा 40 शल्क युक्त, पीठ पर रजत अथवा हरितनील, रंग और पेट पर नीली झलक लिये हुए रजत तथा पृष्ठपक्ष, पुच्छपक्ष और अधर-पक्ष के ऊपरी काले भाग से पहचानी जा सकती है।

एक समुद्री मत्स्य होते हुए भी यह मीठे पानी में स्वतः ही चढ़ आती है और वहीं बस भी जाती है। यह स्थिर जलों में पालने योग्य मछली है, परन्तु जलाशयों में इसका प्रजनन नहीं होता है। 25 से० मी० लम्बी हो जाने पर इसे लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है। इसके शिशु जो तनुशीर्ष प्रजाति जैसे होते हैं, तट के आसपास जून-जुलाई और नवम्वर-दिसम्बर में इकट्ठे किये जा सकते हैं। यह इस समय सागर-संगमीय जलों में आ जाते हैं। यह बहुत सहिष्णु होती है और खारे पानी से सीधे मीठे पानी में डाली जा सकती है। इसकी सहिष्णुता के कारण इसे विना किसी हानि के दूरस्थ स्थानों को संवहन किया जा सकता है। आलवणिक जलाशयों में यह वहुधा अपने आप आ जाती है। आँगुलिक अवस्था में इसकी सहिष्णुता कम हो जाती है और तव इसे सीधे ही खारे पानी से मीठे पानी में नहीं बदला जा सकता है। इसका प्रजनन वर्ष भर होता रहता है, परन्तु शीतकाल में मुख्यतः होता है।

टारपन की क्षुद्रमीन अवस्था प्रमुखतः छोटे क्रस्टेशियन्स तथा सीमित डायएटम्स और सूत्रवत् आप्यकाओं का आहार करती है। आँगुलिक अवस्था में सूक्ष्म क्रस्टेशियन्स और

(* भेरी :—बंगाल प्रान्त में अलवणिक जलाशय का नाम।)

आप्यका प्लवकों का आहार करती है। प्रौढ़ मछली अधिकतर शितमस, कीड़ा और छोटी मछली खाती है। इसके आहार का लगभग 50% मछली, 30% क्रस्टेशियन्स, शेष भाग अन्य जलप्राणि और बहुत थोड़े जलपादप होते है।

इसकी वृद्धि शीघ्र होती है तथा मीठे पानी के जलाशय में यह वर्ष के अन्त तक लगभग 35 से० मी० हो जाती है, परन्तु सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियों में यह साढ़े चार मास में ही इस लम्बाई को प्राप्त कर लेती है। आलवणिक जलाशयों में एक वर्ष के अन्त में यह 40 से० मी० लम्बी हो जाती है। यह भारतवर्ष में ही पाली जाती है, तथा अन्य देशों में तो जलाशय के लिए अवाञ्छित मछली मानी जाती है।

3. चाना स्ट्रायएटस (सोल)—भारतवर्ष के कई भागों में यह मछली बहुतायत से होती है। यह मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, पञ्जाब और ट्रावनकोर कोचीन में अति उत्तम भोज्य-मछली समझी जाती है। भारतवर्ष में पायी जाने वाली मरल मछलियों की विभिन्न प्रजातियों में सर्वाधिक साधारणतः प्राप्य होने के साथ ही साथ यह मितव्ययी भी है। भारत की सभी प्रजातियाँ एक दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं। यह रम्भाकार और पीछे की ओर सम्पीडित शरीर, सिर दबा हुआ, जिसका ऊपरी भाग सर्प की भाँति उदुब्ज होता है, हलास्थि तालू और जवड़ों में दाँत, पार्श्वरेखा 52-57 शल्कयुक्त तथा 17 वीं से 20 वीं शल्क के वाद नीचे झुकी हुई तथा पीठ पर काले और पेट पर हल्के भूरे रंग से यह पहचानी जा सकती है। इसकी पहचान के विशिष्ट चिन्हों के लिए साथ में दिये हुए लक्षणों का अवलोकन करना चाहिये।

यह मीठे पानी के दलदल-स्थानों की प्रमुख मछली है, परन्तु इसमें अलवणिक जलों में भी रह सकने की क्षमता होती है। यह स्थिर-जलों में पाली जा सकने योग्य है, परन्तु धान के खेतों, तड़ागों और जलाशयों में यह अपने आप ही आ जाती है। यह हर स्थान पर किसी विशेष परिस्थिति के बिना ही प्रजनन करती है और इसके प्रजनन का मुख्य समय जनवरी मास है। इससे लैंगिक परिपक्वता लगभग दो वर्ष की आयु और 25 से० मी० लम्बाई पर प्राप्त होती है। जलाशय के किनारे उथले स्थानों में पादप-समूहों को काट-छाँट और सफाई करके मछली एक नीड़ तैयार करती है। अण्डे सावधानी से एक पतली सतह में बिछाये जाते हैं और नर द्वारा रक्षित रहते हैं। निषेचित अण्डे 1.25–1.5 मि० मी० व्यास के होते हैं और इनसे शिशु तीन दिनों के भीतर ही निकल आता है। शिशुमीन को मादा मछली भोजन के लिए घुमाती है। यह सहायक श्वसनांग की उपस्थिति के कारण दूषित जलों में भी रह सकती है। इल्ली (लारवा) अवस्था में यह आप्यका और प्रोटोझोअन्स का आहार करती है। शिशु अधिकतर छोटे क्रस्टेशियन्स और तनिक वनस्पति तत्त्वों का आहार करते हैं। प्रौढ़ मत्स्य भयानक रूप से हिंसक स्वभाव की हो

जाती है, और छोटी मछली, गौण शफर, प्रमुख शफर के शिशु, कीड़े, मेढक तथा अन्य जीवित प्राणियों का आहार करती है।

भारतवर्ष में यह जलाशयों में पाली जाती है । हिंसक होने के कारण, अधिक चारा-मछली प्राप्त होने परइ सकी वृद्धि भी अति शीघ्र ही होती है। एक वर्ष के अन्य तक यह 25 से 30 से० मी० लम्बी हो जाती है। इसकी सर्वाधिक लम्बाई 90 से० मी० अभिलिखित है।

4. चाना मखलियस (सोल)--मरल की प्रजातियों में लगभग 120 से० मी० तक की लम्बाई प्राप्त करने वाली सम्भवतः यह सबसे बड़ी मछली लगभग समस्त भारतवर्ष में उपलब्ध है। यह बड़े जलाशय, तालाब, झीलें और दलदल पसन्द करती है तथा यह नदियों में भी पायी जाती है। यह रम्भाकार शरीर जो पीछे की ओर सम्पीडित होता है, दबे हुए सिर पर तुण्ड और पृष्ठपक्ष की उत्पत्ति पर साधारण आकार की शल्कों की 16 पंक्तियाँ, 60–70 शल्कयुक्त पार्श्वरेखा जो 16 वीं से 18 वीं शल्क से दो पंक्ति नीचे उतर जाती है, तथा शरीर के आधूसर हरित रंग, जो पेट पर नारंगी होता है, से पहचानी जा सकती है। शरीर के दोनों ओर पार्श्वरेखा से भी नीचे उतरती हुई 5–6 धुंधली धारियाँ और साधारणतः पुच्छपक्ष पर सफेद चिट्टे होते हैं।

मीठे पानी की यह मछली, स्थिर-जलों में पाली जाने के योग्य है। यह जलाशयों में बिना किसी विशेष प्रबन्ध के प्रजनन कर लेती है। इसका प्रजनन-काल अप्रैल से जून तक रहता है। प्रजनन सम्बन्धी अन्य आदतें इसकी स्ट्रायएटस के समान ही होती हैं। अण्डों का 1·5 मि० मी० व्यास होता है, और भूरे रंग के होते हैं। शिशुमीन 6 सप्ताह बाद स्वतन्त्र विचरण करना प्रारम्भ कर देती है। कृत्रिम भोजन देने पर यह सिंचाई के कुएँ और छोटे पक्के तालाबों में पाली जा सकने के लिए उचित है।

यह मछली हिंसक होने के साथ ही साथ स्वजाति भोजी (केनीबलिस्टिक) भी है और इसी कारण से इसकी उत्पत्ति कम हो जाती है। शिशुओं की वृद्धि शीघ्र होती है और यह 19 से 21 दिन के भीतर 26 मि० मी० की हो जाती है । दो मास का शिशु 12 से० मी० का होता है तथा एक वर्ष की सर्वाधिक लम्बाई 75 से० मी० हो जाती है।

5. चाना पन्क्टेटस (सोरी)--यह मरल जाति की छोटी मछली होती है और इसकी सर्वाधिक लम्बाई 30 से० मी० होती है। इसके रम्भाकार शरीर, पीछे की ओर सम्पीडित दबे हुए सिर, पृष्ठतल की उत्पत्ति और तुण्ड के बीच में साधारण आकार की 12 शल्क पंक्तियाँ होती हैं। पार्श्वरेखा पश्चपक्ष के चौथे शल्क के ऊपर से झुक जाती है। शरीर का रंग पीठ पर हरित और पेट पर पार्श्व 31 ए में पीत होता है। कुछ मछलियों के शरीर और सिर पर काले धब्बे होते हैं।

साधारण सर्पशीर्ष (मरल) मछलियों की सरल पहचान के लक्षण

पहचान के लक्षण	चा० मरुलियस	चा० स्ट्रायएटस	चा० पन्क्टेटस	चा० गचुआ
1. पृष्ठपक्ष की रश्मियाँ	45 से 55	37 से 45	29 से 32	32 से 37
2. पश्चपक्ष की रश्मियाँ	28 से 36	23 से 26	21 से 23	21 से 23
3. तुण्ड से पृष्ठपक्ष तक की शल्क	15 से 16	18 से 20	12	12
4. अंस पक्ष	निरंक (प्लेन), चिट्टे या धारियाँ नहीं	निरंक (प्लेन) चिट्टे या धारियाँ नहीं	निरंक, चिट्टे या धारियाँ नहीं	पीत और काली एकान्तर खड़ी रेखाएँ
5. प्रौढ़ के शरीर का रंग	हरित पार्श्वरेखा के ऊपर, गहरा भूरा अथवा आधूसर तथा पार्श्वरेखा के नीचे श्वेत, पार्श्व में गहरे धब्बे।	पार्श्वरेखा के ऊपर अत्यधिक गहरा भूरा, जो पार्श्वरेखा के नीचे अनियमित धारियों में हो जाता है। नीचे का रंग पीत या पाटल।	भूरी पीठ, नीचे हल्का, गहरे धब्बे पूरे शरीर पर, कभी-कभी खड़ी धारियाँ	पीठ पर भूरा, नीचे हल्का होकर नीला हो जाता है, धब्बे रहित कभी-कभी आगे को झुकी हुई खड़ी धारियाँ।
6. शिशुओं के शरीर का रंग	दोनों तरफ चौड़ी नारंगी धारी, पुच्छ के ऊपर एक भूरा चंदोवा जो पीली धारी से घिरा रहता है,	आँख से पूँछ तक दोनों तरफ चौड़ी, नारंगी रंग की धारी, आँख की पुतली सुनहरी, पश्चपक्ष का आधार काला।	काले शरीर पर दोनों ओर चमकीली सुनहरी धारी, तुण्ड पर पीले धब्बे, पक्ष का आधार काला नहीं।	दोनों ओर दो खड़ी भूरी धारियाँ, दोनों के बीच हल्के रंग की चमड़ी, कुछ बड़ी अवस्था में पृष्ठपक्ष के पीछे के सिरे पर चंदोवा हो सकता है।
7 सर्वाधिक लम्बाई	122 से० मी०	60 से० मी० से अधिक	30 से० मी० से अधिक	लगभग 20 से० मी०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह मीठे पानी और दलदलों में पाली जाने योग्य मछली है। इसकी प्रजनन-ऋतु तथा प्रजनन-सम्बन्धी अन्य आदतें अन्य चाना (सर्पशीर्ष) मछलियों के समान ही होती है। शिशु मीन केवल सूक्ष्म क्रस्टेशियन्स और कीड़ों का आहार कर लेती है और हिंसक स्वभाव की होकर छोटी मछलियों, सूक्ष्म क्रस्टेशियन्स, श्रिम्प्स और कभी-कभी मोल्सक्स भी खाती है। वैसे मछलियाँ इसका प्रमुख आहार हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह प्रमुखतः कीटभक्षी है और अन्य मीन जातियों के लिए बहुत अधिक हानिप्रद नहीं हैं।

6. **पन्गेशस-पन्गेशस (पंगस)**––यह विडाल-मत्स्य सारे भारत की नदियों में प्राप्त होता है, और लगभग 122 से० मी० तक लम्बा हो जाता है। साधारणतः यह हिंसक मछली है तथापि यह अधिकतर गेस्ट्रोपोड्स का आहार करती है, जिसके छिलके अधिकतर पेट में पाये जाते हैं। एक 60 से० मी० लम्बी मछली के पेट में 400 छिलके तक पाये गए हैं। वनस्पति तत्वों के साथ ही साथ यह कीड़ों और मछलियों को भी खाता है। आंगुलिक अवस्था में यह पूर्णतः कीटभक्षी ही रहता है।

पंगस का प्रजनन काल भी, अन्य मछलियों की भाँति ही वर्षाकाल है। इसके संवर्धन सम्बन्धी अधिक प्रयोग नहीं हुए हैं, परन्तु प्राप्त सूचना के आधार पर बंगाल प्रान्त में यह शफर तड़ागों में भी पाली जाती है। सम्भवतः गेस्ट्रोपोड आहार के कारण इस प्रकार के जीवों की वृद्धि को रोकने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु मीनभक्षी आदतों को भी ध्यान में रखना चाहिये।

अन्य मछलियाँ

1. **केरेशस-वलगेरिस (सुनहरी शफर)**––योरोप से सन् 1874 में भारतवर्ष में लायी गयी यह अभ्यागत मछली, गहरे शरीर और सुन्दर दीखनेवाले सुनहरे शल्कों से युक्त होती है। सामान्य शफर से इसे स्पर्शा रहित होने के कारण अलग ही पहचाना जा सकता है। यह साधारणतः 45 से० मी० लम्बी और 3 पौण्ड भारी हो जाती है। यह मछली पूर्णतः प्लवक भोजी प्रतीत होती है और छोटे जीवाणु और कीटों का आहार करती है। यह तालाबों में वर्षभर प्रजनन करती रहती है वैसे इसके प्रजनन का प्रमुख काल फरवरी से अप्रैल है। लैंगिक परिपक्वता जीवन के प्रथम वर्ष में ही प्राप्त हो जाती है। साधारणतः 10 से० मी० लम्बे नर और 15 से० मी० लम्बी मादा प्रजनन के लिए तैयार हो जाती है। इस मछली से कृत्रिम रूप से अण्डे निकाल कर कृत्रिम निषेचन सम्भव है। यह प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा चुका है। इसके अण्डे भी चिपकनेवाले होते हैं और सामान्य शफर की भाँति निमग्न-पादपों की पत्ती और तनों पर चिपके होते हैं।

इसकी वृद्धि धीमी है और वर्ष भर में यह 15 से 20 से० मी० तक ही बढ़ पाती है। तमिलनाडु और आन्ध्र प्रान्त में सफलतापूर्वक इसका संवर्धन किया गया है।

2. केरेशस-ओरेटस––यह भी अभ्यागत मछली है और पाले हुए तालाबों में इसके विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। स्पर्शा-रहित होने से यह सामान्य-शफर से अलग पहचानी जा सकती है। क्षुद्रमीनावस्था में यह पादप और प्राणि-प्लवकों का और प्रौढ़ावस्था में किरोनिमिड्स, ट्यूवीफिड्स, क्रस्टेशियन्स, वर्मीस तथा कुछ वनस्पति-तत्वों का आहार करती हैं। छोटी और धीमी वृद्धि वाली यह मछली आर्थिक महत्व से अधिक उपयोगी नहीं है, परन्तु अलंकारिक मछली के रूप में इसका महत्व अधिक है। यह 200 मी० से 1000 मी० तक समुद्रतल से ऊँचाई वाले स्थानों में सफलता से पाली जा सकती है। इसके अण्डे लगभग 1 मि०मी० व्यास के और चिपकने वाले होते हैं जो निमग्न-पादपों अथवा कृत्रिम-संग्रहकों पर चिपक जाते हैं। यह जलाशय में एक वर्ष के अन्त में 250 ग्रा० भार प्राप्त कर लेती है। वहुधा अन्य मछलियों के साथ, यह अन्य मछलियों के पूरक के रूप में रखी जाती हैं।

इस मछली के अलंकारिक रूप चीन तथा जापान के विभिन्न भागों में पैदा किये जाते हैं और वहाँ से समस्त विश्व के जल-जीवालयों के उपयोगार्थ भेज दिये जाते हैं। ऐसे रूपों में पुच्छपक्ष 3–4 अथवा अधिक भागों में विभाजित होता है अथवा पृष्ठपक्ष अधिक छोटा हो जाता है या होता ही नहीं है। इस प्रकार मछलियाँ साधारणतः उष्णप्रदेशों की गर्मी सहन नहीं कर पाती हैं।

3. सालमो प्रजाति (ट्राउट)––ट्राउट-मछली को भारत में लाने का श्रेय यहाँ के अंग्रेज अधिकारियों को है। उन्होंने इसे पहाड़ी-नदियों और नालों में पालने की योजना बनायी और सन् 1867 ई० में इस अभ्यागत मछली को भारत लाये। परन्तु पहले प्रयास असफल रहे और सन् 1910 में नीलगिरि की नदियाँ, ट्राउट मत्स्यकरण के लिए तैयार हो पायीं। भारत में ट्राउट आजकल कश्मीर दार्जिलिंग, उत्तर प्रदेश, पञ्जाब, हिमाञ्चल प्रदेश, नीलगिरि में आखेटकों के लिए उपयोगी हो रही हैं।

इसका शरीर अपेक्षाकृत छोटा और मजबूत, पृष्ठपक्ष शरीर के मध्य में और साधारणतः शरीर का रंग भूरा होता है। इसका रंग जलवायु पर अवलम्बित होता है और स्थान-स्थान पर बदला रहता है। शरीर, सिर और पृष्ठपक्ष पर काले और लाल धब्बे होते हैं। पृष्ठ पक्ष के आगे पीली रेखा होती है। यह 70 से० मी० से 100 से० मी० तक लम्बी होती है।

पहाड़ी नदी, नालों की यह मछली, कहीं-कहीं तड़ागों में भी पाली जाती है। यह आखेट योग्य मछलियों में प्रमुख है। यह तड़ागों में प्रजनन नहीं करती है। इसकी वहुप्रजता क्षीण है और अण्डें सीमित ही निकलते हैं, अतः कृत्रिम परिस्थितियों में अण्डों का निषेचन करके शिशु पैदा किये जाते हैं। यह केवल आखेट के लिए उपयोगी है और

जलाशय सम्वर्धन के लिए इसका उपयोग नहीं के बराबर है। यह लगभग 1000 मी० अथवा अधिक की ऊँचाई और 20–22 सेन्टीग्रेड के अधिकतम तापक्रम पर पाली जाती है। इनके पालने के लिए सुरक्षा का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

4. वेलेगो अट्टू (लोची)—मीठे पानी के विडाल-मत्स्यों में से साधारणतः पायी जाने वाली यह मछली सारे भारत में पायी जाती है और लगभग 180 से० मी० तक लम्बी हो जाती है। यह अति हिंसक मछली है और शफर मछलियों के लिए बहुत हानिकर है। इसका दाँतसहित बड़ा मुंह शफर मछलियों को भलीभाँति समाप्त कर देता है और मध्यमाकार की शफरों को भी समाप्त कर देता है। विभिन्न पदार्थों के साथ इसके पेट में मानव अस्थि भी पायी गई है।

शरीर लम्बा, सम्पीडित, सिर चौड़ा, स्रुवाकार तुण्ड, दो पंक्तियों में बड़े दाँत और नीचे का बड़ा जबड़ा, चार लम्बे स्पर्शा, शल्क रहित छोटा पृष्ठपक्ष, शल्क रहित शरीर, पीठ पर भूरा और पेट पर हल्का शरीर का रंग इसको पहचानने के प्रमुख लक्षण हैं।

मीठे पानी की नदी, झील और दलदलों में पायी जानेवाली मछली, स्थिर जलों में भी पालने के योग्य है। यह वर्षाकाल में किनारे के स्थानों पर प्रजनन करती है। अण्डे लगभग 3.00 मि० मी० व्यास के होते हैं, और 14–20 घण्टे के भीतर शिशु उत्पन्न हो जाता है। यह महाशन मांसभक्षी मछली है। इसके शिशु मछली (40 %), कीट (30%), क्रस्टेशिया (10 %) तथा शेष आप्यका का आहार करते हैं। यह तालाबों में अन्य मछलियों के साथ पालने के लिए बिलकुल अनुपयुक्त है, परन्तु बहुधा जलाशयों में अपने आप ही पायी जाती है। सम्भवतः यह दलदल स्थानों में, जहाँ कि छोटी मछलियाँ इसका आहार हो सकती हैं, पाली जा सकती है।

5. नोटोप्टिरस चिताला (चीतला)—भारत में पायी जानेवाली मत्स्य-प्रजातियों में, यह सबसे बड़ी है और गंगा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र नदी समूहों में ही सीमित है। यह 120–122 से० मी० तक लम्बी हो जाती है और स्वादिष्ट मछली मानी जाती है। इसका पार्श्व सम्पीडित गहरा शरीर, विशिष्ट कुकुत्पृष्ठ, छोटा सिर, बहुत लम्बा पश्चपक्ष जो पुच्छपक्ष से जुड़ा हुआ रहता है तथा पीठ पर विशेष कर पीछे की ओर धब्बे और चिह्न पहचान के लक्षण हैं।

प्रौढ़ चीतल एक हिंसक-मत्स्य है जो स्वभावतः छोटी मछली ही खाता है। शिशु अवस्था में यह शफर शिशु और कीट शिशुओं का आहार करता है। यह मछली स्थिर जलों में प्रजनन करती है, और अण्डे निमग्न वस्तुओं से चिपक जाते हैं। छोटी मछली अति शीघ्र बढ़ती है, और 2.5 मास में 30 से० मी० लम्बी हो जाती है। यह भारत में कहीं भी नहीं पाली जाती और इसकी सम्वर्धन-सम्बन्धी सूचना भी अप्राप्य है।

७

अभ्यागत-मछलियाँ

किसी भी देश की स्थानीय मछलियाँ, जो स्थान विशेष की जलवायु में रहने और वृद्धि प्राप्त करने की क्षमता रखती हैं, सम्भव है संवर्धन के लिए उपयोगी न हों। मत्स्य-पालन की दृष्टि से ये आर्थिक रूप में हानिकर हो सकती हैं। क्षेत्र विशेष में उपयोगी मछलियों का अभाव होने पर अभ्यागत-मछलियाँ पालन करने के लिए जलाशय में डालनी होंगी। अभ्यागत-मछलियों से तात्पर्य है कि केवल विदेशों से ही नहीं, वरन् देश के अन्य भागों में पायी जानेवाली उपयोगी और आर्थिक दृष्टि से लाभकारी मछलियों को भी लाकर, मत्स्य-पालन में उपयोग किया जाय। देश के अन्य भागों से लायी गयीं, मछलियों को अभ्यागत न कह कर 'अर्ध-अभ्यागत' भी कहा जा सकता है।

जल-जैविकी विशेषज्ञ प्रायः अभ्यागत मछलियों के उपयोग की ओर उदासीन रहे हैं। इस प्रकार के मत्स्य-पालन में यह भय बना रहता है कि अभ्यागत-मछलियाँ स्थानीय मछलियों के साथ आहार, स्थान आदि बातों में स्पर्धा करके जलक्षेत्र के सामान्य संतुलन को बिगाड़ न दें। स्थानीय मत्स्य-जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। उष्णप्रदेशों के मत्स्य-संवर्धन में देखा गया है कि एक सीमित जलक्षेत्र से भोज्य मछली का, सर्वाधिक भार पैदा करने की दृष्टि से प्राकृतिक संतुलन वस्तुतः बिगड़ ही जाता है। अतः यह कार्य किसी भी अभ्यागत-मछली के द्वारा यदि सफलतापूर्वक किया जा सके और आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सके, तो अच्छा होगा।

एक सम्भावना यह भी रहती है कि ये अभ्यागत मछलियाँ तड़ागों और तालावों से बहकर नदी और क्षेत्र के दूसरे जलाशय में पहुँचकर जैविकी स्थिति तथा संतुलन को बिगाड़ देती हैं; जो स्वदेशीय अभिजातियों के लिए हानिकर होता है। अतः किसी स्थान में कोई बाहरी मछली प्रवेश कराने के पूर्व यह आवश्यक है कि उसके प्रवेश कराने की आवश्यकता की जाँच, प्रयोगों द्वारा कर ली जाय। साथ ही नियन्त्रित प्रयोगों द्वारा यह भी जान लिया जाय कि नवीन मीन का अन्य स्थानीय मछलियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। परीक्षणों के

उपरान्त जब अभ्यागत प्रजाति हानि रहित और लाभकारी ज्ञात हो जाय, तब ही इसके पालन और संवर्धन की आज्ञा देनी चाहिये।

तटीय-स्थानों में विशेषकर जहाँ स्थानीय मीठे पानी की मछली-प्रजातियों का अभाव होता है और स्थानीय मीठे पानी की मछलियों का पालन व्ययसाध्य होता है, समुद्र की उन मछलियों को, जो मीठे पानी में भी रह सकती हैं, जलवायु अनुकूलन करा कर पालना चाहिये। कतिपय प्रजातियों में तो शिशुमीन सीधे ही मीठे पानी में रखे जा सकते हैं, परन्तु यह प्रयोग वहीं सफल हो सकेगा, जहाँ आसपास के तटों पर इस प्रकार अनुकूल जलवायु में पाली जानेवाली प्रजातियाँ बहुतायत से उपलब्ध होंगी। प्रयोगों से पता लगा है कि ये प्रजातियाँ भी जलवायु अनुकूल होने पर मीठे पानी में अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से बढ़ती हैं।

अभ्यागत मछलियों के पालन से पूर्व, जाँच के समय प्रयोगों और प्राप्त सूचना के आधार पर कुछ और बातों की जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। अभ्यागत मछली के निवास-स्थान का भूतलरूप क्या है, वहाँ की परिस्थितियाँ कैसी हैं और वे परिस्थितियाँ कहाँ तक उस नवीन स्थान से समता रखती हैं जहाँ पर इस प्रजाति को लाना है। यदि कोई असमानता है, तो उसका इनके जीवन पर कोई हानिकर प्रभाव तो नहीं पड़ेगा। प्रजाति के मूल निवास-स्थान के जलवर्णन तथा ऋतु परिस्थितियों इत्यादि की तुलना करके यह जान लेना भी आवश्यक होगा कि नवीन स्थान में इस प्रजाति की वृद्धि को हानि तो नहीं होगी। अन्यथा अधिक भार उत्पन्न करने का लक्ष्य पूरा न होने पर लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना हो सकती है।

भारत में कुछ अभ्यागत मछलियाँ भी लायी गयी हैं। प्रमुख शफर, जो भारतवर्ष के तड़ागों में मत्स्य-संवर्धन के लिए उपयोग की जाती थी, वृद्धि क्षमता और अन्य गुण समान होने पर भी स्थिर जलों में प्रजनन नहीं करती थी। इन प्रजातियों के शिशुओं को प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में नदियों से एकत्र करना और फिर उन्हें संवर्धन के लिए दूरस्थ स्थानों में सम्वहन करना, एक प्रमुख समस्या थी और उसका निवारण भी आवश्यक था। अतः इस दृष्टि से यह भी आवश्यक ही था कि कोई ऐसी अन्य शफर लायी जाय, जिसमें अन्य गुणों के साथ स्थिर-जलों में प्रजनन की क्षमता भी हो। भारत के पहाड़ी और ऊँचे उच्छ्राय वाले स्थानों में शीतल जल के नदी नालों में पाली जाने वाली मछलियों का अभाव था और वह सब रिक्त पड़े थे। उन स्थानों के निवासी और पर्यटकों के लिए न तो भोज्य मछली का ही समुचित प्रबन्ध हो सकता था और न ही आखेट-योग्य मछली मिल सकती थी। इस प्रकार के जलाशयों और नदियों के लिए भी उचित मछली प्राप्त करना एक आवश्यकता ही थी। कुछ प्रान्तों में नदी-मुख भूमि और निचले-स्थानों

में जहाँ पानी का भराव सदा रहता था और दलदल स्थान था, पानी में कीड़े आदि अधिक उत्पन्न हो जाते थे। इन कीड़ों और मच्छरों के कारण मलेरिया, फाइलेरिया आदि घातक बीमारियाँ पैदा हो जाती थीं और इनका निवारण और नियन्त्रण कठिन कार्य था। इस क्षेत्र में अध्ययन करके यह अनुभव किया गया कि इल्ली-भोजी मीन प्रजातियाँ लाकर पाली जायँ और इन मछलियों का पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के नियन्त्रण के लिए उपयोग किया जाय। यद्यपि कुछ स्वदेशी मछलियाँ भी इस कार्य के लिए उपयुक्त थीं, तथापि फल प्राप्त न होने के कारण भी ऐसी उपयोगी अभ्यागत जातियों की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी थी। अतः भारत में मत्स्य-संवर्धन के सुधार, ऊँचाई वाली पहाड़ी नदी और नालों के समुचित उपयोग, अवांछित जल-पौधों की सफाई तथा नियन्त्रण और पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के नियन्त्रण के लिए ही अभ्यागत-मछलियों का इस देश में प्रवेश कराया गया। ग्रास और सिल्वर कार्प इसी प्रकार की मछलियाँ हैं जो सन् 1959 में लायी गयी हैं।

भारत में अब तक ग्यारह अभ्यागत मछलियाँ लायी गयी हैं। इनमें कुछ का संवर्धन सम्बन्धी उचित विवरण अन्य स्थान पर दिया जा चुका है, ऐतिहासिक तथा अन्य विवरण संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

1. यूरोपीय-शफर (सिप्रीनस कार्पिओ)––विश्व के सबसे अधिक क्षेत्र में पालन के लिए उपयोग की जानेवाली यह मछली कार्प के नाम से जानी जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर इसके कुछ शारीरिक लक्षणों में अन्तर आ गया है और इसलिए यह विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में "एशियन कार्प", "जर्मनकार्प" तथा "यूरोपियन कार्प" के रूप में विख्यात है। इसकी बहुत सी उपजातियाँ पैदा की जा रही हैं, जिनमें शारीरिक लक्षणों के अलावा अन्य अन्तर भी पाये जाते हैं। सिप्रीनस कार्पिओ की समजनि प्रचुर जलपादप युक्त स्थिर जलों में भलीभाँति रह सकती है। इन्हें मन्द गतिवाली नदियों और नालों में अधिक सुविधा रहती है तथा ये साधारणतः शीतल-जल में रहने वाली मछलियाँ हैं। ये प्राकृतिक जलों में अथवा संवर्धन जलाशय दोनों में ही वृद्धि को प्राप्त होती हैं। यह सर्व-भक्षी और कभी भी हिंसक नहीं है। इनके अण्डे देने की शक्ति भी अधिक है और इनमें पैत्रिक पालनपोषण (पेरेण्टल केयर) भी पाया जाता है। ये सब परिस्थितियाँ भारतवर्ष के पहाड़ी-स्थानों के स्थिर-जल में विद्यमान हैं और ये अबतक अनुपयोगी पड़े हुए थे। इन्हें स्थिति के योग्य पाकर ही डॉ० वी० सुन्दरराज के प्रयास से सन् 1939 में ये मछलियाँ श्रीलंका से भारत लायी गईं। यह समजनि श्रीलंका को सन् 1914 में जर्मनी से प्राप्त हुई थी।

भारत में प्राप्त हुई सिप्रीनस कार्पिओ समजनि में यद्यपि शल्क-शफर (स्केल कार्प), दर्पण-शफर (मिरर कार्प) और चर्म-शफर (लेदर कार्प) आदि तीन रूप भारत में प्राप्त हैं, तथापि दर्पण-शफर की प्रमुखता है। यह मछली पहले तमिलनाडु में नीलगिरि पहाड़ पर लायी गयी और पाली गयी थी। नीलगिरि की अधिकतम ऊँचाई 8200 फुट है। यहाँ 7000 फुट की ऊँचाई पर बसे कुनूर में यह शासकीय वनस्पति–उद्यान में पाली गयी थी। तदनन्तर यह हिमाञ्चलप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि स्थानों में बाँट दी गयी थी। यह मछली भारतीय शफरों के स्वभाव के विरुद्ध स्थिर-जल में प्रजनन करती है। यह मछली समतल मैदानों में भी जलवायुके अनूकूल की जा सकती है और वहाँ पर इसका प्रजनन अब सफलतापूर्वक हो रहा है। आखेट के लिए उपयुक्त होने के कारण इसका उपयोग आखेट योग्य मछली के रूप में भी किया जाता है। हिमाञ्चल प्रदेश से प्राप्त इस मछली का प्रजनन मध्यप्रदेश के समतल मैदानों में भी हो गया है तथा इस ओर खोज की जा रही है। यह मध्यप्रदेश में समुद्रतल से केवल 750 फुट की ऊँचाई पर ही प्रजनन कर चुकी है।

भारत में यह मछली अब लगभग प्रत्येक प्रान्त और प्रदेश में सफलतापूर्वक पाली जा रही है। जिन क्षेत्रों में प्रमुख शफर का बीज मिलने में कठिनाई होती है, वहाँ यह मछली पाली जाने वाली सर्वाधिक उपयोगी मछली सिद्ध हुई है। निजी क्षेत्र में मछली-पालकों ने इसे अधिक उत्पादन देने वाली मछली के रूप में अपनाया है। साधारणतः डेढ़-दो टन प्रति हेक्टर तक इसका उत्पादन देखा गया है।

2. आँगल-शफर (केरेशस ओरेटस और के. केरेशस)––यह मछली यूरोप से सबसे पहले तमिलनाडु में सन् 1874 में लायी गयी थी। अपने रंग और स्पर्शारहित चरित्र से यह यूरोपीय शफर से अलग पहचानी जाती है। इसकी दो प्रजातियाँ, के०–केरेशस और केरेशस ओरेटस, में से ओरेटस तो मात्र अलंकारिक मीन है। इसकी बाढ़ भी कम ही होती है। इसका उपयोग अलंकारिक जल-जीवालयों में ही किया जाता है। के० करेशस सुनहले रंग की बढ़ने वाली समजनि है। यह मछली भी जलाशयों में प्रजनन करती है और वर्ष में तीन पौण्ड वजन तक की हो जाती है। आन्ध्र प्रदेश के सुन्खेसुला फार्म पर इसका प्रजनन हो चुका है। इसकी वृद्धि सीमित और मन्द है, अतः इसका प्रचार अधिक नहीं हो पाया है और इसका वितरण भी सीमित ही रहा है।

3. टिनका-टिनका (टॅंच)––यह मछली भी सन् 1874 में तमिलनाडु में अकस्मात् अवाञ्छित रूप में ही आ गयी थी। इसका भी प्रचार अधिक नहीं हो पाया है। शीतल जल और ऊँचे पहाड़ों की यह मछली, स्थानान्तर और सम्वहन की दृष्टि से सरल नहीं है। एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने पर, मृत्यु संख्या अधिक रहती है। इसका पालन

मितव्ययी नहीं है। इसकी वृद्धि भी मन्द और सीमित ही है, जिसके कारण इसकी संवर्धन-सम्बन्धी उपयोगिता भी कम ही है।

छोटे सायक्लाइड शल्कयुक्त यह मछली लम्बे शरीर, गहरे रंग और एक जोड़-स्पर्शा से पहचानी जाती है। यह सारे शरीर से श्लेष्मल निकालती रहती है। इसका श्लेष्मल औषधि-जनक उपयोगी है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह श्लेष्मल अन्य मछलियों के घाव आदि ठीक करने की शक्ति रखता है, और इसके साथ रख देने से बीमार मछलियों के घाव ठीक होते पाये गये हैं। अतः इसी उपयोगिता के आधार पर इसे "डाक्टर मछली" भी कहा जाता है।

4. **ओस्फ्रोनीयस गौरामी-(गौरामी)**——मलय द्वीपसमूह की यह मछली मैदानों में पालने के लिए उपयोगी है। यह मछली, न तो अधिक ग्रीष्म और न अधिक शीत ही सहन कर पाती है। इसका अनुकूलतम तापमान 70–100° फा० है, अतः इसका प्रसार और वितरण अधिक नहीं हो पाया है। गौरामी प्रारम्भ में सन् 1816 और तदनन्तर वर्ष सन् 1845 ई० में लायी गयी थी। सन् 1819 ई० की मछलियाँ कलकत्ता के वनस्पति-उद्यान में पाली गयी थीं, परन्तु उनके सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्त नहीं है। सन् 1845 ई० में लायी जाने वाली मछलियाँ, मद्रास के गवर्नर सर डेनसन द्वारा जावा से लायी गयी थीं और गवर्नर भवन में पाली गयी थीं। वहाँ से शासकीय मत्स्योद्योग ने कुछ मछलियाँ लाल पहाड़ी की झील में ले जाकर डालीं, परन्तु ये प्रयोग भी असफल रहे। तदनन्तर सन् 1926 ई० में जावा से पुनः लायी गयी, और विभिन्न स्थानों में पाली गयी। यह मछली अब भारतीय जलवायु के अनुकूल बन गयी है। इसके जलवायु अनुकूलन का श्रेय उस समय के मत्स्य-संवर्धनक श्री एच० सी० विल्सन को है।

यह स्वभावतः वनस्पति-भोजी-मत्स्य है और ब्राह्मण-मीन के नाम से भी पुकारी जाती है। यह प्रमुखतः कमल, कमलिनी, हायड्रिला, व्हेलिस्नेरिया आदि जलपौधों का आहार करती है। रसोई घर का मलवा तथा खली का कृत्रिम आहार देने से यह शीघ्र मोटी हो जाती है। यह कभी भी स्वजातीय-भोजी अथवा माँसभक्षी नहीं होती है। यह अन्य मछलियों के साथ में ही पाली जाती है। इसका अकेले सम्वर्धन अधिक लाभदायक नहीं होता है और यह कली, गुड़हल आदि के गहरे रंग के फूलों को अधिक पसन्द करती है। यह पादप-नियन्त्रण के लिए उपयोग की जा सकती है।

यह मछली तीन वर्ष की अवस्था में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त करती है। एक मादा मछली 1000 से 2000 तक अण्डे देती है। अण्डे 2.3 मि० मी० व्यास के होते हैं। पैतृक पालन-पोषण इस मछली की प्रमुखता है। डॉ० चाको के मतानुसार इसके अण्डे 10 दिन में फूटते हैं, तथा डॉ० कुलकर्णी के मतानुसार 3–4 दिन में फूटते हैं। डॉ० कुलकर्णी का मत ही लगभग स्थापित हो चुका है।

यह अति स्वादिष्ट मछली है, और आज विश्व में मीठे पानी की "सर्वश्रेष्ठ भोज्य मीन" मानी जाती है।

5. **तिलापिया मोसाम्बिका**—यह सिकलिड मीन दक्षिण-अफ्रीका की निवासी है और स्वभावानुसार मीठे और खारे जल दोनों में रहने की क्षमता रखती है। यह मूलतः समुद्री मीन है और भारतवर्ष में इण्डोनेशिया से 1950 के लगभग लायी गयी है। यह सर्वभक्षी, बहुप्रज अभिजनक (प्रोफयूज ब्रीडर) तथा पैतृक पालन-पोषण के स्वभाव की मछली है। यह मछली इल्ली भोजी स्वभाव के कारण मलेरिया जैसी बीमारियों के नियन्त्रण के लिए उपयोग की जा सकती है तथा आप्यका नियन्त्रक के रूप में भी इसकी उपयोगिता मान्य है। चावल के खेतों में पाली जाने के लिए यह विशिष्ट उपयोगी मीन है। यह सर्पशीर्ष मरल तथा अन्य हिंसक मछली संवर्धन में चारा मछली के रूप में प्रयोग की जाती है और टूना मत्स्य ग्रहण में चारे के रूप में प्रयोग की जाती है। केवल तिलापिया से ही संचित जलाशयों में इसकी बहुप्रजता के कारण वर्ष भर में ही विकास क्षीण पड़ना शुरू हो जाता है। अतः विशिष्ट परिमाण वर्ग की निरन्तर प्राप्ति के लिए इसको मरल जाति की मछलियों के साथ, पालना ही लाभदायक पाया गया है। डॉ० सी० व्ही० कुलकर्णी के मतानुसार परिमाण वर्ग के नियन्त्रण के लिए एक लैंगिक सञ्चय भी लाभकारी होता है।

इस मछली की बहुप्रजता के कारण इसके पालन और सम्वर्धन की आज्ञा सारे भारतवर्ष में नहीं दी गयी है। नीति के अनुसार अभी केवल इसे ताप्ती नदी के दक्षिण में दक्षिणी घाटों के दक्षिणी ढलान में ही पाला जा सकता है। साथ ही मद्रास और बम्बई प्रान्त के कुछ स्थिर नियन्त्रित जलाशयों में भी इसके सम्वर्धन की आज्ञा दे दी गयी है।

यह वर्ष भर प्रजनन करती है। इसके प्रजनन की प्रमुखता पैतृक पालन-पोषण की विशिष्टता है। नर-मीन नितल में 35 से० मी० व्यास और 6 से० मी० गहराई का एक गड्ढा तैयार करता है। मादा 75 से 250 अण्डे इस गड्ढे में देती है। तुरन्त बाद ही मादा अण्डों को मुँह में रख लेती है, निषेचन मादा के मुँह में ही होता है। तीन से पाँच दिन के समय में अण्डों से शिशु निकल आते हैं। इल्ली शिशु भी माता के मुँह में ही निवास करते हैं। क्षुद्रमीनावस्था के शिशु भी 10–15 दिन तक आपलित्त-काल में माता के मुँह में ही शरण लेते हैं। इसके अण्डों का व्यास 0.7 मि० मी० होता है। अनुकूल दशाओं में इसकी वृद्धि शीघ्र होती है।

6-7. **सालमो (ट्राउट) प्रजाति**—भारत के पहाड़ी जलों में ट्राउट को लाने और पालने का श्रेय ब्रिटिश अधिकारियों को ही है। रेनबो ट्राउट (सालमो उरीडियस) और भूरा ट्राउट (सालमो ट्रटा) भारत में सन् 1867 ई० में लायी गयी थीं, परन्तु इनके पालन

के प्राथमिक प्रयोग अनुभवहीनता के कारण निष्फल रहे। सन् 1910 ई० में नीलगिरि पहाड़ों के अस्थिर जलों को ट्राउटमत्स्य ग्रहण के लिए तैयार पाया गया था। इन मछलियों ने पहाड़ी जलों में, जो उच्छिष्ट स्थिति में है, भलीभाँति विकास कर लिया है। भारत में ट्राउट का वितरण निम्नांकित रूपों में किया गया है :—

1. ब्राउन-ट्राउट (सा० ट्टा)—

काश्मीर और कुलू-घाटी (पञ्जाब) में यूरोप से लायी गयी थी। आजकल दार्जिलिंग की ऊँचाईयों पर, उत्तर प्रदेश, पञ्जाब और हिमाचल-प्रदेश में स्थापित हो चुकी है। हिमाचल-प्रदेश में इसकी स्थिति उत्तम है।

2. रेनबो-ट्राउट (सा० प्रजाति)—

नीलगिरि, उटकमण्ड में वर्ष 1867 में यह यूरोप से लायी गयी। आजकल पलामी, नीलगिरि की ऊँचाई वाले जलों में, केरल प्रान्त के ऊँचाई पर स्थित जलों में और अन्नमलाई में स्थापित हो चुकी है। नीलगिरि और केरल में इसकी स्थिति उत्तम है।

इसकी उर्वरता कम है और यह सीमित मात्रा में ही अण्डे देती है। अतः इसकी उत्पादन वृद्धि के लिए कृत्रिम बन्द अण्डाज्जन स्थानों को स्थापित करना पड़ा था। ऐसे कुछ स्थान हिमाञ्चल-प्रदेश, काश्मीर, उत्तर-प्रदेश के पहाड़ी स्थान और नीलगिरि की पहाड़ियों पर हैं।

इस मछली का उपयोग केवल बंसी डोरी से आखेट के लिए ही होता है, अतः आजकल इसका उपयोग सीमित ही है। यह केवल सैलानियों और विशेषकर विदेशी सैलानियों के लिए ही उपयोगी है। ट्राउट के मारने की फीस भारत में अपेक्षाकृत न्यूनतम है।

साधारणतः इस मछली का पालन 2000 मीटर की न्यूनतम ऊँचाई पर ही हो सकता है। इसके संरक्षण और समुचित प्राप्ति के लिए बहुत अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। हिन्द प्रशान्तीय देशों में रेनबो ट्राउट की उपयोगिता सीमित ही है। इसके कीट भोजी स्वभाव के कारण, यह गहरे रंगीन चारे से पकड़ी जाती है।

8-9. जन-स्वास्थ्य रक्षक मीन—(गम्बूसिन्या फिनिस तथा लेबिस्टिस रेटीकुलेटस)

ये मछलियाँ जनस्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा भारतवर्ष में पानी से उत्पन्न और मच्छरों द्वारा प्रसारित बीमारियों के नियन्त्रण के लिए लायी गयीं थीं। मलेरिया, फाइलेरिया आदि बीमारियों के जैविकी नियन्त्रण कार्य के लिए उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। गम्बूसिया उत्तरी अमेरिका और लेबिस्टिस दक्षिणी अमेरिका की निवासी है, जहाँ से भारतवर्ष में लायी गयी थीं। लेबिस्टिस का दूसरा नाम बार्बेडोस मिलियन्स भी है। यह नाम इसको बार्बेडोस के निवासी होने और लाखों की संख्या में शिशु उत्पन्न करने की क्षमता के कारण दिया गया है। जल जीवालय प्रबन्धकों द्वारा यह गप्पी के नाम से जानी जाती है। सुन्दर रंग और छोटे शरीर के कारण यह अधिक पसन्द भी की जाती है।

इन मछलियों की प्रजनन-क्षमता बहुत है और ये हर प्रकार के जलवायु और मौसम में प्रजनन करती हैं। इनको संवर्धनी तड़ागों में रखना उचित रहता है, जहाँ इनको प्रजनन की सुविधा रहती है। इनके इल्ली भोजी स्वभाव के कारण मलेरिया–फायलेरिया जैसी जल उत्पादित बीमारियों के जैविकी नियन्त्रण में ये अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं।

10–11 ग्रास–शफर और सिल्वर–शफर––

देश में शीघ्र बढ़ने वाली मछलियों की आवश्यकता, मत्स्य-पालन – तालाबों में अधिक पौधों के नियन्त्रण के लिए तथा अनुभव और प्रयोग के लिए प्रथम बार इन चीनी कार्पों को भारतवर्ष में सितम्बर-दिसम्बर सन् 1959 में केन्द्रीय देशस्थ मत्स्योद्योग अनुसन्धान संस्था द्वारा कटक में लाया गया। ये ग्रास कार्प की 382 फिंगरलिंग तथा सिल्वर-कार्प की 360 फिंगरलिंग क्रमशः हाँगकाँग और टोन नदी जापान से प्राप्त की गयी थीं। ये मछलियाँ कटक के तालावों में दो वर्ष में पर्याप्त बढ़ गयीं और इन्होंने लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर ली। ग्रास-कार्प विशेष रूप से पौधों के आहार करने और शीघ्र बढ़ने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

प्रयोगों के आधार पर यह पता लगा है कि ग्रास–कार्प विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों तथा जलवायु में रह सकती है। यदि इसे पर्याप्ति आहार दिया जाय तो बाढ़ भी सन्तोषजनक होती है। यद्यपि इसका आहार देशी प्रमुख शफर मछलियों से भिन्न है, तथापि इसे पालने में भी कोई कठिनाई नहीं है। यह स्पष्ट हो चुका है कि यदि इसे प्रमुख शफर के साथ पाला जाय तो प्रति हेक्टर उत्पादन बढ़ सकता है। भारतवर्ष में यह एक वर्ष में लगभग दो किलो की हो जाती है। इस मछली द्वारा जलपौधों का नियन्त्रण भी सफलतापूर्वक किया जा सका है। तालाब के क्षेत्रफल के आधार पर इसकी संख्या निर्धारित की जा सकती है।

सिल्वर-कार्प की बाढ़ भी पर्याप्त पायी गयी। प्रति एकड़ में 500 फिंगरलिंग संचय करने के एक वर्ष के बाद यह कम से कम 700 ग्राम की हो जाती है। यह पाया गया है कि हाँगकाँग के अनुपात में भारतवर्ष में यह शीघ्र बढ़ती है। यह प्रमुख रूप से पादप-मन्दप्लवक का आहार करते हैं। इसमें और कतला में कुछ साम्य होने पर भी बहुत भिन्नता है, यह इसके आहार और भोजननली के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है। इन दोनों मछलियों को एक साथ पाल कर भी प्रयोग करके देख लिया गया है। अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिल्वर–कार्प कतला की अपेक्षा ऐसे जलाशयों में शीघ्र बढ़ती है। सिल्वर–कार्प में हड्डी कम होती है और यह अपेक्षाकृत स्वादिष्ट भी होती है, अतः खानेवाले इसे कतला से अधिक पसन्द करते हैं।

इस मत्स्य पर पौषग्रंथि की सुई की रीति से प्रजनन के प्रयोग भी किये गये थे और इसका सफल प्रजनन भी किया जा सका है। इससे यह भी पता लग चुका है कि इसके बीज की समस्या भी नहीं है। अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए इस मत्स्य के सम्बन्ध में प्रयोग किये जा रहे हैं। इसका बीज परीक्षण और प्रयोग के लिए लगभग सभी राज्यों को वितरित किया जा चुका है और हर प्रान्त में इसका अध्ययन वहाँ की परिस्थितियों और जलवायु के आधार पर किया जा रहा है।

त्रिपुरा में सिल्वर-कार्प लगभग स्थापित हो चुकी है। मध्यप्रदेश में ग्रास-कार्प का सफल प्रजनन हो चुका है तथा इसका बीज मत्स्य-पालकों को सुलभ हो गया है।

८

अन्य मछलियों का पालन

देश में प्रमुख-शफर मछली का पालन बहुत विस्तार से होता है, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य मछलियों का पालन भी किया जाता है। अन्य मछलियों के पालन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हो सकते हैं :—

1. क्षेत्र में प्रमुख-शफर का बीज प्रचुरता से उपलब्ध न होना।
2. सम्बन्धित जल-क्षेत्रों में प्रमुख-शफर की उत्तम वृद्धि के लिए उचित परिस्थितियों का न होना।
3. उस क्षेत्र में अन्य मछलियों की बाजार में अधिक माँग का होना।
4. प्रजनन और बीज उत्पादन भी सरलता से हो सकना।

अन्य मछलियों का उत्पादन और प्रजनन भी अन्य आवश्यक कारणों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। कुछ जलाशय ऐसे होते हैं जिनमें, वनस्पतियाँ अधिक होती हैं; उनमें कीट, कृमि तथा चारा-मछली बहुतायत से होती है। प्राकृतिक उपलब्धि के आधार पर, मांसाहारी मछलियों की बाजार में अधिक माँग रहती है। ऐसे क्षेत्रों में शफर-पालन मितव्ययी नहीं हो सकता है। वहाँ पर जलाशय की सफाई और सुधार के बाद भी वाञ्छित परिस्थितियाँ नहीं हो पाती हैं। दूसरी ओर अन्य प्रकार की मछलियों का पालन करने के लिए, प्रजनन और वृद्धि के लिए वही परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं और वहाँ इनमें कम श्रम और व्यय से ही अतिरिक्त लाभ मिलता है। ऐसे तालाब किसी भी क्षेत्र में हों तो उन्हें शफर-संवर्धन के अतिरिक्त अन्य मत्स्यों के पालन के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है, क्योंकि नवीन मत्स्य प्रजाति की सीमित उपलब्धि होने के कारण बाजार में शीघ्र ही खपत हो जायगी। यह भी निश्चित बात है कि सम्भल के पालन में उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है, वाञ्छित परिस्थितियों में इसका पालन मितव्ययी भी होगा।

इसके अतिरिक्त समुद्री किनारों पर और मिश्रित जलक्षेत्रों में शीघ्र बढ़ने वाली ऐसी मछलियाँ मिलती हैं जिनको मीठे पानी अथवा मिश्रित पानी में सफलता से पाला

जा सकता है। परन्तु कुछ ही मछलियाँ व्यापारिक दृष्टि से पालन के लिए चुनी गयी हैं। यहाँ इनका बीज बहुतायत से प्राप्त हो सकता है और सस्ता भी रहता है। शफर-बीज दूरस्थ प्रक्षेत्रों से लाकर डालना मितव्ययी और सरल नहीं होता। ऐसे समुद्री तटों के तालाबों, गड्ढों अथवा निचली भूमि को सुधारकर मछली-पालन के लिए उपयोग किया जा सकता है।

1. सामान्य-शफर––उपरोक्त मछलियों के अतिरिक्त मछली-पालन की दृष्टि से आज-कल सामान्य-शफर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो रही है। अन्य प्रमुख-शफर के साथ यह मछली पाली जा सकती है। इसकी वृद्धि प्रमुख शफर मछली के समान है। कभी-कभी तो यह कतला के समान वृद्धि प्राप्त करती है और एक वर्ष में चार किलो तक बढ़ जाती है। इसकी एक विशेषता यह है कि यह स्थिर-जलों में प्रजनन भी कर लेती हैं और एक बार सञ्चय करने के बाद, स्थापित हो जाने पर, इस मछली को पुनः सञ्चय की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसकी मैदानों में रहने वाली प्रजाति अब लगभग समस्त भारत-वर्ष में वितरित हो चुकी है और सभी अन्तर्देशीय राज्यों में इसके पालन का विस्तार हो रहा है। इसकी पालन और संवर्धन व्यवस्था प्रमुख शफर की ही भाँति है।

2. महाशीर पालन––प्रमुख-शफर के साथ-साथ अतिरिक्त पालन की दृष्टि से महाशीर को भी अब कुछ क्षेत्रों में मान्यता मिलती जा रही है। मध्यप्रदेश में महाशीर को प्रमुख शफर के साथ पालने का कार्य पिछले 12–14 वर्षों से किया जा रहा है। यह मछली प्रमुख शफर को हानि पहुँचाये बिना ही, उसके साथ पाली जाती है। यह अहिंसक स्वभाव की मछली मांसाहारी नहीं है। महाशीर का बीज (फ्राई) हजारों और लाखों की तादाद में नर्मदा नदी से संग्रह किया जाता है, जो अक्टूबर नवम्बर मास से चानोस की ही भाँति आसानी से एकत्र किया जा सकता है। इसके कारण अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होता है इसकी वृद्धि प्रमुख-शफर पालन से कम रहती है। इस सम्बन्ध में विशेष वैज्ञानिक सूचनाएँ अभी भी प्रकाश में आनी बाकी हैं तथा इस क्षेत्र में अभी खोज की जा रही है।

3. गौरामी का पालन–भारत में लाकर पाली जाने वाली यह विदेशी मछली विश्व की सर्वोत्तम भोज्य-मछली के रूप में विख्यात है। यह सुस्वाद मछली है। यह मारिशस से लाकर भारत में तमिलनाडु प्रान्त में सबसे पहले पाली गयी थी और वहाँ से आन्ध्र-प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात में स्थापित हो गयी है। यह मुख्यतः वनस्पति भोजी है और जलपौधों का आहार करती है। ऐसे जलाशयों में जहाँ जलपौधों की बहुतायत हो, इसका पालन अत्यन्त लाभप्रद होता है। लगभग 15 से० मी० का आकार हो जाने पर ये अपनी हिंसक मछली से रक्षा कर सकती हैं। यह प्रमुख-शफर मछलियों से प्रत्यक्ष रूप से भोजन के लिए स्पर्धा नहीं करती है और शफर जलाशयों में इसे अतिरिक्त मछली के रूप

में पाला जाता है। ऐसे जलाशयों में, जहाँ पौधे नहीं होते, इसके प्रजनन की सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से सूखी घास,नारियल की जटा आदि का प्रबन्ध किया जाता है।

इन मछलियों में नर मादा को बाह्य लक्षणों से ही पहचाना जा सकता है नर चमकीले रंग, धाटे पर उठी हुई गाँठ जैसी आकृति और कुछ मोटे होठों के कारण पहचाने जा सकते हैं। मादा इनसे भिन्न होती है, उसके होठ पतले होते हैं इस मछली की प्रजनन क्षमता सीमित है। एक मादा एक हजार से दो हजार तक अण्डे देती है। यह छोटे-छोटे घोसले पानी में बना कर उनमें अण्डे देती है। ये अण्डों की रक्षा उस समय तक करती है, जब तक बच्चे निकल नहीं आते। इन छोटे मछली के बच्चों की रक्षा नर मादा कोई भी नहीं करता है, और हिंसक कीट तथा अन्य बीज उन्हें नष्ट करते हैं। अत: छोटे बच्चों की संख्या सीमित रहती है।

इनकी सर्वाधिक वृद्धि द्वितीय और तृतीय वर्ष के बीच में आँकी गयी है। तृतीय वर्ष के बाद इनकी लम्बाई 35 से० मी० के लगभग तथा भार दो से ढाई किलो तक हो जाता है। एकाकी पालन के लिए यह अनुपयुक्त है।

4. **सर्पशीर्ष मछली (सम्भल जाति) का पालन**–सर्पशीर्ष-मछलियाँ भारत के लगभग सभी क्षेत्रों और प्रान्तों में बहुतायत से पायी जाती हैं। इनकी कुछ प्रजातियाँ बहुत बड़ी हो जाती हैं तथा इनकी माँग भी रहती है। हैदराबाद राज्य, तमिलनाडु, पञ्जाब आदि प्रान्तों में इनका पालन किया जाता रहा है, परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली।

ये मछलियाँ स्वभाव से हिंसक और मीन-भोजी होती हैं। अत: इसके पालन के पूर्व इस बात का निश्चय करना आवश्यक है कि इसको जैविकी आहार विशेषत: चारा मछली बहुतायत से मिल सकेगी। यदि चारा मछली की पर्याप्त व्यवस्था न हो सकी तो ये स्ववंशभोजी हो जायेंगी, जिससे इनकी संख्या की वृद्धि कम हो जायेगी और पालन लाभकारी नहीं रहेगा। जहाँ इन मछलियों का पालन असफल रहा है, वहाँ इस असफलता का मुख्य कारण सम्भवत: चारा मछली का न मिलना ही है। तंजौर शहर में (तमिलनाडु) में यह मछली तिलापिया-मछली के साथ भी पाली जाती है। तिलापिया-मछली इसके लिए चारा मछली के रूप में उपयोग की जाती है। यह मछली बहु प्रजनन और शीघ्र प्रजनन करने वाली है। बची हुई तिलापिया मछली भी बढ़ जाती है और इसकी पर्याप्त वृद्धि देखी गयी है। इन मछलियों के पालन की वैज्ञानिक गवेषणा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। यदि उचित व्यवस्था अपनायी जाय तो इसके पालन में भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

ये मछलियाँ जलाशयों में प्रजनन करती हैं और इनके बच्चों की अधिक खोज नहीं करनी पड़ती है। इनके रंगीन बच्चों के झुण्ड अपनी माँ के संरक्षण में घूमते दिखायी

देते हैं। निषेचित अण्डे एकत्रित करके यह देखा गया है कि प्रयोगशाला की परिस्थितियों में इनकी हानि हो जाती है। अतः 1 से० मी० से 3 से० मी० के बच्चे-मीन एकत्रित कर लेना उचित और मितव्ययी रहता है। ये छोटे कीटों का आहार कर लेते हैं, परन्तु पहले तैयार किये गये संवर्धन जलाशय की इनके लिए भी आवश्यकता है। वहाँ दो मास तक रहने और आँगुलिक अवस्था प्राप्त कर लेने पर इन्हें सञ्चय-जलाशयों में छोड़ना चाहिये।

इनके उत्पादन-जलाशय में छोटी चारा मछली जैसे--रासबोरा, एनाबस, बारबस आदि प्रजातियाँ डाल देनी चाहिये। ये चारा-मछली अप्रैल-जून के बीच प्रजनन कर लेती है और मछली के सञ्चय के समय इनकी संख्या बहुत बढ़ जायगी। इन मछलियों के सञ्चय के लिए चुने हुए जलाशयों में किनारों की घास आदि अन्य पौधे उचित रहते हैं, क्योंकि इनमें कतिपय छोटे-कीट आदि निवास करने लगते हैं तथा अन्य छोटे-कीटादि आकर्षित होते हैं, जिनका सर्पशीर्ष मछली आहार करती है। लगभग 2000–2500 शिशुमीन प्रति हेक्टर की दर से इनका सञ्चय करना उचित रहता है।

इन मछलियों को शफर-मछलियों के साथ कभी नहीं पालना चाहिये, क्योंकि ये अत्यन्त हिंसक स्वभाव की होती हैं। साधारणतः इनकी वृद्धि 60–90 से० मी० तक हो जाती है, यद्यपि प्राकृतिक जलों में पुरानी मछली और बड़ी भी मिल जाती है।

5. चानोस (मिलक फिश पालन)—यह समुद्र में पायी जाने वाली मछली है, तथापि समुद्र से इसका उत्पादन बहुत ही कम होता है। यह जलवायु-अनुकूलन के बाद मिश्रित-जलों और मीठे-पानी में सफलता से पालने योग्य मछली है। इसका पालन भारत में बहुत पुराना है और सबसे पहले सुल्तान हैदरअली ने प्रारम्भ किया था। बाद में तमिल-नाडु आदि प्रान्तों में भी इसका पालन किया जाने लगा। समुद्र के निकट स्थानों में जहाँ शफर-बीज ले जाना अत्यन्त कठिन होता है, यह बड़ी लाभकारी रही है। यह शफर के साथ भी पाली जा सकती है।

यह मछली स्वभाव से वनस्पति भोजी है। इसके बच्चे समुद्र के किनारों पर उथले जलों में बहुतायत से मिलते हैं। छोटे बच्चों का आहार प्लवक है, जिनमें डायएट्मस और आप्यकाएँ मुख्य हैं। हरितनील आप्यकाओं के प्रति इनकी अधिक रुचि है, जो स्थिर जलों में अधिक उत्पन्न हो जाती हैं। इनके लिए उचित आहार-व्यवस्था करने के लिए जलाशयों में खाद दी जाती है, जिसमें प्राणि तथा वनस्पति-आहार की वृद्धि हो जाती है। कृत्रिम आहार के रूप में यह मछलियाँ चावल का आटा, अण्डे की जर्दी इत्यादि खा लेती हैं। बड़े बच्चे और प्रौढ़ मछलियाँ, पादप-प्लवक, घोंघों के शिशु, कीट आदि का आहार करती हैं। इसके पेट में आप्यकाएँ भी बहुत पायी जाती हैं, जिससे इसके चरने की आदत का अनुमान लगाया जाता है। यह मछली हिंसक अथवा स्ववंशभोजी नहीं है।

यह मछली मीठे पानी में प्रजनन नहीं करती है तथा इसके बच्चों के लिए सदा ही प्राकृतिक-स्थलों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह मछली समुद्र में तट के निकट प्रजनन करती है। इसके बच्चे समुद्र के किनारों अथवा सम्बन्धित उथले-जलों में प्रचुरता से तैरते पाये जाते हैं। इनमें 11–13 से० मी० आकार के बच्चे लम्बे, पारदर्शी और ऊपर की ओर उठे मुंह वाले होते हैं। आँखें बड़ी और काली होती है। सीमित जलों में रखने पर स्वस्थ शिशु-मीन घड़ी की दिशा में गोलाकार घूमा करते हैं। इनको एकत्रित करने का समय मार्च से जून मास तक होता है। सम्भवतः इनका एक और प्रजनन होता है, क्योंकि छोटें बच्चे जुलाई से सितम्बर के बीच प्रचुरता से मिलते हैं। पूर्णिमा अथवा अमावस्या के आसपास इनकी संख्या सर्वाधिक मिलती है। इन बच्चों को पकड़ने के लिए 3 मीटर लम्बा, 1.25 मीटर चौड़ा आयताकार कपड़ा, जिसके किनारों पर 3–4 मीटर लम्बी नारियल की रस्सी, जिस पर खजूर के पत्तों के टुकड़े लगे रहते हैं, मुख्य साधन हैं। दो व्यवित कपड़े को पानी की सतह के नीचे पकड़े रहते हैं जबकि अन्य दो व्यक्ति रस्सी को फैला-कर विस्तृत क्षेत्र को घेर लेते हैं। धीरे-धीरे इन रस्सियों को वापस लाया जाता है और इस तरह बीच में घिरी मछलियाँ सीधे कपड़े के ऊपर चली आती हैं जिन्हें कपड़ा उठाकर एकत्रित कर लिया जाता है। यह क्रिया बहुत ही फुर्ती से की जाती है।

इसके बच्चे एकत्र करने के बाद संवर्धन-तालाबों में सञ्चित किये जाते हैं, जो शफर प्रक्षेत्रों के अनुरूप होते हैं। वहाँ से इनका जलवायु-अनुकूलन कर मीठे पानी में स्थानान्तरण कर दिया जाता है। यह क्रिया कुछ घण्टों में पूरी हो जाती है। इस प्रकार की मछलियों को अच्छे उत्पादन वाले जलाशयों में, जहाँ प्रचुर प्लवक उपलब्ध हों, 4000 से5000 मीन शिशु प्रति हेक्टर के हिसाब से सञ्चय किये जाते हैं। इसकी वृद्धि मीठे पानी में और पानी की अपेक्षा अधिक होती है। मिश्रित जलों में 48 से० मी० की तुलना में इसकी वृद्धि मीठे पानी में 70 से० मी० तक होती है। यद्यपि अच्छे जलाशयों में एक वर्ष के अन्त में यह दो किलो तक हो जाती है। सामान्यतः इसका 400 से 500 ग्राम भार सन्तोष-जनक समझा जाता है।

इनका स्वभाव हिंसक न होने के कारण इन्हें शफर के साथ भी पाला जा सकता है। मीठे पानी में प्रजनन न करने की आदत के कारण यह मछली केवल तट के आसपास ही सञ्चय की जाती है, जहाँ इसके बीज प्रचुरता से मिलते हैं और पालन मितव्ययी होता है।

6. **बिडाल-मत्स्य (केट फिश) का पालन**––हिंसक मछलियों जैसे––सिंघी, मागुर, चीतल पंगस आदि मछलियों का पालन भी विशेष परिस्थितियों में किया जा सकता है। यद्यपि अति हिंसक स्वभाव के कारण ,लौंच को पालना अति कठिन है, परन्तु इसकी

सन्तोषजनक वृद्धि पालने के लिए लाभदायक होती है। हिंसक प्रजातियों के सम्बन्ध में अभी वैज्ञानिक अनन्वेषण हो रहे हैं। इनके पालन की नियमित विधि अभी निर्धारित नहीं है। यह निश्चित है कि इनके पालन के लिए शीघ्र बढ़ने वाली अति प्रजनन-शील चारा-मछली प्रथम आवश्यकता है।

अभी तक इनका बीज प्राप्त करना एक समस्या थी। बीज प्राकृतिक स्थलों, तालाबों धान के खेतों, सिंचाई की नहरों और नदियों से प्राप्त किया जाता था। सम्भवतः इस कारण इसका नियमित पालन नहीं किया जाता था। सम्प्रति केन्द्रीय अन्तर्देशीय-मत्स्य-अनुसंधान संस्थान में हो रहे कार्य के अनुसार केट-फिशों को प्रेरित प्रजनन क्रिया द्वारा प्रजनन कराया जा सकता है। अतः इनकी अंगुलिकाएँ और शिशुमीन प्राप्त करना अब समस्या नहीं रह गयी है।

कुछ कार्य कर्त्ताओं ने एनाबस (कोई) मछलियों के पालन की सलाह भी दी है। एनाबस दलदल अथवा कम जल वाले उथले क्षेत्रों में, जहाँ जल पौधों की अधिकता हो, पाली जा सकती है। यह स्वभाव से मुख्यतः कीट-भोजी है तथा इसके पालन के लिये चारा-मछली की आवश्यकता नहीं होती है। इसका पकड़ना आसान नहीं होता, इसके पकड़ने के लिए विशेष व्यवस्था की आवश्यकता होती है। भारत में अभी तक इसका पालन वैज्ञानिक-पद्धति पर नहीं किया गया है।

7. मिश्रित जलों में (ब्रेकिश) मत्स्य-पालन––मिश्रित-जलों में भी मत्स्य-पालन क्षेत्र बनाकर अथवा भेरी निर्माण कर उन जलों में पायी जाने वाली प्रजातियों का पालन किया जाता है (भेरी बंगाल में ऐसे स्थान को कहते हैं–जिसमें मत्स्य––पालक नदी के पास निचले क्षेत्र को चारो ओर मेड़ बाँध कर घेर लेते हैं और ज्वार के पानी के बहाव से भर लेते हैं, उसमें पानी के साथ-साथ मछलियाँ भी भर जाती हैं)। ऐसे मत्स्य-पालन क्षेत्र प्रतिवर्ष किराये पर उठाये जाते हैं। इनसे अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार के प्रचलित मछली-पालन में मछलियों को छाँट कर नहीं पाला जाता तथा उपलब्ध सभी मछलियों का सञ्चय कर लिया जाता है। ये भेरी जिसमें मछलियों का मिश्रित-जलों में पालन होता है, पश्चिमी बंगाल के सुन्दर-वन क्षेत्र में बहुत है। इनको 'भासा-भादा मछली क्षेत्र' भी कहते हैं।

इन क्षेत्रों में मलिना जाति की मछलियाँ, भेटकी, झींगा आदि भी बहुतायत से आ जाती हैं और पाली जाती हैं। इनके साथ-साथ गोबी, विडाल-मत्स्य, पोलीनीया इत्यादि मछलियाँ भी स्वतः ही आ जाती हैं।

बहुधा इस प्रकार के मछली-पालन क्षेत्रों का निर्माण उन स्थानों पर किया जाता है जहाँ पर किसी समय नदी बहती थी और कालान्तर में खाद एकत्र हो जाने से स्थान

भर गया है। यह स्थान खेती के लिए अनुपयोगी होता है। ये क्षेत्र बहुधा ऐसे स्थानों पर बनाये जाते हैं, जहाँ पास में नदी होती है और उस स्थल पर ज्वार-भाटे का न्यून प्रभाव 1·5 मीटर होता है। ऐसे स्थान को प्रतिवर्ष जनवरी में किराये पर उठाया जाता है। अन्तिम बोली लगाने वाले व्यक्ति को अधिकार मिल जाता है। ये व्यक्ति इन क्षेत्रों के बाँधों की मरम्मत तथा पानी आने वाले मार्ग को सुधार कर, उस पर आवश्यक कपाट और स्लूस लगाते हैं। यह स्थान प्रक्षेत्र से कुछ निम्न स्तर पर होता है। यह भी विचारणीय है कि यह स्थान पानी के स्रोत के निकट ही हो। इसके कपाट विशेष प्रकार अथवा V आकार के होते हैं; जो केवल एक ओर ही खुल सकते हैं। इस व्यवस्था से पानी के साथ बहकर आने वाली मछली प्रवेश तो कर सकती है परन्तु बाहर नहीं आ सकती है। आवश्यकता उत्पन्न होने पर बाँध काटकर आपत्तिकाल में पानी लेने के लिए दरवाजा बना लिया जाता है। यहाँ भी कपाट वैसे ही लगाये जाते हैं। इन क्षेत्रों के बाँध लगभग दो मीटर ऊँचे और चार मीटर चौड़े होते हैं। इनकी मिट्टी स्थिर रखने के लिए स्थानीय घास उगा दी जाती है। इन क्षेत्रों की मिट्टी ढीली होती है, जिसमें सिलिका लौह आक्सा-इड, अल्यूमीनियम, कैल्शियम, फास्फोरस आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

हर ज्वार के समय इन क्षेत्रों में पानी भर जाता है, जिसके साथ मलिना पोलीनियम, झींगा, केकडा आदि के बच्चे बहकर आ जाते हैं। यह समय जनवरी से अप्रैल के बीच का होता है। वर्षाकाल में मलिना प्रजातियाँ (म्यूजिल पार्सिया, म्यू. टाडे, मेटको आदि) मछलियाँ घुस जाती हैं। मछली मारने का कार्य सितम्बर से प्रारम्भ होता है और दिसम्बर के अन्त तक सभी मछलियाँ निकाल ली जाती हैं, क्योंकि इसी समय बोलीदार मालिक का अधिकार समाप्त होता है।

केरल आदि समुद्री राज्यों में मिश्रित–जलों के मछली क्षेत्रों में कहीं-कहीं विशेष सञ्चय व्यवस्था कर मलिना प्रजातियों को पाला जाता है और कहीं-कहीं बंगाल की ही भाँति बिना छाँटे मछलियाँ सञ्चित कर दी जाती हैं। ऐसे क्षेत्रों में लगभग 300 किलो प्रति हेक्टर का उत्पादन हो जाता है। अभी तक मिश्रित जलों में मत्स्य-पालन और उसका उत्पादन अधिकांशतः अनुभवाश्रित है।

९

मत्स्य बीज उत्पादन

पाली जाने वाली मछलियों में भारत की प्रमुख–शफर, कतला, रोहू और मिरगल हैं। कहीं-कहीं इनके साथ कालबास, महाशीर और विदेशी मछलियाँ, जैसे सामान्य-शफर, ग्रास-शफर भी पाली जाती हैं। यह भारत में सभी जगह पायी जाती है और बहुतायत से पाली जाती है इस कारण प्रमुख शफर का महत्त्व है। साधारणतः मत्स्य-बीज का तात्पर्य मछलियों की छोटी अवस्था है, जिसे तालाबों में सञ्चय किया जाता है। मत्स्य-बीज को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न अवस्थाओं की परिभाषा समझ लेना उचित होगा।

मत्स्य-बीज—निषेचित अंडों से लेकर वर्ष भर की आयु तक के मछली के बच्चों का सामूहिक अथवा व्यापारिक नाम मत्स्य-बीज है। इनकी अवस्थाएँ निम्न प्रकार हैं :—

स्पान (क्षुद्र मीन)—अंडे से निकले हुए 8 मि० मी० तक के बच्चे को क्षुद्र मीन या स्पान कहा जाता है। इसे जीरा भी कहते हैं। बाजार में स्पान में अण्डे और पीतयुक्त इल्ली मीन भी सम्मिलित कर लिये जाते हैं।

शिशु मीन (फ्राई)—8 मि० मी० से बड़ा और 40 मि० मी० तक की लम्बाई वाला मत्स्य-बीज शिशु-मीन कहलाता है।

आंगुलिकाएँ— 40 मि० मी० से बड़ा मत्स्य-बीज।

आवश्यकता—मत्स्य-बीज की आवश्यकता हर वर्ष करोड़ों की संख्या में होती है। भारत के तालाबों में पाली जानेवाली प्रजातियों की आदत है कि वे सामान्यतः स्थिर जल में प्रजनन नहीं करती हैं। तालाबों में यद्यपि आयु पाकर इनमें लैंगिक परिपक्वता आ जाती है, परन्तु सामान्यतः प्रजनन नहीं होता है। इसलिए प्रतिवर्ष उत्पादन लेने के लिए यह जरूरी है कि मत्स्य-बीज का उत्पादन हर वर्ष किया जाय। फिशसीड कमेटी (1966) के अनुसार वर्ष 1964–65 में 550.59 करोड़ क्षुद्र मीन (स्पान), 165.18

करोड़ शिशु मीन (फ्राई) और 82.59 करोड़ अंगुलिकाओं की आवश्यकता के विपरीत केवल 365. 90 करोड़ क्षुद्र मीन, 21.11 करोड़ शिशु मीन तथा 9.90 करोड़ आंगुलिकाएँ ही उत्पादित हुई थीं। भारत में मत्स्य-बीज की कमी है। यह अनुमान लगाया गया है कि यदि देश के मत्स्य-पालन के लिए उपलब्ध सभी जलक्षेत्रों में मत्स्य-बीज सञ्चय किया जाय तो हमारी कुल आवश्यकता 945.90 करोड़ क्षुद्र मीन, 283.77 करोड़ फ्राई तथा 141.89 करोड़ आंगुलिकाएँ होंगी। हमारा वर्तमान उत्पादन प्रत्येक राज्य में माँग की अपेक्षा कम है। अतः सफल मत्स्य-पालन करने के लिए मत्स्य-बीज की वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

शफर मछलियों की स्वाभाविक प्रजनन आदतें—पाली जानेवाली प्रमुख शफर और विदेशी शफर मछलियों का पैतृक घर नदियाँ हैं। ये बहते पानी की मछलियाँ स्वभावतः नदी और नालों में ही प्रजनन करती हैं। स्थिर और रुके हुए जल में ये साधारणतः प्रजनन नहीं करती हैं। ये मछलियाँ वार्षिक प्रजनक हैं, अर्थात् साल में एक बार ही प्रजनन करती हैं। इन मछलियों का प्रजनन-काल वर्षा ऋतु है। ग्रीष्म काल से ही इनमें लैंगिक परिपक्वता आ जाती है और वर्षा प्रारम्भ होते ही अनुकूल परिस्थितियों में ये प्रजनन कर लेती हैं। नदी-नालों के उथले स्थलों पर ये वहाव के विपरीत चढ़ती हैं और प्रजनन करती हैं।

मत्स्य-प्रजनन और बीज-संग्रह—मत्स्य-प्रजनन यद्यपि नदियों में ही स्वभावतः होता है, परन्तु आवश्यकतानुसार मत्स्य-वैज्ञानिकों ने इन मछलियों के प्रजनन कराने की अन्य विधियाँ भी खोज ली हैं। मत्स्य-प्रजनन और बीज-संग्रह के निम्नलिखित तरीके हैं :—

1. नदी से मत्स्य—बीज संग्रह
2. बाँध प्रजनन—क. बारहमासी बाँध का प्रजनन
ख. मौसमी बाँध का प्रजनन
3. प्रेरित प्रजनन—क. प्रमुख-शफर प्रजनन
ख. सामान्य-शफर प्रजनन

नदी में प्रजनन और नदी से मत्स्य-बीज संग्रह—यह सर्वविदित है कि भारतीय प्रमुख-शफर मछलियाँ नदी में प्रजनन करती हैं। जून मास में वर्षा काल के पूर्व ही नर मादा उभय लिंग की मछलियों में लैंगिक परिपक्वता और प्रजनन की तैयारी भली भाँति देखी जा सकती है। जैसे ही नदियों में वर्षा काल का जल बहुतायत से आने लगता है, नदियों में बाढ़ आ जाती है और आसपास के किनारों की भूमि में पानी भर जाता है, नर मादा मछलियाँ प्राकृतिक आवश्यकता और प्रेरणावश स्वतः ही पास के खेतों में जहाँ उथला होता है प्रजनन करने चली जाती हैं। यहीं पर लैंगिक संसर्ग और अन्य क्रियाओं

के उपरान्त प्रजनन होता है। मछलियों के गहरे पानी से उथले पानी की ओर आवागमन तथा प्रजनन के कारणों के सम्बन्ध में मत्स्य-वैज्ञानिक इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही खोज कर रहे हैं। समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं की बैठकों में भी परिचर्चाएँ की गयीं, परन्तु यह कठिन प्रणाली अभी तक पूरी तरह नहीं जानी जा सकी है। इस पर निरन्तर प्रयोग हो रहे हैं।

प्रजनन के सम्बन्ध में, वैज्ञानिकों के मतानुसार, कई सहगामी कारक एक साथ ही मछली के शरीर पर असर डालते हैं और इसे प्रजनन के लिए प्रेरित करते हैं। इन सहगामी कारकों में से आवश्यक और उत्तरदायी किसी भी एक को नहीं बताया जा सकता है। दुबे एवं तुली महोदय के मतानुसार ये कारण निम्नलिखित हैं :—

1. आविलता या मलिनता।
2. लैंगिक परिपक्वता की सही स्थिति।
3. जल में ओषजन की अधिकता।
4. एक-सा स्थिर तापमान (लगभग 85° डिग्री फा०)।
5. समुअंक 7.2 से 8.5 तक।
6. उथली भूमि।
7. साधारण धीमा बहाव।

इसके अतिरिक्त कतिपय गौण कारण हैं, जिन्हें अलग-अलग कार्यकर्त्ताओं ने महत्त्व दिया है। यह सब कुछ अभी सैद्धान्तिक ही है। प्रजनन के लिए उथली भूमि का पसन्द करना अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। एक-सा स्थिर तापमान और धीमा बहाव अनुकूल कारणों में से है और ये दोनों अवस्थाएँ उथली जगहों में प्राप्त होती हैं। यहाँ पर मछली को इच्छानुसार विचरण की सुविधा होती है, तेज बहाव न होने के कारण कोई अवरोध नहीं होता है और मछली मैथुन-क्रिया का आनन्द ले सकती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर मछली के शिशुओं की हानि होने तथा उनके बह जाने की संभावना कम ही रहती है। ये स्थान शिशु मछली अथवा मत्स्य-बीज के लिए निरापद होते हैं।

यह निश्चित हो जाने पर कि वर्षाकाल में बाढ़ आ जाने पर नदियों में शफर प्रजनन करती हैं और प्रजनन का स्थान किनारे की उथली जगहें हैं, विभिन्न अवस्थाओं में मछली के बच्चे इकट्ठे करना कठिन कार्य है। मछली के बच्चों का संग्रह प्रारम्भ करने के पूर्व सम्भावित प्रजनन स्थल और नदी की मछलियों का अध्ययन, एक आवश्यक कार्य है। जहाँ प्रमुख शफर होगी वहाँ ही उसका बीज मिलेगा। नदी के भौतिक लक्षणों, जैसे किनारा, नितल और बहाव की गति का अध्ययन भी आवश्यक है। इस अध्ययन से संग्रह के तरीके, उचित स्थान का चुनाव इत्यादि कार्यों में सुविधा रहती है। प्रारम्भिक

अध्ययन के बिना सफलता न मिलने की सम्भावनाएँ ही अधिक होती हैं। संग्रह के तरीके और प्रयोग के यन्त्र, स्पान-संग्रह की अवस्था आदि के साथ ही बदलने पड़ते हैं। भारत में नदियों से निम्नांकित अवस्थाओं में संग्रह किया जाता है : —

1. निषेचित अंडे——इनका संग्रह ब्रह्मपुत्र, रिखंो, गोदावरी, कृष्णा, बेतवा, चम्बल, गंगा की सहायक नदियों और महानदियों में किया जाता है।
2. शिशु मीन (फ्राई)——ये पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और मद्रास में संग्रह की जाती हैं।
3. आंगुलिकावस्था——मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु आदि प्रान्तों में इनका संग्रह किया जाता है।

निषेचित अंडों का संग्रह——वास्तविक प्रजनन-स्थल का पता लग जाय तो निषेचित अण्डों का संग्रह बड़ा ही सरल और सुविधाजनक कार्य है। यह संग्रह प्रजनन-स्थल की स्थिति पर भी अवलम्बित है। ऐसे प्रजनन–स्थल सिंचाई के बड़े जलाशयों में भी हो सकते हैं। प्रजनन-स्थल से यह कार्य चौकोर कपड़े अथवा जाली के अंगोछे की सहायता से किया जाता है। उथले प्रजनन-स्थल पर हाथ से थोड़ा पानी हिला देने से अण्डे पानी में तैरते हैं और फिर दो व्यक्ति जाल चलाकर संग्रह कर सकते हैं। इन कपड़ों के अंगोछों की लम्बाई 1.5 मीटर तथा चौड़ाई 0.5 से 0.75 मीटर होती है। अंडों की उपलब्धि और प्रजनन-स्थल के फैलाव के अनुसार इस प्रकार की इकाइयों की संख्या बढ़ायी जा सकती है। अण्डों को प्रजनन के 4–6 घंटे बाद ही एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस प्रकार के संग्रह की विशेषता यह है कि यह कम श्रम, कम धन और कम समय में करोड़ों की संख्या में अण्डे उपलब्ध कर देता है। पानी कम हो जाने पर ये अण्डे गीली भूमि पर पड़े रह जाते हैं, जिन्हें ऊपर से पानी डालकर पहले से लगाये हुए कपड़े पर बहाकर इकट्ठा कर लिया जाता है। ये अण्डे बहुत ही कोतल होते हैं, अतः इन्हें हाथ से न छूकर, आवश्यकता होने पर, किसी पर, पंख इत्यादि से ही हटाना चाहिये। प्रजनन-स्थलों की खोज मध्यप्रदेश में बहुत हुई है, जहाँ बहुतायत से ऐसे स्थलों से अण्डों का संग्रह किया जाता है।

असम तथा बंगाल में जहाँ प्रजनन-स्थलों पर पहुँचना सम्भव नहीं है, अंडो का संग्रह नाव से किया जाता है। अंडे पानी के साथ बहकर नदी में आ जाते हैं और किनारे-किनारे बहते रहते हैं। स्थानीय लोगों का यह मौसमी धंधा है। मौसम प्रारम्भ होने पर ये लोग पहले परीक्षण-जाल लगा देते हैं। ये लोग अनुभव के आधार पर अण्डों की संख्या के अनुमान से उचित समय का पता लगा लेते हैं तथा उचित समय पर पूर्ण श्रम और साधन से अण्डे एकत्र कर लेते हैं। साधारणतः संग्रह मच्छरदानी की जाली के 11-12 मीटर लम्बे

और 2.7 मीटर चौड़े टुकड़े से किया जाता है। इसकी मजबूती के लिए किनारे पर रस्सी लगा दी जाती है। इन टुकड़ों के दोनों किनारों पर बाँस बाँध दिया जाता है। किनारे पर बँधी नाव के एक सिरे पर एक और दूसरे सिरे पर दूसरे आदमी द्वारा यह कपड़ा पानी में लटका दिया जाता है। जाल को और अधिक मजबूत करने की दृष्टि से नाव में भी कुंडों से बाँस फँसा दिये जाते हैं। दो मनुष्यों की सहायता से यह जाल नाव के पीछे सावधानी से उतारा जाता है। जो लोग नाव की व्यवस्था नहीं कर सकते वे लोग छाती और कंधों तक गहरे पानी में स्वयं खड़े रहते हैं और जाल को पकड़े रहते हैं। कुछ लोग एक बाँस गाड़कर नदी में एक ओर जाल बाँध देते हैं और दूसरी ओर स्वयं पकड़ कर खड़े हो जाते हैं। पानी के बहाव के कारण जाल में पीछे की ओर झोली सी बन जाती है और उसी में अण्डे इकट्ठे हो जाते हैं। जब समुचित मात्रा में अण्डों का संग्रह हो जाता है, तब अण्डे निकाल लिये जाते हैं।

एकत्र अण्डे जाल में से नाव में रख लिये जाते हैं। नाव में अण्डों की अधिकता और पानी की कमी के कारण हानि भी हो सकती है, कुछ अण्डे फूट भी जाते हैं। इस प्रकार अण्डों की हानि अधिक हो जाती है। अनुभवी और कुशल व्यक्ति नदी में बाँसों की सहायता से लटके हुए जालों में अण्डों को एकत्र कर इस प्रकार की हानि बचा लेते हैं। नदी के पानी के कारण अण्डों के विकास में भी सुविधा मिलती है तथा 4–5 घण्टों के बाद ये हापों में डाल दिये जाते हैं। इस क्रिया द्वारा उत्पन्न शिशु स्वस्थ होते हैं।

अण्डों के लिए यदि बंगाल, बिहार में प्रयुक्त क्षुद्र मीन इकट्ठे करने वाले जाल और अन्य उपकरण प्रयोग में लाये जायँ तो संग्रह मितव्ययी हो सकता है। संग्रह स्थल पर नदी में विभिन्न गहराइयों में बाँस पहले से ही गाड़ दिये जाते हैं। वर्तमान में उपयोग किये जाने वाले चौकोर कपड़े के स्थान पर सूँड़ के आकार के लंबे मच्छरदानी की जाली के बने जाल, जिनकी पूँछ का हिस्सा बड़ा होता है, उचित और कम खर्चीले होंगे। इस प्रकार के 5 जालों को नाव की सहायता से केवल एक ही व्यक्ति सँभाल सकता है।

इस प्रकार के अण्डों का संग्रह सही समय पर केवल कुछ घंटों और नदी में कुछ दिनों तक ही सम्भव होता है। मितव्ययिता, समय के अनुपात में संग्रह की मात्रा और प्रजातियों की दृष्टि से यह संग्रह उत्तम रहता है।

अण्डौध-जनन (हेचिंग)––शफर के अण्डों का अण्डौथ-जनन हापों में किया जाता है। हापों का आकार स्थान-स्थान पर कार्यकर्त्ताओं की सुविधानुसार बदलता रहता है। हापे कपड़े के चौकोर टब जैसे होते हैं। कहीं-कहीं जहाँ पुरानी प्रथा अभी भी चालू है, जमीन के गढ़े खोदकर हापे बनाये जाते हैं।

कपड़े के हापे दुहरे होते हैं। बाहरी हापा मलमल या मारकीन का बना होता है

तथा बाहरी हापे से माप में छोटा भीतरी हापा मच्छरदानी की जाली से बना होता है। इन्हें बाँसों की सहायता से उथले पानी में इस प्रकार लगा दिया जाता है कि 3/4 भाग पानी में डुबा रहे। अण्डों को हापे में इस प्रकार बिछा दिया जाता है कि वे केवल एक ही सतह में रहें वरना उनके नष्ट होने की सम्भावना हो जाती है। एकत्र करने के पश्चात् अण्डे 6 से 20 घण्टे में फूट जाते हैं और इल्ली मलमल के हापे में निकल कर बाहर आ जाती हैं। जाली के हापे में केवल अण्डों की खोलें तथा अन्य कचरा रह जाता है जिन्हें निकाल लिया जाता है। मछली की इल्ली हापे में 2 दिन रखी जाती हैं, बाद में इन्हें साफ पानी में रख लिया जाता है। अण्डा-जनन की सफलता के लिए साफ पानी और धीमा बहाव आवश्यक है। अण्डे अधिक डाल देने पर पूरे अण्डे फूट नहीं पाते तथा इल्ली भी वांछित संख्या में प्राप्त नहीं हो पातीं। बाहरी हापों से इल्ली को संवर्धन तालाबों में डाल दिया जाता है।

हापों के मूल्य की दृष्टि से ये मितव्ययी नहीं होते। तीन दिवस तक एक बार पानी में लगा देने के बाद हापा दूसरी बार मुश्किल से उपयोग हो पाता है। अतः मध्य प्रदेश में सीमेण्ट की हैचरी का निर्माण किया गया है। इनका विस्तृत विवरण अन्यत्र प्रक्षेत्र-निर्माण के सन्दर्भ में दिया गया है।

स्पान-संग्रह

साधारणतः इस प्रकार के संग्रह से प्राप्त अवस्थाओं को जीरा अथवा स्पान (क्षुद्र मीन) कहते हैं। वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार निषेचित अण्डे और संलग्न कुछ अण्डौघ ही उसमें आते हैं।

उन स्थानों पर जहाँ मछली के प्रजनन-स्थल स्थित हैं और जहाँ से अण्डों का संग्रह किया जाता है, यदि प्रजनन के 26 से 30 घण्टे उपरान्त बचे हुए पानी के गढ़ों में तलाश किया जाय तो क्षुद्र मीन वृहत् संख्या में इकट्ठे किये जा सकते हैं। परन्तु साधारणतः इनको नदी की धारा से ही इकट्ठा किया जाता है। स्पान-संग्रह के स्थानों का चुनाव और वांछित जीरा प्राप्त होने का समय स्थानीय मछुओं के अनुभव से प्राप्त सूचना तथा एक दो वर्ष के अनुभव पर तय किया जाता है। इस ओर वैज्ञानिक पद्धति पर कार्य किया गया है और केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसन्धान संस्थान ने कुछ अभिस्ताव भी किये हैं। साधारणतः क्षुद्र मीन-संग्रह नदी के किनारों की ओर उथले स्थानों पर, जहाँ पानी की धारा शिथिल होती है, किया जाता है। यह स्थान तलरूप स्थिति के अनुसार समय-समय पर बदलते रहते हैं। जीरा-संग्रह का समय साधारणतः असम की नदियों में मई से प्रारम्भ होता है तथा गंगा और सहायक नदियों में जुलाई मास से प्रारम्भ होता है।

इस संग्रह में उपयोग होने वाला जाल साधारण कपड़े का तथा सूँड़ के आकार का

होता है। इसे बेहुण्डी अथवा बेंची कहा जाता है। इसका आगे का मुँह बड़ा और गोल होता है और पिछला मुँह छोटा होता है। कहीं-कहीं पर एकत्र करने की मात्रा को बढ़ाने के लिए मुँह के दोनों ओर दो कपड़े लगा दिये जाते हैं। जाल के पीछे की ओर एक गमछा भी लगाया जाता है। मुख्य जाल 4.5 से 7 मीटर तक लम्बा होता है। इसके बड़े मुंह की परिधि 8 से 10 मीटर तक होती है। पीछे के हिस्से में 200 मि० मी० व्यास का बाँस अथवा बेंत का गोला बाँध दिया जाता है। मुँह को पतली रस्सी के सहारे मजबूत और स्थिर बना दिया जाता है। गमछा एक पतले कपड़े का 1.5 मीटर लम्बा और 1 मीटर चौड़े टुकड़े से चौकोर अथवा तिकोना जाल बना दिया जाता है। इसमें डोरी भी लगी होती है, इसे मुख्य जाल के पीछे के हिस्से से बाँध दिया जाता है।

नदी के 1 से 3 मीटर गहरे स्थानों पर पानी में 5–5 बाँसों की सहायता से किनारे से लम्ब कोण पर बहाव की ओर मुँह करके स्थित कर दिया जाता है। पहले 2 बाँस 2.5 से 3.5 मीटर की दूरी पर लगाये जाते हैं और इनसे जाल का मुँह बाँधा जाता है। इन बाँसों के 5–6 मीटर पीछे दूसरे दो बाँस लगाये जाते हैं, जो 20–25 से० मी० दूर लगाये जाते हैं तथा इनसे पीछे का हिस्सा बाँध दिया जाता है। इस प्रकार बेहुण्डी जाल बाँध कर स्थिर कर दिया जाता है। साधारणत: एक स्थान पर 7 से 12 मछुओं के एक समूह द्वारा 15 से 25 बेहुण्डी जाल लगाये जाते हैं। परन्तु जालों की लम्बाई, चौड़ाई, आकार और कपड़े की किस्म स्थान-स्थान पर बदलती रहती है। यह स्थान-स्थान पर नदी के विभिन्न क्षेत्रों पर भी बदल सकता है। ये परिवर्तन स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार की जाती हैं। कुछ स्थानों पर सूँड के पीछे का हिस्सा बन्द भी रहता है।

जीरा जो पानी के साथ बहकर आता है जाल के गमछे में आकर एकत्र हो जाता है। दो मछुए नाव में एक जाल से दूसरे जाल तक हर आधे एक घण्टा बाद गमछे से जीरा निकालते रहते हैं और जीरा बाहर ले आते हैं। यदि जीरा अधिक मात्रा में प्राप्त हो तो निकालने का समय शीघ्र कर दिया जाता है। स्पान को कभी भी गमछे में अधिक समय तक नहीं रहने दिया जाता है। गमछे में एकत्र स्पान को एक कोने में इकट्ठा करके उसे छोटी-छोटी कटोरियों की सहायता से निकाल दिया जाता है। एक साधारण छलनी की सहायता से ये जीरा स्वच्छ किया जाता है और अवांछित मछलियों के अण्डे, बच्चे, मिट्टी, कचरा आदि वस्तुएँ अलग कर दी जाती हैं। यह छलनी लकड़ी और लोहे की जाली या बाँस की बनी होती है। साधारणत: एक जीरा-संग्रह जाल 15 बाटी (बाटी बंगाल प्रान्त में प्रचलित कटोरी का माप है, जिसमें 20,000 से 50,000 तक जीरा आता है) जीरा एकत्र कर लेता है। यह जीरा पहले मिट्टी के मटकों में रख दिया जाता है। यहाँ से

यह बड़े हापों में या संग्रह-स्थानों में डाल दिया जाता है। संग्रह-जाल जिसमें जीरा रखा जाता है 2 मीटर लंबा, 1.25 मी० चौड़ा तथा 0.5 मीटर ऊँचा होता है। यह पानी में इस भाँति लगाया जाता है, जिससे यह पानी की सतह से कुछ सेण्टीमीटर ऊपर रहे। इस अस्थायी जीरा रखने के स्थान पर भी कभी-कभी जीरा बढ़ जाता है।

जब मछली प्रजनन के लिए नालों में जाती है और क्षुद्रमीन अथवा शिशुमीन मुख्य धारा में लौट नहीं पाते हैं, ऐसे स्थानों पर भी सूँड के आकार के बन्द मुँह वाले जालों से बीज इकट्ठा किया जा सकता है।

जीरा इकट्ठा करने के स्थान से मत्स्य-बीज बाजार में बेचने हेतु अथवा संवर्धन हेतु प्रक्षेत्र में भेज दिया जाता है। बंगाल में जहाँ स्पान (क्षुद्रमीन) का व्यापार होता है, इन्हें मटकों में बाजार ले जाया जाता है। 35 से 45 लिटर क्षमता वाले मिट्टी के एक मटके में 50 से 75 हजार तक 4–5 मिलीमीटर आकार की क्षुद्रमीन रखकर बहँगी से निकटतम रेलवे स्टेशन ले जाया जाता है। इन मटकों में 75 से 100 ग्राम तक लाल मिट्टी मिला दी जाती है, जो सम्भवतः प्रत्यारोधक का कार्य करती है। चलने पर बहँगी में निरंतर पानी हिलता रहता है, जिससे पानी में अतिरिक्त ओषजन घुलती रहती है और कार्बन-डाय-आक्साइड निकलती रहती है। जीरा के स्थानान्तर के लिए रेल में विशेष डब्बों का प्रबन्ध रहता है। जीरा पकड़नेवालों का प्रमुख जीरा लेकर बाजार तक जाता है।

एक व्यक्ति साधारणतः दस घण्टे की यात्रा में 20–25 मटकों की देखभाल करता रहता है। जीरा बाजार में आढ़तियों के माध्यम से बेच दिया जाता है। जीरा बाजार में आने पर चौड़े मुँह के गमलों में रखा जाता है। यह 70 से 90 लिटर क्षमता के होते हैं और इनमें नदी का जल भरा रहता है। इन गमलों में भी 150 से 200 ग्राम लाल मिट्टी मिला दी जाती है, जो 15 मिनट के भीतर ही मरे हुए जीरे के साथ तली में बैठ जाती है। इस प्रकार मृत जीरा, जो सड़न पैदा कर हानिकारक हो सकते हैं, अलग कर दिये जाते हैं।

मटकों और गमलों में जो मिट्टी मिलायी जाती है उसका समुअंक 8 और 9 के बीच रहता है। यह प्रत्यारोधक का कार्य करता है और पानी का समुअंक रिक्त रखता है। श्री बसु (1951) ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह मत निर्धारित किया है कि यह मिट्टी मरे हुए क्षुद्रमीनों को एकत्र करने की दृष्टि से मिलायी जाती है। मिट्टी श्लेष्मीय तथा धन प्रभारयुक्त होती है। अतः ऋण प्रभारयुक्त मृत-स्पान तल की ओर आकर्षित होते हैं और इस प्रकार जीवित क्षुद्रमीनों से अलग हो जाते हैं। यह बाद में तल पर इकट्ठी होने वाली मिट्टी में दब जाते हैं और मटके का प्रांगारिक कलुषीकरण (आर्गेनिक पोल्यूशन) केवल नीचे की मिट्टी तक ही सीमित रहता है।

विक्रय के समय गमलों में से क्षुद्रमीन कपड़े में डाल दिये जाते हैं। पानी निकल जाने

पर, इन्हें कटोरी से नापा जाता है। ये कटोरी माप 'वाटी' कहलाते हैं। पहले आनेवाला जीरा, तरुण मछलियों की उत्पत्ति समझा जाता है और इसका मूल्य अधिक होता है।

अन्य संग्रह

वार, बाँध और एनीकटों के निकट, आधार के नीचे, एकत्रित पानी में साधारण बहाव होने के कारण आंगुलिक अवस्था में मत्स्य-बीज इकट्ठे हो जाते हैं। कुछ बड़ी संख्या में प्राप्य इस मत्स्य-बीज को गोल जाल या प्रवर्दी-जाल से एकत्रित कर लिया जाता है। स्पान की आवश्यकता और सुविधा की दृष्टि से, अन्य जाल भी उपयोग किये जा सकते हैं। इस प्रकार से संग्रह दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बंगाल और तमिलनाडु में होते हैं।

नर्मदा रोहू (ले० फिम्ब्रिएटस), सिरिहिना सिरोसा, कावेरी शफर (ले० कोन्टि-यस), कर्नाटक शफर (वार्वस कर्नाटिकस) आदि के बच्चे तमिलनाड़ु, आन्ध्रप्रदेश आदि प्रान्तों में मुख्य नदी के सम्बन्धित तालाबों, धान के खेत और सिंचाई की नहरों से संग्रह किये जाते हैं।

नदी से एकत्र बीज बड़ी अवस्था प्राप्त होने पर ही सरलता से पहचाना जाता है और केवल वाञ्छित जातियों का बीज ही प्राप्त किया जाता है।

मौसमी बाँध (ड्रायबन्ध) प्रजनन

छोटे-छोटे मौसमी-बाँधों में शफर-प्रजनन कराकर मत्स्य-बीज प्राप्त करना बंगाल के मिदनापुर, वाँकुरा और चटगाँव में बहुत पहले से ही प्रचलित रहा है। बंगाल के पश्चात् मध्यप्रदेश में ही प्रजनन के प्रथम सफल प्रयोग हुए तथा वहाँ इस प्रणाली को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया। अब तो अधिकांश आन्तरस्थलीय मत्स्य-पालन वाले राज्यों में मौसमी-बाँध में प्रजनन सफलता से प्रारम्भ किया जा चुका है। इस प्रणाली की विशेषता यह है: —

1. इसके द्वारा वाञ्छित मछलियों को ही प्रजनन कराकर शुद्ध बीज प्राप्त किया जा सकता है।
2. एक मौसम में अनेक बार, नये प्रजनक-जोड़ों से प्रजनन कराकर अधिक मत्स्य-बीज प्राप्त किया जा सकता है।
3. इस प्रकार से बीज पैदा करना मितव्ययी है। इसकी लागत श्री दुबे के अनुसार लगभग 63.50 रुपये प्रति लाख है। अध्याय 19 में इसका विवरण दिया गया है।
4. इच्छानुसार किसी एक प्रजाति का बीज भी प्राप्त किया जा सकता है।

मछली के प्रजनन के लिए उपयोग में लाये जाने वाले मौसमी तालाबों को शुष्क-बाँध, सूखा-बाँध या ड्रायबन्ध कहते हैं। ये वास्तव में जलग्रहण क्षेत्र से पानी इकट्ठा

करने के लिए बनाये गये साधारण जलाशय ही हैं। साधारणतः ये ऐसे स्थानों पर उचित रहते हैं, जहाँ की भूमि कंकरीली ((एल्यूवियल) हो और बरसात का पानी शीघ्रता से इकट्ठा हो सकता हो। किसी छोटी पहाड़ी के नीचे होना उत्तम है। वैसे मध्यप्रदेश में बाँध सभी प्रकार के स्थानों पर स्थापित किये जा चुके हैं। इन बाँधों का आकार स्थिति विशेष पर अवलम्बित रहता है। ये छोटे अथवा बहुत बड़े भी हो सकते हैं। ये बाँध कम से कम 25 : 1 के अनुपात से जल-सञ्चयन की क्षमता के बनाये जाते हैं। ये बाँध निचले स्थानों, छोटी घाटियों या नीची भूमि पर (स्थित धान के खेतों में) बनाये जाते हैं, जिनमें बृहत् जलग्रहण क्षेत्र से पानी इकट्ठा होता है। भूमि पर तीन तरफ से बाँध डालकर रोक लगा दी जाती है। तालाब का तल सपाट होता है। बाँध के पास भीतर की ओर एक आयताकार गड्ढा बना दिया जाता है जिसमें पहली वर्षा का जल इकट्ठा होता है और इसमें प्रजनक डाले जा सकते हैं। प्रजनन स्थान पर घास का उगाना उचित माना जाता है, इससे भूमिक्षरण नहीं होता और अण्डे इकट्ठे करते समय पानी गँदला भी नहीं होता है। वैज्ञानिकों के मतानुसार यह घास, सहवास के समय मछली के पेट से रगड़ती है और इसका उद्दीपक प्रभाव होता है। कहीं-कहीं यदि जलग्रहण -क्षेत्र विस्तृत होता है, तो बाँध के ऊपर एक दूसरी दीवार बनाकर पानी को रोक दिया जाता है। प्रजनन-स्थल इसके पास ही होता है, और उचित समय पर इस दीवार को काटकर प्रजनन-बाँध में पानी का बहाव पैदा कर प्रजनन कराया जा सकता है।

प्रजनन-तालाब के पास ही प्रजनकों (लैंगिक परिपक्वता प्राप्त मछली) को रखने के लिए पृथक् से तालाब होना उचित है। सामान्यतः 1.5 मीटर गहरा 3000 वर्ग मीटर का तालाब उपयोगी हो सकता है। यह तालाब गर्मी में भी पानी से भरा रहे इस प्रकार की व्यवस्था होनी आवश्यक है। इस प्रकार प्रौढ़-प्रजनक, प्रजनन से पहले ही प्रजनन-तालाब के पास तैयार रखने में सुविधा होती है।

ड्रायबन्ध या मौसमी बाँधों में पहली वर्षा के इकट्ठे हुए पानी में ही प्रजनक इकट्ठे कर दिये जाते हैं। पानी के निकास पर मछलियों को रोकने की व्यवस्था कर दी जाती है। बंगाल में तो बाँस की टटियाँ लगा दी जाती हैं। मध्यप्रदेश के बाँधों में ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी।

इस प्रकार के प्रजनन के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता, तैयार नर-मादा मछलियों की है। एक मादा के साथ दो नर के अनुपात में प्रजनक इकट्ठे कर रख लेना अच्छा होता है। साधारणतः 0·5 हेक्टर के प्रजनन-बाँध में दो सौ मादा और उसी वजन के दुगने नर एक साथ प्रजनन के लिए छोड़े जा सकते हैं। बाँधों में पानी के बढ़ने और उथले स्थल डूबने पर मछली प्रजनन करना प्रारम्भ कर देती है।

बाँधों में प्रजनन के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। दोपहर, मध्यरात्रि तथा अन्य सभी कालों में प्रजनन देखा गया है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि प्रजनन पूर्णिमा और अमावस्या के निकट होता है, परन्तु डॉ० दुबे एवं श्री तुली (61) ने इस बात का खण्डन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि चन्द्रमा की स्थिति का प्रजनन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

इन बाँधों से अण्डे सामान्य विधि से ही इकट्ठे किये जाते हैं। बचे हुए अण्डे बाँध में ही फूटकर बच्चे बना देते हैं। यदि परिपक्व प्रजनक उपलब्ध हों, तो एक ही मौसम में तीन चार बार तक प्रजनन कराया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मध्यप्रदेश में डॉ० दुबे के निर्देशन में 'मध्यप्रदेश में मछली-प्रजनन' पर एक वृत्त-चित्र भी बनाया जा चुका है।

भारत सरकार द्वारा फिश सीड कमेटी (सन् 1966) ने अपने प्रतिवेदन में इस तरीके को देश भर में सबसे अच्छा तरीका माना है और मध्यप्रदेश के तरीके से बाँध बनाने के लिए अन्य राज्यों को भी सुझाव दिया है। अतः अन्य राज्यों में इस दिशा में काफी कार्य हो रहा है। अभी तक ऐसे मौसमी बाँध में प्रजनन की क्रियाएँ बंगाल और मध्यप्रदेश के अतिरिक्त मद्रास, बम्बई, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में भी स्थापित की जा चुकी हैं।

बारहमासी बाँधों में शफर-प्रजनन

मध्यप्रदेश में किये गये अध्ययन से पता चला है कि जलवायु अनुकूल होने पर सभी सिञ्चित जलाशयों में शफर प्रजनन करने लगती है। ऐसे जलाशयों में सही प्रजनन-स्थलों का पता लगाकर उनसे अच्छी मात्रा में बीज इकट्ठा किया जा सकता है। ऐसे तालाबों में जहाँ बारह मास पानी रहता है, और परिपक्व मछलियाँ हैं, वर्षा के पूर्व जाल डालकर यह जाँच कर ली जाती है कि परिपक्व मछली उचित अनुपात में उपलब्ध है।

सिंचाई के बड़े जलाशयों में जलग्रहण-क्षेत्र के विस्तार और जल की अधिकता के कारण वर्षा होने पर बाँध जैसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है, जिससे उद्दीप्त होकर मछलियाँ प्रजनन कर लेती हैं। बहुत से जलाशयों के प्रजनन-स्थलों का पता लगाकर, वहाँ से मछली-बीज इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकार के सिंचाई के जलाशयों में मत्स्य-प्रजनन का निश्चय हो जाने पर जलाशयों में संरक्षण व्यवस्था और नियन्त्रित मछली निकालने की नियमित विधि अपनाकर जलाशय में बार-बार सञ्चय से मुक्ति मिल जाती है और मत्स्य-उत्पादन मितव्ययी तथा सरल बन जाता है।

सिंचाई के जलाशयों से अण्डे और जीरा तो इकट्ठा किया ही जाता है, परन्तु कहीं-

कहीं जहाँ उचित स्थल मिल जाते हों और परिवहन की सुविधा हो, शिशुमीन और आंगुलिकाएँ भी इकट्ठी की जाती हैं।

प्रेरित-प्रजनन

देश में आन्तरस्थलीय मत्स्य-पालन के विकास के कारण मत्स्य-बीज की माँग निरन्तर बढ़ रही है। देश की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए देश के मत्स्य-वैज्ञानिकों ने नवीन तरीके खोजने का प्रयास किया है। डॉ० हीरालाल चौधरी ने केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसन्धान संस्थान, कटक केन्द्र पर प्रयोग कर यह स्थापित कर दिया कि परिपक्व मछलियों को पौषग्रंथि (पिट्यूटरी) की सुई द्वारा उद्दीपन प्रदान कर, बँधे जल में भी प्रजनन कराया जा सकता है। इस कृत्रिम साधन में छोटे से हापे अथवा सीमेण्ट के तालाबों में सुई लगाकर उत्तेजित की गयी परिपक्व मछली का प्रजनन कराया जा सकता है और मछली के बच्चे तैयार किये जा सकते हैं। सम्प्रति इस क्रिया का प्रसार प्रशिक्षण द्वारा सारे देश में हो गया है।

इस विषय को विस्तार से जानने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि पौषग्रंथि का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा लैंगिक परिपक्वता और प्रजनन में इसका क्या महत्त्व है। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि प्रमुख-शफर नदी में प्रजनन करती हैं और वहाँ नैसर्गिक तथा जलवायु के विशेष कारणों द्वारा पौषग्रंथि को उत्तेजना मिलती है, जो प्रजनन में सहायता करती है। यदि इस ग्रंथि को किसी अन्य साधन से उत्तेजित किया जा सके तो सम्भवतः मछली कहीं भी प्रजनन कर सकती है। शरीर के भीतर पौषग्रंथि विशेष प्रकार के न्यासर्ग की उत्पत्ति करती है और यह न्यासर्ग लैंगिक उत्तेजना उत्पन्न कर मछली को प्रजनन के लिए तैयार करता है। यह ग्रंथि मस्तिष्क में रहती है तथा लगभग छः प्रकार के न्यासर्ग (हारमोन) उत्पन्न करती है जिनके विभिन्न प्रभाव शारीरिक क्रियाओं पर पड़ते हैं। यद्यपि ग्रंथि चार भागों में विभाजित होती है तथा प्रत्येक हिस्से का विशेष महत्त्व है, इसके छोटे आकार के कारण,सम्पूर्ण ग्रंथि का उपयोग ही प्रयोगों में किया जाता है। यदि पौषग्रंथि के न्यासर्ग के घोल की सुई परिपक्व मछली को लगा दी जाय तो इसका उत्तेजक प्रभाव पड़ता है और मछली किसी भी स्थान पर प्रजनन करने को तत्पर हो जाती है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस पौषग्रंथि की सुई का प्रभाव तभी पड़ेगा, जब मछली पाँचवीं या छठी परिपक्वावस्था में हो और सुई भी परिपक्व मछली की पौष-ग्रंथि से तैयार की जाय। सुई तैयार करने के लिए लिंग विशेष का कोई महत्त्व नहीं है। मादा की ग्रंथि की सुई नर को तथा इसके विपरीत भी सुई लगा दी जा सकती है। यह अनुभव किया गया है कि परिपक्वताप्राप्त मछली तथा पौषग्रंथि की जातीय निकटता

से शीघ्र सफलता मिलती है। जाति की दूरी से वाञ्छित पल पाने में संदिग्धता रहती है। पौषग्रंथि सदा ताजी और परिपक्व मछली से निकाली जानी चाहिये।

पौषग्रंथि मस्तिष्क के नीचे एक अस्थि-आवरण में रहती है और सुई तैयार करने के लिए वहाँ से निकालना पड़ता है। अभी तक बाजार में तैयार निश्चित मात्रा की सुई बिकने नहीं आती है। सुई तैयार करने के लिए, ग्रंथियों को इकट्ठा करके रखने के परि-रक्षण की तीन विधियाँ हैं :—

1. पौषग्रंथि को निकालने के उपरान्त तुरन्त ही एसीटोन में रख देते हैं। एसीटोन में वसा-निवारक तथा जल-निवारक गुण होते हैं। समयावधि से दो-तीन बार एसीटोन बदलने के उपरान्त ग्रंथि को एक रंगीन शीशी में 50° डिग्री फा० पर 2-3 दिन रखा जाता है। इसके बाद सामान्य तापमान पर पावपत्र (फिल्टर पेपर) में दबाकर, घंटाकलश (बेलजार) में 24 घंटे तक रखने के बाद सूखी हुई पौषग्रंथि एक स्वच्छ रंगीन शीशी में रखकव शीशी-शोषित्र में रख देनी चाहिये। पौषग्रंथि के न्यासर्ग का नाश 70° डिग्री फा० या अधिक तापमान में हो जाता है।

2. इस विधि में पौषग्रंथि को परिशुद्ध सुषव (एब्सोल्यूट अलकोहल) में रंगीन शीशी में रख दिया जाता है। इस शीशी को चूर्णातु नीरेय-युक्त शोषित्र में रखकर प्रशी-तक में रख दिया जाता है। सुई तैयार करने के पूर्व इसे निकालकर पावपत्र में सुखा लिया जाता है। वर्षाकाल में परिशुद्ध सुषव को समय-समय पर बदलते रहना चाहिये, जिससे कि उसकी शक्ति न घट जाय। परिरक्षण की यह विधि सरल और भारतीय परि-स्थितियों के अनुकूल है।

3. जिन स्थानों पर द्रुत श्यान (क्विक फ्रीजिंग) की व्यवस्था उपलब्ध है, वहाँ पर निकालने के तुरन्त बाद ही पौषग्रंथि का निश्चलीकरण कर दिया जाता है तथा तद-नन्तर शीतसंग्रहागार में रख दिया जाता है।

उच्च तापमान में गर्मी के कारण न्यासर्ग की हानि हो जाती है, अतः सदैव ही पौष-ग्रंथि शीतल स्थानों में संग्रह की जाती है।

पौषग्रंथि का भार, मछली के भार पर ही आधारित रहता है। बड़ी मछली में बड़ी पौषग्रंथि निकलती है। पौषग्रंथि की सुई भार के आधार पर लगायी जाती है। अतः यह आवश्यक है कि ग्रंथि को सुई लगाने के पूर्व तौल लिया जाय, जिससे सही मात्रा की सुई लगायी जा सके। कार्यस्थलों पर हर समय यह संभव नहीं है कि, तौलने की तुला उपलब्ध हो। इसलिए अनुभवों के आधार पर मछली के भार और पौषग्रंथि के भार का जो अनुमान तैयार किया गया है; वह निम्नानुसार है :—

मछली का नाम	दाता मछली का भार (किलो)	पौषग्रंथि का भार (मि. ग्रा.)
रोहू	1 किलो तक	5.1
	1 से 2 किलो तक	6.6
	2 से 3 ,,	10.3
	3 से 4 ,,	15.2
	4 से 5 ,,	18.6
	5 से 10 ,,	34.0
	10 से 12 ,,	47.6
मिरगल	0.5 किलो तक	4.5
	0.5 से 1 किलो तक	6.1
	1 से 1.5 ,,	7.2
	1.5 से 2 ,,	8.0
सामान्य-शफर	0.5 किलो तक	4.9
	0.5 से 1 ,,	5.4
	1 से 2 किलो तक	6.9
	2 से 3 ,,	9.3
	3 से 4 ,,	15.3

मोटे तौर पर यह माना जाता है कि प्रति किलो मछली-भार से 4 मि. ग्रा. पौषग्रंथि मिलती है।

देश में किये गये अनुभवों के आधार पर सामान्यतः यह सभी जगह पाया गया है कि मादा मछली को दो सुईयाँ और नर को एक बार देने के बाद सफलता मिल जाती है। मादा को पहली सुई 2-3 मि. ग्रा. प्रति किलो शरीरभार के अनुसार देकर, उसके चार से छः घंटे बाद, 6 से 8 मि. ग्रा. की दूसरी सुई दी जाती है। इसी समय नर-मछलियों को भी 2-3 मि. ग्रा. प्रति किलो शरीरभार के अनुसार सुई देकर इन्हें प्रजनन के लिए इकट्ठा रख दिया जाता है।

पौषग्रंथि की सुई बनाने की विधि सरल है। निर्धारित भार की ग्रंथि लेकर, अति-समरूप मिश्रक डालकर, थोड़ा आसुत जल मिलाकर समस्त सामग्री का चूर्ण बना लिया जाता है। तरल निस्सारण सुई के उपयोग के लिए तैयार समझा जाता है। यह सुई का घोल एक बार में 1 मि. लीटर से अधिक शरीर में प्रवेश न करे इस बात का ध्यान रखा जाय। मात्रा का घोल इस प्रकार किया जाय कि विलयन तीव्र रहे।

सुई उदरच्छद अथवा पेशी में ही लगायी जाती है। सुई लगाने के पूर्व यह ध्यान रखना चाहिये कि सुई से भीतर के अवयवों को हानि या चोट न पहुँचे। ऐसा होने से परिपक्व मछली की मृत्यु होने की संभावना रहती है। पाँचवीं अवस्था तक परिपक्वता प्राप्त मछली को सुई ऐसे स्थान पर लगायी जाती है, जहाँ जल की व्यवस्था निकट ही हो तथा तापमान 75 डिग्री फा० से 85 डिग्री फा० तक हो। सुई लगाने के बाद प्रजनक को एक पी. पी. एम. नमक अथवा पोटेशियम परमेगनेट के घोल में, रोगाणु नाशन के लिए डाल देते हैं।

उदरच्छद झिल्ली में सुई लगाने के लिए पेट की चमड़ी में सुई चुभोई जाती है। सुई अन्तस्थल की ओर झुकी रहनी चाहिये, जिससे अन्दर के अवयवों की हानि की संभावना न रहे। श्रोणिपक्ष के आधार के निकट जहाँ चमड़ी मुलायम होती है, सुई सुगमता से लगायी जा सकती है। पेशी में सुई शल्क उठाकर पुच्छवृन्त या पृष्ठपक्ष के नीचे, जहाँ अन्दर के अवयवों की हानि की संभावना कम होती है, लगाना चाहिये। पेशी में सुई लगाना अपेक्षाकृत सरल है। इसमें मात्रा भी कम की जाती है और इसमें भीतरी अवयवों को चोट लगने की संभावना भी न्यून रहती है।

सुई लगाने के बाद एक मादा के साथ दो नर के हिसाब से कपड़े या नायलोन के प्रजनन हापे या सीमेण्ट के तड़ाग में छोड़ देते हैं। सुई लगाने के छः घंटे के भीतर सामान्यतः प्रजनन हो जाता है। प्रजनन के नौ-दस घंटे बाद ही अंडे संग्रह करना उचित रहता है। इस समय तक अंडे कड़े पड़ जाते हैं और अंडों के नष्ट होने की संभावना कम हो जाती है। अंडे इकट्ठे करने के पूर्व ही प्रजनकों को निकालकर अलग कर देना चाहिये।

प्रेरित-प्रजनन की सफलता के लिए प्रजनक-नर-मादा मछलियों को नवम्बर या दिसम्बर से ही प्रजनक तालाबों में पृथक्-पृथक् रखा जाय। गर्भावस्था में परिवहन करना सरल और निरापद नहीं है। प्रेरित-प्रजनन के लिए दो किलो से चार किलो तक की परिपक्व मछलियाँ ही उचित रहती हैं। इनके पर्याप्त भोजन, कृत्रिम आहार की व्यवस्था करना भी आवश्यक रहता है। इस प्रकार ये मछलियाँ स्वस्थ रहती हैं और इनकी शारीरिक क्षमता बढ़ती है। परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद नर की अपेक्षा मादा शफर मछली अधिक चमकीली होती है और नर से बड़ी भी होती है। नर का अंस-पक्ष भीतर की ओर खुरदरा हो जाता है, जो मादा में चिकना होता है। साधारणतः ये लक्षण सभी प्रमुख-शफर मछलियों में पाये जाते हैं।

इस समय ये प्रयोग भारत में सभी जगह सफलतापूर्वक किये जा रहे हैं और अब प्रचुर मात्रा में मत्स्य-बीज इस क्रिया से इकट्ठा किये जाते हैं। इस तरीके से मछली-

बीज इकट्ठा करना सरल और उपयोगी है। इस विधि से प्राप्त मत्स्य-बीज शुद्ध होता है, साथ ही इस क्रिया से संकर-बीज भी उत्पन्न किया जा सकता है।

भारतवर्ष में लायी गयी तीन विदेशी मछलियाँ हैं, जिनको मत्स्योत्पादन के लिए सञ्चय किया जाता है। इन मछलियों में ग्रासकार्प और सिल्वरकार्प मछलियों का प्रजनन प्रेरित प्रजनन विधि से किया जाने लगा है। कामनकार्प या सामान्य-शफर का प्रजनन सरलता से हो जाता है।

सामान्य-शफर का प्रजनन--सामान्य-शफर मछली वर्ष में दो बार परिपक्वता प्राप्त करती है; एक वर्षाकाल में तथा दूसरी बार शरद ऋतु में। इस मछली के अंडे चिपकने वाले होते हैं। अतः इन अंडों को इकट्ठा करने के लिए कुछ विशिष्ट सामग्री चाहिये। प्रजनन की दृष्टि से यह बहुत ही सरल मछली है। यदि अंडों को इकट्ठा करने के लिए हाइड्रिला या कुछ अन्य पदार्थ के साथ एक मादा और दो नर को प्रजनन-हापा में रख दिया जाय तो 6 से 8 घंटे के भीतर यह प्रजनन कर लेती है। चूंकि अण्डे हाइड्रिला आदि किसी घास से चिपके रहते हैं, इस घास को कपड़े में अण्डौधजनन-हापे में रखकर क्षुद्रमीन तैयार की जाती हैं। कामनकार्प के अण्डे से 72 घण्टे बाद शिशु उत्पन्न होते हैं। कामनकार्प अब इसी कारण बहुत लोकप्रिय हो रही है, क्योंकि इसके बीज-उत्पादन की कोई समस्या नहीं है।

मत्स्य-बीज का व्यापार

मछली-बीज के व्यापार के लिए कलकत्ता का एकमात्र बाजार बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। इसकी बड़ी-बड़ी आढ़तें हैं, जहाँ आस-पास से ही नहीं, बिहार, उड़ीसा आदि अन्य प्रान्तों से भी बीज इकट्ठा होकर बिकने आता है। इस बाजार का आज भी देश में आधिपत्य है। यहाँ के व्यापारी श्रमिकों को पहले से ही पैसा वितरित कर देते हैं और बीज की प्राप्ति तय कर लेते हैं। यह व्यापार मछली के जीरे (क्षुद्रमीन) और शिशुमीन (फ्राई) का होता है। यह निरंकुश व्यापार व्यापारियों और आढ़तियों के हाथों में है। इन्हीं में से कुछ के पास संवर्धन तालाब हैं, जो जीरे का संवर्धन कर स्वयं ही शिशुमीन बेचते हैं।

योजनाबद्ध विकास प्रारम्भ हो जाने पर राज्यों की मत्स्य-बीज की माँग बढ़ने लगी थी। शासकीय विविध राज्यों के विवादों को खुले बाजार में घटती-बढ़ती दरों पर, मछली-बीज लेना असुविधाजनक आपत्तिजनक था। अतः केन्द्रीय मत्स्योद्योग-प्रसार-अधिकारी तथा केन्द्रीय-अन्तर्देशीय-मत्स्य-अनुसंधान संस्था के प्रयासों के फलस्वरूप कलकत्ता के कुछ बीज व्यापारियों ने मिलकर 'फिश सीड सिंडीकेट' की स्थापना की। इसका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न राज्य-शासनों को नियत मूल्य पर उत्तम मत्स्य-बीज विक्रय

करना था, यद्यपि इसमें खुले बाजार पर कुछ अंकुश लगा, तथापि राज्यों को सरलता से अच्छा बीज मिलने लगा और इस प्रकार मछली-बीज का नियमित व्यापार शुरू हो गया है। यह संस्था विभिन्न नदियों से मछली-बीज (जीरा) क्रय कर संवर्धन कराती है और माँग वाले क्षेत्रों में उचित व्यवस्था के साथ इसे बेच देती है। अब इस संस्था द्वारा प्रति-वर्ष 10 से 22 करोड़ मत्स्य-शिशु-मीन (फ्राई) का व्यापार होता है। परिवहन के के लिए रेल मोटर और वायुयान सभी का प्रयोग करते हैं। वायुयान से बीज दूरस्थ प्रान्तों को भेजा जाता है।

मछली के बच्चों की पहचान––नदियों, बाँधों और प्राकृतिक-प्रजनन स्थलों से एकत्र किये गये अंडों से प्राप्त मछली के जीरे के साथ-साथ अन्य अवाञ्छित मछलियों के बच्चे मिले रहते हैं। इनमें से पाली जाने वाली प्रजातियों के बच्चों को अलग करना साधारण कार्य नहीं है। मछली-बीज के व्यापारी और मछली-पालक दोनों ही वर्गीकरण में कठिनता अनुभव करते हैं। 3 से० मी० से छोटे बच्चों की सही-सही पहचान बहुत कठिन है। इसके लिए चीनी-सिद्धान्तों के आधार पर भारत में प्रयास किये जा चुके हैं (अलीकुन्ही 51)।

प्रमुख-शफर मछलियों के अण्डों की पहचान––प्रमुख शफर मछलियों के अण्डों की पहचान के लिए भी कुछ लक्षण बताये गये हैं, वे नीचे दिये जा रहे हैं :—

सारणी

शफर-मछली के अण्डों की पहचान

मछली	अंडों का रंग	अंडों का माप
कतला	हल्का लाल	5.3 मि. मी. से 6.5 मि. मी. व्यास
रोहू	लाल–सा	5.0 मि. मी. व्यास
सिरगल	भूरा–सा	5.5 मि. मी. व्यास

बड़े बच्चों की पहचान के लिए जो आधार प्रचलित है, वह वाह्य शारीरिक और चरित्र अध्ययन पर ही अवलम्बित है। तत्सम्बन्धी कार्यकर्ताओं (मुकर्जी, मजूमदार तथा दासगुप्ता, 1944) ने प्रमुख-शफर की मुख्य मछलियों की पहचान के लिए एक कुंजी तैयार की है, जिसकी सहायता से बच्चों की स्थिति में ही बहुत-सी मत्स्य-प्रजातियाँ पहचानी जा सकती हैं।

शफर जाति के बच्चों की पहचान की सारणी

11.2 मि. मी. लम्बाई में सिर विशेष बड़ा और 17.8 मि. मी. लम्बाई में चौड़ा (स्पर्शा रहित, पारदर्शी, क्लोमावरण से लाल रंग के क्लोम दर्शनीय) ... कतला

प्रमुख शफर शिशुओं की पहचान के चिह्न

1

2

3.

4.
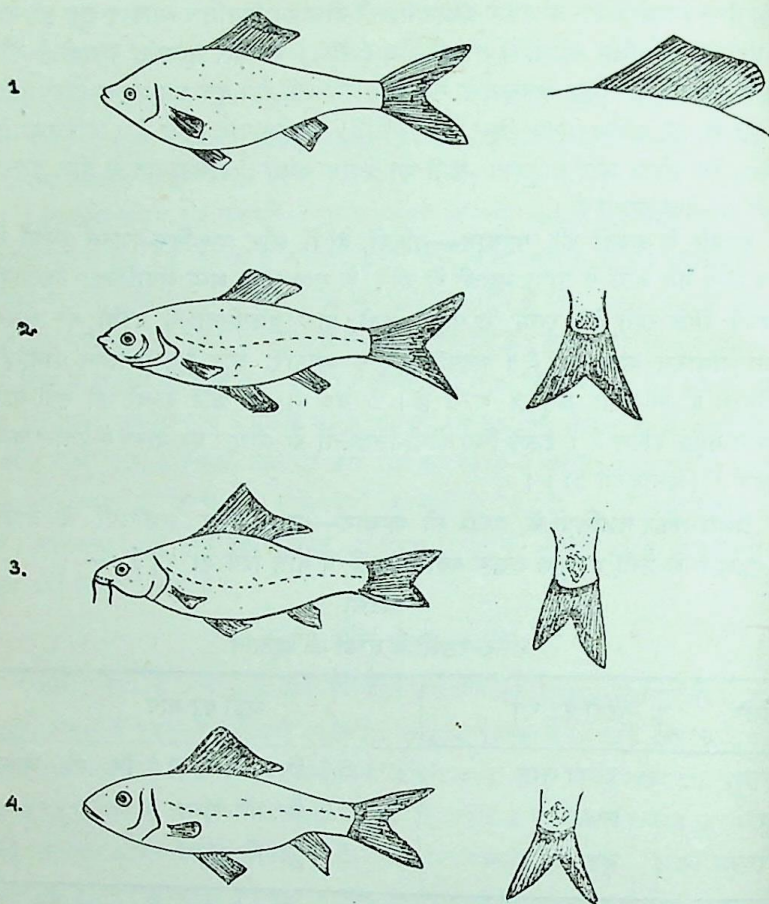
1. कतला—पृष्ठपक्ष के काले किनारे
2. रोहू—पुच्छवृन्त पर काले धब्बे
3. कालबासू—काले स्पर्शा
4. मिरगल—पुच्छ वृन्त का धब्बा हीरे के आकार का

सिर साधारण आकार का—

अ. पुच्छवृत्त पर सफेद स्थान से घिरे हुए 3-4 काले धब्बे (ओष्ठ झिल्लीयुक्त, भूरा रंग, पृष्ठपक्ष के आधार के सम्मुख पीला धब्बा, घाटे पर पीली रेखा, काले रंग के स्पर्शा) ... कालबासू

ब. पुच्छवृत्त पर धब्बा सफेदी रहित

(1) **ओष्ठ झिल्लीयुक्त--**

(क) शरीर पर अन्वायाम रेखाएँ—पक्षों पर काले धब्बे ... ले. गोनियस

(ख) अन्वायाम रेखाओं रहित शरीर, हिंगुल रक्त रंग के पक्ष ... ले. रोहिटा

(2) **ओष्ठ साधारण--**

(क) पार्श्व रेखा से ऊपर वाली 5-6 वीं शल्क पर दोनों ओर काला धब्बा (अन्वायाम रेखाओं युक्त शरीर) ... ले. बाटा

(ख) दोनों ओर काला धब्बा
पृष्ठपक्ष के आधार पर एक काला धब्बा 30.5 मि.मी. अवस्था में, दूसरा पृष्ठपक्षीय धब्बा उत्पन्न हो जाता है। 14.2 मि. मी. अवस्था में उत्तरहनु स्पर्शा स्पष्ट हो जाते हैं ... बा. बोला

पृष्ठपक्ष के आधार पर काला धब्बा अनुपस्थित--

(च) पृष्ठपक्ष के अग्रभाग के नीचे एक छोटी तिरछी धारी, जो वाद में गोल धब्बा बन जाती है (पृष्ठपक्ष की प्रथम रश्मि और आगे का काला हिस्सा) ... बा. सराना

(छ) पृष्ठपक्ष के अग्रभाग के नीचे धारी या धब्बा अनुपस्थित

(ज) ओष्ठ काले, पार्श्वरेखा पर छोटे काले धब्बे, बाद में अन्वायाम रेखा बन जाती है .. सि. रेवा

(झ) ओष्ठ श्वेत, शरीर कई अन्वायाम रेखाओं युक्त ..सि. मिरगल

मत्स्य-बीज का अवस्थापन

मत्स्य-बीज केन्द्र से यदि सञ्चय करने का स्थान अधिक दूर नहीं है, तो उसे सामान्य विधि से ही ले जाया जा सकता है। यदि बीज को दूरस्थ स्थानों के लिए, ले जाना हो तो यात्रा से पूर्व उसका अवस्थापन करना आवश्यक हो जाता है। साधारणत: यह माना जाता है कि पकड़ने के तुरन्त बाद ही बच्चे लम्बी यात्रा के योग्य नहीं होते। यात्रा के समय बच्चे खाये हुए भोजन का वमन और मल आदि का त्याग करके आधान के जल को कलुषित कर देते हैं, जिससे उनकी हानि होने लगती है। अवस्थापन से इस बात का भय नहीं रहता है और शिशुमीन सीमित अवस्था में रहने के अभ्यस्त हो जाते हैं। मछली के बच्चों को निराहार, साफ पानी में, अवस्थापन-पिंजरों में निश्चित समय तक रखते हैं। यह समय यात्रा में लगने वाले समय के अनुपात में रखा जाता है। यह मछली के बच्चों की अवस्था पर भी निर्भर करता है। अवस्थापन कपड़े

के हापे में, लोहे की जाली के अथवा लकड़ी के बने पिंजरों या प्लास्टिक पूल में किया जा सकता है। अवस्थापन जाली अथवा बाँस की चटाई से बनाये हुए अस्थिर समावर्त स्थान पर भी किया जा सकता है।

बंगाल में संवर्धन—तालाब में ही मिट्टी की रोक लगाकर छोटा समावर्त स्थान बना लेते हैं और इसी को अवस्थापन के लिए उपयोग करते हैं। जिस पानी में बच्चे रहते हैं, उसी में अवस्थापन अच्छा समझा जाता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अवस्थापन ऐसे स्थान पर किया जाय, जहाँ नितल दलदली और मटीला न हो। मछुओं के चलने फिरने से ही मिट्टी पानी में घुलकर हानिकारक होगी। यदि कोई अन्य उचित स्थान नहीं मिलता हो तो किसी निमग्न मञ्च पर स्थापित कर देना चाहिये। ऐसे स्थानों पर छाया का समुचित प्रबन्ध कर ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिये, जिससे तापमान में विशेष अन्तर न आये। अवस्थापन स्थल पर अनुकूल तापमान 26° डिग्री से. से 27° डिग्री से. के बीच समझा जाता है।

अवस्थापन के समय इस बात का ध्यान आवश्यक है कि बच्चों का स्थानान्तर करते समय हाथ से न छुआ जाय। जहाँ तक संभव हो शिशुमीन को अच्छे मुलायम कपड़े से बने हाथ-जाल की सहायता से इधर-उधर किया जाय। हाथ से छूने से शरीर की श्लेष्मा और शल्क के उखड़ जाने का भय रहता है और जिसके कारण ये कवक तथा शाकाणुओं से उत्पन्न रोगों के लिए रोगग्राही हो जाते हैं। अनुभव हो जाने पर इन्हें हाथ से भी छुआ जा सकता है। बंगाल के मछुए संवर्धनी में एकत्र किये मछली के बच्चों को जाल में रखकर चारों ओर से हाथ के थपेड़े लगाते हैं और भयातुर बच्चे बिना पचे आहार को वमन कर देते हैं और मलमूत्र त्याग कर देते हैं। यह अवस्थापन की एक उत्तम रीति है। अवस्थापन के बाद मछली के बच्चे दूरस्थ स्थानों के लिए तैयार हो जाते हैं और उन्हें दूरी आदि का ध्यान रखकर व्यवस्थानुसार बनाये गये आधानों में रखा जाता है।

मत्स्य-बीज परिवहन

मत्स्य-बीज को दूरस्थ स्थानों तक ले जाने में, केवल परिवहन के साधन पर ही विचार नहीं करना है, अपितु यह भी देखना आवश्यक है कि मत्स्यबीज को स्वस्थ अवस्था में, कम से कम समय में, किस तरह उचित स्थान पर ले जाया जाय। यात्रा की समाप्ति पर मछली के बच्चों की हानि और परिवहन के प्रयास तथा धन की हानि का प्रश्न भी ध्यान में रखना चाहिये। अतः साधनों के ऊपर विचार करने के पूर्व मूलभूत सिद्धान्तों पर विचार करना आवश्यक है। तत्पश्चात् साधनों का चुनाव भी सरल हो जायगा।

मत्स्य-बीज परिवहन पर सैद्धांतिक विचार—मछली के बच्चों की दैहिक आवश्यकता की पूर्ण जानकारी से ही सम्वहन के सिद्धान्त और साधनों का निश्चय करना

सरल हो जायगा । इस सम्बन्ध में भारत में कुछ वैज्ञानिकों ने कार्य किया है तथा अभी भी खोज की जा रही है । मछली के वच्चों के परिवहन के समय श्वास के लिए समुचित मात्रा में ओषजन की कमी और कार्बन-डाय-ऑक्साइड पैदा हो जाती है। नयी खोजों से पता चला है कि मछली के वच्चों की सामूहिक मृत्यु जल में ओषजन की कमी से न होकर, उसमें कार्बन-डाय-ऑक्साइड की मात्रा, आवश्यकता से अधिक होने से हो जाती है। आवश्यकता से अधिक मात्रा में ओषजन की उपस्थिति होने पर भी कार्बन-डाय-ऑक्साइड का सकेन्द्रण अधिक होने से मछलियों की हानि होने लगती है।

कुछ पाली जाने वाली मछलियों के ओषजन और कार्बन-डाय-ऑक्साइड के अनुपात सम्बन्धी आवश्यकताओं पर भारत में कार्य किया जा रहा है । भारत की प्रमुख-शफर पर किये गये प्रयोगों से यह पता लगा है कि प्रमुख-शफर की इल्ली और क्षुद्रमीन 0.5 पी० पी० एम० ओषजन सकेन्द्रण या इससे भी क्षीण सकेन्द्रण पर जीवित रह सकते हैं। 0.5 से 1.0 ओषजन केन्द्रण वाले जल में 24 घंटे रह सकते हैं। 4 से 8 से. मी. अवस्था के वच्चे 25 पी० पी० एम० ओषजन सकेन्द्रण के जल में 24 घण्टे अथवा अधिक समय तक विना अधिक कष्ट के रह सकते हैं । कार्बन-डाय-ऑक्साइड का घातक प्रभाव ओषजन की मात्रा के अनुपात के आहार से घटता-बढ़ता रहता है । जल में कार्बन-डाय-ऑक्साइड के 2.5 पी०पी०एम० सकेन्द्रण फ्राई के लिए पानी में 0.5 से 1.00 पी०पी०एम० ओषजन होने पर घातक प्रभाव होता है । विभिन्न जाति के शोणवर्तुलि सादृश्य (हीमोग्लोविन एफिनिटी) का श्वास क्रिया पर गहरा असर होता है, परन्तु इस सम्बन्ध में पाली जाने वाली मछलियों से सम्बन्धित ज्ञान नहीं के बराबर है और वह मछली के बच्चों के सम्वहन के तरीकों को नियत करने में उपयोगी नहीं हो सकता है।

मछली की ओषजन की आवश्यकता उसके शारीरिक भार के अनुपात में होती है, साथ ही तापमान की वृद्धि से अधिक बढ़ जाती है। प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 20° से० तापमान पर इल्ली (जीरा) और फ्राई की ओषजन की आवश्यकता को समुचित कम किया जा सकता है। पी० एच० के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि इल्ली और फ्राई 6.0 से 7.9 पी० एच० पर, ओषजन का अधिक उपयोग करती है। इसके अतिरिक्त पानी में अमोनियम की उत्पत्ति, मरे हुए मछली के बच्चों के कारण पानी में जीवरासायनिक ओषजन आवश्यकता में वृद्धि और पानी में शाकाणु वृद्धि भी अन्य विचारणीय तथ्य हैं। अभी तक के प्रयोगों से ऐसी कोई विधि ज्ञात नहीं हो पायी है जिससे पानी में रोगाणुनाश सम्भव हो जाय, क्योंकि पानी में समुचित रोगाणुनाशक पदार्थों के मिलाने से इल्ली और फ्राई पर घातक प्रभाव पड़ता है ।

जल में कार्बन-डाय-ऑक्साइड की उत्पत्ति के कारण इल्ली और फ्राई का नाश जल

के पी० एच० को बढ़ाकर रोका जा सकता है। कार्बन-डाय-ऑक्साइड के प्रभाव को जल में बोरिक एसिड, सोडियम फास्फेट जैसे प्रत्यारोधकों के प्रयोग से रोका जा सकता है। प्रत्यारोधकों के थोड़े प्रयोग से भी बच्चों की हानि रुक जाती है।

प्रायोगिक अध्ययन से ज्ञात हो चुका है कि इल्ली (जीरा) और फ्राई की चयापचय क्रियाएँ मछली के छोटे बच्चों में आंगुलिकावस्था तथा प्रौढ़ मछली के अनुपात में अधिक हैं, जिनका ओषजन उपयोग शारीरिक भार के कारण अधिक है। साथ ही इल्ली और फ्राई यान्त्रिक उपघात के लिए संवेदनशील हैं। परन्तु मत्स्य-पालन में बच्चे सञ्चय का ध्येय रहता है इसलिए अधिक से अधिक आंगुलिक अवस्था में सम्वहन तक रुका जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ मछली का तो केवल प्रजनन प्रयोगों के लिए ही परिवहन किया जाता है। अवस्थापन करना साधारणतः लाभदायक रहता है, क्योंकि इससे पानी में उपलब्ध ओषजन के उपयोग को सीमित करके शाकाणु प्रभाव से भी रोका जा सकता है। इससे चयापचय की क्रिया भी रोकी जा सकती है और अमोनिया के निस्सरण को भी नियन्त्रित किया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि परिवहन के पूर्व इल्ली और फ्राई को भूखा रखना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वे कमजोर हो जाते हैं। ये कमजोर शिशु के प्रारम्भ में ही मर जाते हैं और पानी को कलुषित कर विनष्टकारी बना जाते हैं।

परिवहन के खुले आधान——मछलियों के परिवहन की संतोषप्रद व्यवस्था करने के लिए और अधिक ज्ञान आवश्यक है। परन्तु वर्तमान में उपयोग में लाये जाने वाले आधान और क्रियाओं के अध्ययन से इनमें सुधार किया जा सकता है। प्रयोग में आने-वाले आधान खुले और बन्द दोनों प्रकार के होते हैं। फ्राई के परिवहन के लिए साधारणतः उपयोग में आने वाला खुला आधान मिट्टी की हण्डी है। यद्यपि इस हण्डी का मूल्य अपेक्षाकृत कम होता है, और परिवहन में पानी भी ठण्डा बना रहता है, तथापि इसके शीघ्र फूटने के कारण यह असुविधाजनक है। दूरस्थ स्थानों के परिवहन के लिए जब बहुत अधिक संख्या में फ्राई को ले जाना हो तब यह और भी अधिक असुविधाजनक हो जाती है। टूटने की असुविधा से बचने के लिए तथा मार्ग में सुविधापूर्वक पानी बदलने आदि की सुविधा की दृष्टि से मजबूत टीन के बने आधानों का प्रयोग किया जाने लगा है। ऐसे आधान सबसे पहले जर्मनी में प्रयोग किये जाते थे। साधारणतः यह पेंदी पर 0.5 मीटर व्यास के होते हैं और लगभग 38 से० मी० ऊँचे होते हैं। मुँह लगभग 30 से० मी० व्यास का चौड़ा होता है और इस पर जालीदार ढक्कन लगा होता है, जिसके कारण हवा के आवागमन के लिए जगह रहती है। इससे न तो पानी ही छलकता है और न ही मछली उछलकर बाहर आ सकती है। इस आधान की तली को काठ से जड़ देते हैं, जिससे परिवहन में गर्मी प्राप्त न हो और पानी ठण्डा बना रहे। आधान के ऊपर ऊनी कपड़े को लपेट कर गीला

कर देने से सामान्य ठण्डा तापमान बना रहता है। पानी निकालने के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं होता है। इन आधानों के जालीदार मुँह से ही ठण्डा पानी निकाला और भरा जाता है।

इन आधानों में, लगभग 3/4 भाग तक पानी भरकर फ्राई भरे जाते हैं। रेल अथवा अन्य वाहनों में झटकों के कारण पानी में हवा घुलती रहती है। दूरस्थ स्थानों के परिवहन में प्रति 100 मील अथवा चार घण्टे के बाद पानी को बदलना उचित रहता है। क्लोरीन युक्त नल का पानी इस कार्य के लिए सर्वदा अनुपयोगी है। ऐसे पानी को कुछ समय खुले में रखकर, उपयोग किया जा सकता है जब क्लोरिन का प्रभाव हट जाय। प्राकृतिक स्वच्छ जल सदैव लाभकारी रहता है। कुछ कार्यकर्ताओं के मतानुसार, जिस पानी में मछली के बच्चे रहते हों, उसी को परिवहन के लिए प्रयोग कर नाश रोका जा सकता है। बदलते समय पानी में यदि चारित्रिक भिन्नता ज्ञात हो, तब बहुत धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके पानी बदलना चाहिये, जिससे यह भिन्नता एकदम न हो। शुद्ध पानी न मिलने पर पानी को हाथ डालकर हिलाते रहने से वायु का मिश्रण होता रहता है। उड़ीसा मत्स्योद्योग-विभाग ने इस प्रकार के आधानों में अर्धपरिभ्रामी पम्प लगाकर वायु-मिश्रण का प्रबन्ध किया है।

इन आधानों में कितने जल में, कितनी संख्या में, किस अवस्था के इल्ली और फ्राई परिवहन किये जायँ; इस सम्बन्ध में अध्ययन केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसंधानशाला किये गये हैं, उनसे जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं :—

सारणी—1

आधान में पानी का परिणाम	प्रारंभिक घुली हुई ओषजन	परिवहन की जाने वाली फ्राई का आकार	प्रति आधान सुरक्षित फ्राई की संख्या	परिवहन का समय (मिनट में)
1	2	3	4	5
22.7 लिटर	4 पी. पी. एम.	6-7 मि. मी.	50,000	19
,, ,,	,, ,,	,, ,,	30,000	31
,, ,,	,, ,,	,, ,,	20,000	47
,, ,,	,, ,,	15-20 मि. मी.	1,000	40
,, ,,	,, ,,	,, ,,	500	80
,, ,,	,, ,,	30 मि. मी.	300	120
,, ,,	,, ,,	,, ,,	150	240

1	2	3	4	5
22.7 लिटर	5 पी. पी. एम.	6-7 मि. मी.	50,000	25
,, ,,	,, ,,	,, ,,	30,000	42
,, ,,	,, ,,	,, ,,	20,000	62
,, ,,	,, ,,	15-20 मि. मी.	1,000	60
,, ,,	,, ,,	,, ,,	500	120
,, ,,	,, ,,	30 मि० मी०	300	165
,, ,,	,, ,,	,, ,,	150	330
,, ,,	6 पी० पी० एम०	6-7 मी०मि०	50,000	31
,, ,,	,, ,,	,, ,,	30,000	51
,, ,,	,, ,,	,, ,,	20,000	77
,, ,,	,, ,,	15-20 ,,	10000	75
,, ,,	,, ,,	,, ,,	500	150
,, ,,	,, ,,	30 ,,	300	207
,, ,,	,, ,,	,, ,,	150	414

सारणी—2

फ्राई की लम्बाई	प्रति हण्डी संख्या	परिवहन का समय (घंटों में)	मृत्यु %
1.25 से०मी० से 1.87 से०मी०	1500	24 घंटे तक	2 से 5 %
,, ,, ,,	1200	36 ,, ,,	,, ,,
1.87 से०मी० से 2.50 से०मी०	1000	20 ,, ,,	,, ,,
,, ,, ,,	800	30 ,, ,,	,, ,,
2.50 से०मी० से 5.00 से०मी०	500-800	24 ,, ,,	10 %
5.00 से०मी० से 7.50 से०मी०	200	8 ,, ,,	7 %

जब घुली हुई ओषजन इन आधानों में कम हो जाती है तो मछली के बच्चों को असुविधा प्रतीत होने लगती है और मछलियाँ ऊपर की ओर आनी शुरू हो जाती हैं। यह लक्षण पानी बदलने के लिए इंगित करता है। बीच-बीच में, भरी हुई फ्राई को समय-समय पर बदलते रहना चाहिये तथा बीमार, क्षीण बच्चों को भी निकाल देना चाहिए।

रेल यात्रा में मत्स्य-बीज के आधानों को इञ्जन के निकट होने वाले ब्रेक के डब्वे में परिवहन करना सुगम रहता है। इससे रेल में लगने वाले झटकों का प्रभाव मछली-बीज पर नहीं पड़ता है। मद्रास प्रान्त में टीन के आधानों को बाहर से काला और भीतर से श्वेत रंग देते हैं और एक बड़े आधान में 50-100 अंगुलिका परिवहन करते हैं। सन् 1932 में उष्ण-प्रदेशों के लिए एक नवीन प्रकार का आधान तैयार किया गया था। इसकी ऊँचाई गोल आधानों से अधिक होती है तथा ढक्कन भी ऊँचा होता है, जिसमें लगभग 1 कि. ग्रा, बर्फ आ सकती है। इसकी तली गोल होती है तथा दो व्यक्ति सरलता से इसे ले जा सकते हैं।

कहीं-कहीं मत्स्य-बीज को नाव में भरकर परिवहन किया जाता है। जलयात्रा में उपयोग की जानेवाली नावें विशेष प्रकार की होती हैं जिनमें अलग-अलग खाने बने होते हैं। इन नावों में मत्स्य-बीज डालने के पूर्व उन्हें खूब साफ कर लिया जाता है और 1/5-1/3 तक पानी से भर लेते हैं। इसके बाद मत्स्य-बीज भर दिया जाता है। सड़क से परिवहन के लिए मोटर का उपयोग किया जाता है। आधानों का रूप और आकार स्थानीय सुविधा और मितव्ययिता के आधार पर बदलता रहता है—कहीं-कहीं पर हापा बाँधकर टीन के बड़े-बड़े टबों का प्रयोग किया जाता है, कहीं-कहीं (मध्य प्रदेश) 40 गैलन क्षमता वाले गोल ढोल के आकार के टीन के आधानों का प्रयोग किया जाता है। यह सब स्थानीय सुविधा और परिस्थितियों पर आधारित रहते हैं। परन्तु सब स्थानों पर लक्ष्य एक ही है कि, मत्स्य-बीज वाञ्छित स्थान पर स्वस्थ जीवित अवस्था में शीघ्र ही पहुँच जायँ और परिवहन मितव्ययी हो।

बन्द आधानों में परिवहन—खुले आधानों में परिवहन करने से मछली की श्वास-क्रिया से उत्पन्न कार्बन-डायओक्साइड स्वतः ही निकलती रहती है तथा मछली के बच्चों को हानि कम होने की संभावना रहती है। इसमें सुविधा यह है कि दूरस्थ स्थानों के परिवहन के लिए अनुभवी पर्याप्त सहायकों की आवश्यकता होती है और स्थान भी बहुत चाहिये। परिवहन की सफलता मौसम पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इस प्रकार के आधान वायुमार्ग के लिए तो अनुपयोगी ही हैं।

अवात मुद्रित (हवाबन्द) आधानों में अधिक ओषजन की उपस्थिति में मछली के बच्चों का परिवहन करके,खुले आधानों में आनेवाली कठिनाइयों का किसी हद तक निवारण किया जा सका है। इसके लिए मिट्टी के तेल, पैट्रोल आदि के परिवहन के उपयोग में आने वाले टिन, कुप्यातित लोहे के ऐसे आधानों आदि का प्रयोग किया जाता है जिनमें वायु प्रवेश न करे। इन आधानों में समुचित चौड़ा पेचदार ढक्कन-युक्त मुंह, जिसमें दो नली लगी हों, होना चाहिये। एक नली पतली और नितल तक पहुँचने वाली हो जिससे ओषजन

भरी जा सके। पानी निकालने वाली नली आधान की केवल 1/3 गहराई तक पहुँच सकने वाली होने से 1/3 भाग ही ओषजन भरी जा सकेगी। इस प्रकार भरी गयी ओषजन का परिमाण बाद में नापने की आवश्यकता नहीं रहती। जब इल्ली और फ्राई का परिवहन करना हो तो नली के नीचे के भाग को जाली से ढक देना चाहिये, जिससे मछली बीज के निकलने की संभावना न रहे। पहले आधान को 2/3 स्वच्छ छने हुए पानी से भर देते हैं और मछली बीज को चौड़े मुँह के द्वारा उसमें भर दिया जाता है। इसके बाद मछली-बच्चों के ऊपर पानी भर कर दूसरा आधान पानी से भर दिया जाता है। ओषजन-रम्भ से वाति-नियामक की सहायता से ओषजन भरी जाती है। आधान पूरा होने से,दूसरी नली से निकले हुए पानी की मात्रा ओषजन के बराबर होगी। अतः पानी को नापकर पता लगा लिया जाता है कि वाञ्छित ओषजन प्रवेश कर चुकी है। पर्याप्त ओषजन के पहुँचने पर दोनों नलियों को बन्द कर देते हैं। भारत में चीन के अनुरूप ही, रबर की नली के प्रयोग से ही सफलता मिली है तथा रबर की नली उपयुक्त पायी गयी है। पञ्जाब में हुए प्रयोगों के आधार पर पेच-युक्त धातु की नलियों को अत्याधिक उपयुक्त पाया गया है।

कितनी संख्या में विभिन्न जातियों के मत्स्य बच्चे अथवा कितना भार एक आधान में ले जाया जा सकता है, इस सम्बन्ध में केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसंधान शाला में प्रयोग के अनुसार 18 लिटर क्षमता वाले आधान 6 लिटर ओषजन की उपस्थिति में प्रमुख शफर के बीज-परिवहन के लिए उपयोग किये जाते हैं। ऐसे टिनों में 1–2 से० मी० लम्बे 1000–900 मछली बच्चे 20 घंटे की वायु-यात्रा में सुरक्षित रह सकते हैं। ऐसी यात्रा के लिए मछली बच्चों का 6 घंटे अवस्थापन आवश्यक है। इसमें कुछ समय तक रखा गया स्वच्छ जल प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के परिवहन 5 से० मी० से ऊपर लम्बे मत्स्य-बीज को ले जाना मितव्ययी होगा। केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसन्धान शाला के अनुभवों के आधार पर प्रतिपादित निम्न सूचना प्रमुख-शफर के शिशुओं के परिवहन के लिए उपयोगी होगी।

मत्स्य-बीज की लम्बाई	प्रति टिन की संख्या	यात्रा का समय वायुयान द्वारा	प्रतिशत मृत्यु संख्या
1.25 से०मी० 1.87 से०मी०	800-1000	12 घंटे तथा स्थल यात्रा 8 घंटे	5-12 %
3.75 से०मी० 5.00 से०मी०	400	24 ,, ,,	30%
2.50 से०मी० 3.10 से०मी०	325	16 ,, ,,	3%

भारत में प्रमुख-शफर के शिशु-मीन की दैहिक आवश्यकताओं के अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला गया है कि बन्द आधानों की सफलता केवल 20-24 घण्टों तक ही

सीमित है और आगे कार्बन-डाय-ऑक्साइड इकट्ठी होनी शुरू हो जाती है और चयापचय की क्रियाओं से उत्पादित हुई वस्तुएँ मत्स्य-बच्चों के लिए घातक हो जाती हैं। इण्डोनेशिया में हुए प्रयोगों में प्रत्यारोधक का उपयोग करके इस भय को हटा दिया गया है।

मत्स्य-बीज को प्रमीलक भेषज (नारकोटिक ड्रग्ज़) के प्रयोग से अचेतन-अवस्था में दूरस्थ स्थानों के परिवहन के सम्बन्ध में भी प्रयोग किये गये हैं। अचेतन-अवस्था में चया-

सामान्य प्राणि-प्लवक
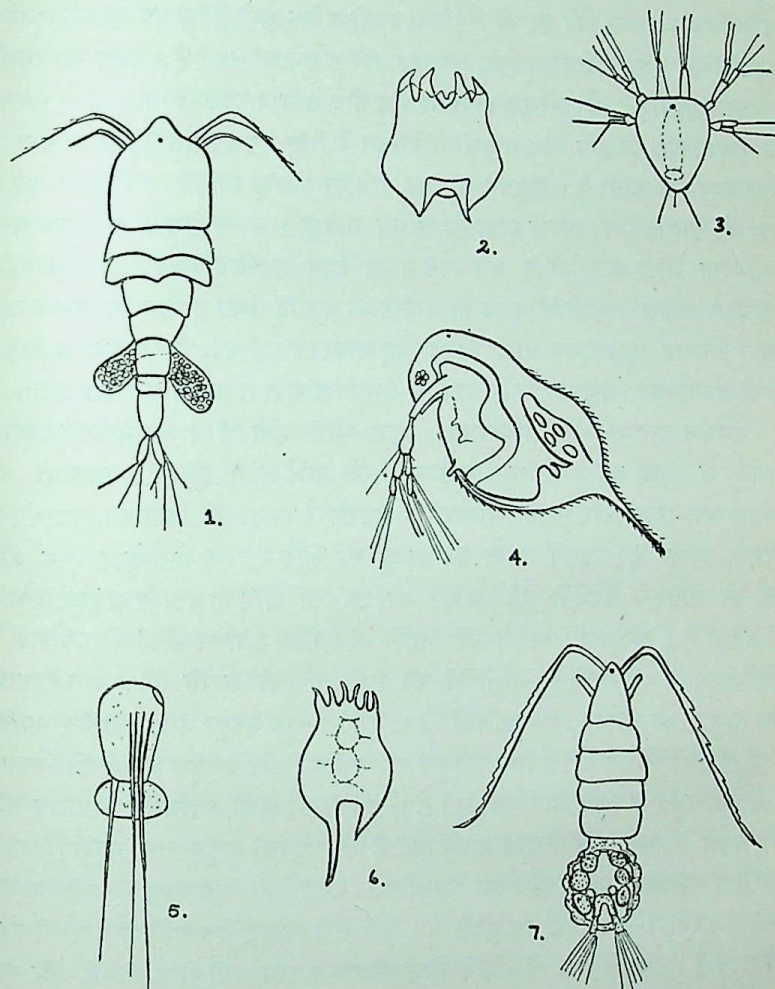
1. साइक्लोप्स 2. वेकिओनस 3. नोप्लियस 4. डेपिनिया 5. फिलिनिया 6. केरेटेला 7. डायप्टोमस.

पचय की प्रक्रिया भी सीमित ही होती है, श्वाँस भी कम ही ला जाती है और इसलिए जल के कलुषीकरण की सम्भावना भी कम ही रहती है। यह अभी प्रयोगावस्था में ही है और इसका साधारणतः प्रयोग नहीं किया जाता है।

मत्स्य-बीज संवर्धन

प्राकृतिक जलाशयों की अपेक्षा संवर्धन और अभिपोषण तालाब में अनुकूलतम परिस्थितियाँ उपलब्ध होने पर भी स्थितियाँ इतनी कठिन होती हैं कि सब आवश्यक तत्त्व जो शारीरिक वृद्धि के लिए चाहिये, उपलब्ध नहीं कराये जा सकते हैं। फिर भी मछली के बच्चों का भोजन और भोजनावश्यकता प्रौढ़ मीन से साधारणतः भिन्न होती है। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति और शत्रु जीवों से रक्षा के लिए इनके पालन की विशेष प्रणाली की आवश्यकता पड़ती है। यह सब सामान्य तालावों में जहाँ विभिन्न आकार और प्रजातियों की मछलियों का पालन होता है, सम्भव नहीं है। मत्स्य-बीज के साथ-साथ अन्य अवाञ्छित छोटी मछलियों के चले जाने से यह हिंस्र मछलियाँ हानिकर तो होंगी ही, साथ ही वाञ्छित अनुपात में पालन की जाने वाली प्रजातियों का सञ्चय भी सम्भव नहीं होगा। इन सब आवश्यकताओं के कारण यह आवश्यक हो गया है कि सञ्चय के पूर्व मछली बच्चों को पृथक् संवर्धन तालाबों में आंगुलिक अवस्था तक पाल लिया जाय।

संवर्धन तालाब—ये साधारणतः वहुत छोटे होते हैं। अभिपोषण-तालाब संवर्धन से कुछ बड़े और सञ्चय-तालाबों से छोटे होते हैं। इन तालाबों को सीमित जलमात्रा और छोटे आकार के कारण सरलता से नियन्त्रित दशाओं में रखा जा सकता है। इनमें पानी की सतह पर नियन्त्रण के साथ-साथ भूमि और जल की प्रतिकूल बदलती हुई दशाओं को सरलता और शीघ्रता से अनुकूल बनाया जा सकता है। लोहे की जाली की चारों ओर रोक लगाकर कीटों और पक्षियों के अतिरिक्त अन्य शत्रुजीवों से मछलियों की रक्षा की जा सकती है। स्थान के साथ-साथ तालाब का आकार भी मछलियों की रुचि के अनुकूल बदला जा सकता है। मछली के बच्चों की सुरक्षा, उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और अनुकूल भोजन की व्यवस्था ही मत्स्य-पालन के लिए आवश्यक वातें हैं। मछली की छोटी अवस्थाओं के पालन और अभिपोषण के तालाब अपेक्षाकृत उथले होते हैं तथा इनकी अनुकूलतम गहराई स्थानों के औसत तापमान पर विशेषतया अवलम्बित रहती है। सामान्यतः इनकी गहराई 1–2 मीटर से 1–5 मीटर तक होती है। 0.5 से 1 मीटर तक गहरे तालाब भी बहुत से मिलते हैं। मछली के बच्चे वृद्धि के लिए अपेक्षाकृत गरम पानी ही चाहते हैं और गहरे तालाबों में नीचे के पानी की सतह ठण्डी हो जाती है। उथले तालाबों में भी नीचे के पानी की सतह ठण्डी हो जाती है। उथले तालाबों में हरित-नील आप्यकाओं तथा डायए-

ट्रम्स की उत्पत्ति भी अधिक होती है जो कुछ पाली जाने वाली मछलियों के वच्चों के लिए उपयोगी है।

अभिपोषण-तालाब और संवर्धन–तालाब में पानी को इच्छानुसार भरने और रिक्त करने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। मौसमी तालावों को इसलिए पसन्द किया जाता है, क्योंकि सूखने पर मिट्टी से दूषित गैसें आदि निकल जाती हैं। सूर्य किरणों के प्रभाव से पड़े हुए पदार्थ पूर्णत: सड़कर नष्ट हो जाते हैं और नीचे की मिट्टी में पौष्टिक तत्त्व मिल जाते हैं। इस प्रकार मछलियों के शत्रुओं का नाश हो जाता है तथा ऐसे वनस्पति उपजाने का मौका मिल जाता है जो प्राकृतिक-नायट्रोजन को स्थायी कर सकते हैं। संवर्धन-जलाशयों को वहु उर्वर होना चाहिये, क्योंकि इसमें मत्स्य-आहार का उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक है। आहार पर ही वच्चों की वृद्धि और उत्पादन आश्रित है। अत: प्राकृतिक उर्वरता के लिए तालाबों में पर्याप्त खाद देनी चाहिये। आवश्यकता होने पर कृत्रिम आहार भी दिया जाना चाहिये। यदि जलाशय वारहमासी हो तो 2-3 साल में एक बार उसे डीजल पम्प द्वारा अवश्य ही खाली कर देना चाहिये।

संवर्धन और अभिपोषण के लिए यद्यपि उपरोक्त वर्णित सभी सिद्धान्त सर्वमान्य हैं फिर भी मछलियों की आवश्यकता और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल इनमें परिवर्तन किया जा सकता है। कुछ बातें ऐसी भी हो सकती हैं, जिन्हें स्थानीय मत्स्य-पालकों की परम्परा से ग्रहण करना लाभदायक होगा।

यथासम्भव संवर्धन-तालाब, मत्स्य-वीज संग्रह-स्थान के निकट ही होना चाहिये, जिससे मत्स्य-वीज को विना हानि पहुँचाये हुए और विना अवस्थापन के ही सञ्चय किया जा सके। इन्हें नदी के किनारों से दूर ही स्थापित करने से बाढ़ आदि के द्वारा हानि की आशंका नहीं रहती है। मत्स्य-वीज संवर्धन की क्रियाएँ पूर्वी भारत में ही अधिक प्रचलित है। मत्स्य-पालक अधिकतर मौसमी छोटे तालाव जिनका रकवा 0.5 हेक्टर तथा गहराई 1.5 मीटर होती है, इस उपयोग में लाते हैं। वैज्ञानिकों ने 17 मी० $\times$0.9 से 1 मीटर गहरे आयताकार संवर्धन-तालाव की सलाह दी है।

वैज्ञानिक पद्धति से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि तालाब सुखा दिया जाय। सुखाने के लिए यदि पानी निकालने की नाली अपर्याप्त हो तो मानव श्रम अथवा पम्प द्वारा यह कार्य किया जा सकता है। जब नीचे की मिट्टी सूख जाय तब उसे भली भाँति जोत देना चाहिये और कम समय में शीघ्र वढ़ने वाली मटर की जाति की वनस्पतियाँ वो देनी चाहिये, जो जलाशय के उत्पादन में वृद्धि और उर्वरता बढ़ाने में सहायता करेंगी। इनको काट देने के वाद पुन: जोत देना आवश्यक है। यदि मिट्टी अम्लीय है तो पी० एच० 8 के आस-पास लाने के लिए चूने का प्रयोग करना चाहिये। तालाबों में गोबर, खाद और रसोई घर की खाद का प्रयोग करना चाहिये। प्रांगारिक-खाद अधिक उपयोगी पायी

गयी है और यह देखा गया है कि अप्रांगारिक-खाद प्लावी-सूक्ष्म आप्यकाओं की वृद्धि करते है। भारतवर्ष में सस्ता सुलभ और उपयोगी प्रांगारिक-खाद गोबर है, जो प्राणि-मन्द-प्लबकों के उत्पादन के लिए सर्वोत्तम है। 12000 किलो० से 24000 किलो० प्रति हेक्टर की मात्रा में गोबर-खाद देने से 24 घण्टे के भीतर पर्याप्त मात्रा में प्लबकों का उत्पादन हो जाता है। खाद कब दी जाय, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है; परन्तु मत्स्य-बीज सञ्चय के तीन सप्ताह पूर्व खाद देना सामान्यत: ठीक रहता है। वैसे यह समय स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है।

यदि जलाशय सूखा हो तो नितल की भूमि पर इसे फैला देना चाहिये। भरे हुए तालाव में खाद को पानी की सतह पर बिखेर देना चाहिये। यहाँ यह स्वत: ही रिस-रिस कर घुल जायगा। एक ही स्थान पर खाद की ढेरी लगा देना लाभप्रद नहीं होगा, क्योंकि इस प्रकार से प्लवकों का पर्याप्त उत्पादन वाञ्छित समय में प्राप्त नहीं हो सकेगा। सूखे गोबर अथवा गोबर-खाद की अपेक्षा ताजा गोबर शीघ्र ही और उत्तम फल देता है। सम्भवत: इसका कारण यह है कि पौष्टिक तत्व ताजे गोबर से शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं। गोबर के साथ-साथ यदि कुछ हरी पत्तियों की खाद भी दी जाय तो प्लवक-उत्पत्ति में अपेक्षाकृत वृद्धि हो जाती है। बहुधा प्लवक-उत्पादन के पूर्व आप्यका उत्पादन हो जाता है। बड़े शहरों के निकट संवर्धन-जलाशयों में शहरी खाद उर्वरता बढ़ाने की दृष्टि से दी जाती है। सूखे तालाबों में खाद देने के बाद साफ पानी भर देना चाहिये।

इस प्रकार मछली के बच्चों को अच्छे और पर्याप्त आहार की व्यवस्था किये बिना ही संवर्धनी में छोड़ देना निश्चित ही हानिकारक और अलाभकारी है। मछली के बच्चों को जलाशय में छोड़ने के पूर्व उन्हें भलीभाँति छाँट कर अलग कर देने से वाञ्छित जातियों के बच्चे बचाये जा सकते हैं। यदि बच्चे छाँटे न जा सके तो हिंसक मछलियों के बच्चे शफर मछलियों के बच्चों का नाश कर देते है। हिंसक मछलियों में मरल की प्राय: सभी प्रजातियाँ जैसे विडाल मीन, पढ़ीन, मोहनेन्डस इत्यादि हर जगह मिलती हैं। ये मछलियाँ या अन्य हिंसक मछलियाँ सदा ही तालाबों में पायी जाती हैं। इनका एक समय ही तालाब में आगमन होने पर इन्हें उसमें से निकालना कठिन कार्य हो जाता है। हिंसक मछलिया सभी अवस्थाओं में मत्स्य-बीज के लिए हानिकर होती है। शफर मछलियों के प्रजनन से कुछ समय पूर्व ही सिंघी, मांगुर, नेन्डस आदि का प्रजनन हो जाता है और ये नवजात प्राणी-मन्द-प्लवकों का आहार कर पर्याप्त पुष्टि और वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं। जब शफर के बच्चे इसमें छोड़े जाते हैं तो ये उन्हें नष्ट करने और हानि पहुँचाने लायक हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटी-छोटी अन्य मछलियाँ भी उत्पन्न हो जाती है, जो खेतों में खर–पतवार की भाँति ही तालाबों में मछलियों के लिए हानिकारक हैं। वे स्थान तो घेरती ही हैं, शफर बच्चों को हानि भी पहुँचाती है। कुछ हिंसक कीड़े भी पाये जाते हैं,

जो शिशु मीन शफर के लिए हानिकारक है । जलाशयों में पाये जाने वाले मेढक भी इन शफर बच्चों को खाते है । इन सबको संवर्धन-तड़ाग से निकालना अन्ततः एक बहुत ही आवश्यक क्रिया है ।

इनको नष्ट करने के लिए रोटीनोन नामक विष, जो डेरिस जाति के वृक्ष की जड़ों में 5% पाया जाता है, बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसकी 4-6 पी० पी० एम० की मात्रा सभी प्रकार की भारतीय हिंसक और चारा मछलियों के साथ मेढक और उनके शिशुओं तथा कुछ कीड़ों को भी नष्ट कर देती है । उचित मात्रा में डेरिस वृक्ष की जड़ का चूर्ण बाल्टी में घोल कर पानी में डाल दिया जाता है और बाद में पानी को भलीभाँति किसी भी उपलब्ध स्थानीय क्रिया से हिलाया जाता है, जिससे विष पानी में भलीभाँति घुल जाय । विष की कम मात्रा उपयोग करने से मछलियों घबरा जाती हैं । यदि उन्हें तुरन्त ही विष युक्त पानी से निकाल कर स्वच्छ पानी में डाल दिया जाय तो वे पुनः स्वस्थ हो जाती हैं । जलाशय से विष का प्रभाव दो से आठ दिनों में चला जाता है, यह अवधि विष की मात्रा पर निर्भर करती है । बड़े बारह-मासी जलाशयों में, जिनमें दूसरी बार भी इस विष के उपयोग करने की आवश्यकता पड़ती है, पानी आम्लिक हो जाता है और इस अवस्था को सुधारने के लिए 300-500 कि० ग्रा० प्रति हेक्टर चूने का प्रयोग किया जाता है ।

संवर्धन-तड़ाग में कीड़ों का नियन्त्रण करने के लिए साबुन और तेल के मिश्रण का उपयोग किया जाता है । एक हेक्टर जलक्षेत्र के लिए 51 कि० ग्रा० तेल और 11 कि० ग्रा० साबुन का मिश्रण पर्याप्त है। इसे किसी दवा छिड़कने वाली मशीन अथवा हाथों द्वारा ही पानी की सतह पर छिड़क दिया जाता है । इस प्रयोग की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस मिश्रण की सतह पानी पर पूरी हो और कीड़ों को पानी के बाहर साँस लेने के लिए स्थान न मिले। इसके लिए इस मिश्रण को किसी ऐसे ही दिन छिड़कना चाहिये जिस दिन हवा शान्त हो। यह प्रयोग शफर बच्चों के लिए हानिकारक सभी प्रकार के कीड़ों को नष्ट कर देता है। इस मिश्रण का मछली के बच्चों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है ।

यह अनुभव से देखा गया है कि 0.4 हेक्टर के संवर्धन-तालाब में दो सप्ताह में 31.25 लाख तक फ्राई पाली जा सकती है। शफर के बच्चे मुख्य रूप से प्लवक भोजी हैं । इस प्लवक-उत्पादन के लिए भूमि की उर्वरता और खाद आवश्यक है । प्लवक-उत्पादन पर्याप्त है, यह जाँच करने के लिए अति प्रचलित साधारण तरीका तो यह है कि 30 से०मी० की गहराई पर कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देनी चाहिये और साधारणतः कोहनी तक डुबाने पर हाथ नहीं दिखाई देता है । वैज्ञानिक पद्धति से जाँच के लिए प्लवक छानने वाले जाल से 50 लिटर पानी छान लेने पर 2.5 से०मी० व्यास के ट्यूब में 0.8 से 1.3 से० मी०प्लवक इकट्ठा हो जाना पर्याप्त समझा जाता है। स्वस्थ मछली के बच्चे प्रातःठण्डे समय

में पानी की सतह पर आ जाते है और दोपहर की गर्मी बढ़ने पर गहराई में चले जाते है। यदि यह प्रक्रिया न दिखाई दे तो कुछ भिन्न परिस्थितियाँ समझना चाहिये। मछलियों की पर्याप्त वृद्धि प्राप्त करने के लिए उन्हें कृत्रिम आहार देना आवश्यक है। कृत्रिम आहार के रूप में वनस्पति-तेल की खली और चावल आदि का भूसा दिया जाता है, जिसके लिए निम्नांकित मात्राएँ उचित समझी जाती है :—

सञ्चय के समय से पहले पाँच दिन	—सञ्चय किये गये बच्चों के भार के बराबर प्रतिदिन।
सञ्चय के छठे दिन से दसवें दिन तक	—सञ्चय के समय बच्चों के भार से दुगना प्रतिदिन।
सञ्चय के समय से ग्यारहवें दिन से पन्द्रहवें दिन तक	—सञ्चय के समय बच्चों के भार से तिगुना प्रतिदिन।

15 दिन के बाद सभी अच्छे संवर्धन-तालाबों में बच्चे 35 मि० मी० लम्बे हो जाते हैं और इसी समय उन्हें तालाब से निकालना लाभकारी होता है। इन शिशुमीन को अभिपोषण-तालाबों में सञ्चय किया जाता है। मछली के बच्चों की संख्या कम करने के बाद संवर्धन को भी अभिपोषण के लिए उपयोग किया जा सकता है। एक ही संवर्धन-तालाब को, एक ही मौसम में दो-तीन वार मछली के बच्चोंके संवर्धन के लिए उपयोग करके दो-तीन फसलें पैदा की जा सकती है।

अभिपोषण-तालाब——ये जलाशय संवर्धन-तालाबों से आकार में बड़े होते हैं, परन्तु यथासम्भव इन्हें भी आयताकार ही होना चाहिये। इनको तैयार करने की विधि भी लगभग वही है, जो संवर्धन तालाबों की है, क्योंकि आवश्यकताएँ भी लगभग वही है। हिंसक मछलियों और जीवों तथा हानिकर कीड़ों को बार-बार जाल चला कर और तालाब को सुखा कर हटाया जाता है तथा मत्स्य-आहार को बढ़ाने के लिए गोबर, हरी पत्तियों और मुर्गी खाने की खाद इस प्रकार दी जाती है कि लाभ प्राप्त हो जाय और इसकी गन्दगी तालाब में न आ सके, साथ ही हानिकारक प्रभाव भी उत्पन्न न होने पाये। इसके लिए खाद के मिश्रण को जलाशय के एक कोने में रख दिया जाता है और उसके आसपास बाँस की चटाई लगा दी जाती है। इससे खाद का लाभप्रद अंश तो पानी के साथ बह कर निकल जाता है और अन्य पदार्थ वहीं पड़े रह जाते हैं। साधारणतः भारत में छोटे-छोटे मौसमी अथवा बारहमासी ग्रामीण-जलाशयों को जो एक एकड़ तक के होते हैं, सफाई इत्यादि करके इस कार्य के लिए उपयोग किया जाता है।

अभिपोषण तालाबों में 2.5 से 5 हजार प्रति हेक्टर तक 13 से 35 मि० मी० आकार के शिशु सञ्चय किये जाते हैं। जब ये आंगुलिक-अवस्था 130-155 मि० मी० तक के हो जाते हैं, इन्हें सञ्चय-जलाशयों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

१०

तालाबों में मत्स्य-पालन

तालावों में मत्स्य-पालन अब सारे देशमें बहुत ही लोकप्रिय होता जा रहा है। इस कारण छोटे तालावों से उत्पादन और आय निरन्तर मिलने लगी है। ऐसे तालाब, जिनमें मत्स्य-पालन किया जाता है, सञ्चय—तालावों के नाम से जाने जाते हैं। खेती की ही भांति मत्स्य-पालन तालाबों में भी बहुत सी उत्पादक क्रियाएँ की जाती हैं जिनके द्वारा वाञ्छित उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इन क्रियाओं को प्रमुखतः निम्नांकित पाँच हिस्सों में बाँटा जा सकता है :—

1. सञ्चय-तालाबों की मरम्मत और तैयारी
2. सञ्चय
3. कृत्रिम आहार
4. तालाब व्यवस्था
5. उत्पादन

1. सञ्चय तालाबों की मरम्मत और तैयारी

मछली-पालन तालाब में मछली बीज सञ्चय करने के पूर्व यह आवश्यक है, कि तालाब की भलीभांति जाँच कर ली जाय और उसकी आवश्यक मरम्मत कर दी जाय।

भौतिक मरम्मत में बाँधों को ठीक कर देना और नालियों पर आवश्यक जाली लगाना और उनकी मरम्मत करना आवश्यक है। यदि आवश्यकता अनुभव हो तो अतिरिक्त जल-पौधों को निकाल देना चाहिये। इसके लिए स्थानीय श्रमिकों द्वारा पौधों को उखड़वा देना सबसे अच्छी क्रिया है। जहाँ तक सम्भव हो, सञ्चय तालावों को समय-समय पर खाली करके उसकी नली में एकत्र प्रांगारिक पदार्थों को साफ कर देना चाहिये। जहाँ पर तालावों का सुखाना किसी कारण सम्भव नहीं हो, वहाँ नाव पर बैठ कर लम्बे हथियारों से किनारों के नीचे का मलवा निकाल देना चाहिये। यदि पहले ही सञ्चय तालाबों को सुखा लिया जाय तो, नितल की सफाई तो होगी ही, साथ ही साथ

हिंसक जीवों को भी नियन्त्रण में रखा जा सकता है। यदि सुखाना सम्भव न भी हो तो अवाञ्छित प्राणियों को निकाल देना चाहिये। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर मछली-विष का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें रोटीनोन और महुआ की खली सामान्य मछली विष है, जिनका दूसरों पर प्रभाव सीमित है। इसके बाद सञ्चय तभी किया जाता है, जब विष का सम्पूर्ण प्रभाव नष्ट हो जाय।

चूना देना—तालाबों की तैयारी में उसमें चूना देना एक आवश्यक क्रिया है। इसके दोहरे लाभ हैं। इससे एक तो तालाब की सफाई हो जाती है और साथ ही तालाब की उर्वरक शक्ति की वृद्धि होती है, ऐसे जलाशयों को जिसमें मछलियों की बीमारियाँ फैल चुकी हैं अथवा पानी आम्लीय है या क्षारीय तत्व कम हैं, पुनः सञ्चय के पूर्व उसमें चूना डालना आवश्यक है। चूना अपने विषाक्त प्रभाव के कारण बैक्टीरिया और अन्य अवस्थाओं को नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त अनावश्यक लौह मिश्रण समाप्त कर दिये जाते हैं, पी० एच० स्थिर हो जाता है और उसकी क्षारीयता बढ़ जाती है। तल-भूमि की परिस्थितियाँ सुधर जाती हैं और मछली की बीमारियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। चूना, बहुधा साधारण चूना (केल्शियम कार्बोनेट), स्लेक्ड लाइम (केल्शियम हाइड्रोक्साइड) और क्विक लाइम (केल्शियम ओक्साइड) के रूप में डाला जाता है। साधारण चूना धीरे-धीरे पानी में घुलता है और हल्की भूमि में इसका उपयोग खाद के रूप में समझा जाता है। क्विक लाइम से पी० एच० पर प्रभाव शीघ्र पड़ता है और अम्ल पर तुरन्त ही नियन्त्रण हो जाता है और इसका प्रभाव अति शीघ्र ही होता है। केल्शियम कार्बोनेट का प्रभाव धीमा होता है।

चूना तालाब में आगमन की नाली के पास या जल की सतह पर डाल कर उपयोग किया जाता है। तालाब को यथासम्भव सुखा कर स्लेक्ड लाइम डालना चाहिये। इसके प्रयोग के लगभग दो सप्ताह तक तालाब को सूखा ही छोड़ देना चाहिये, इस प्रकार पूरा-पूरा लाभ मिल सकता है। जब बीमारियों को नष्ट करने के लिए या परजीवी मत्स्य-शत्रुओं के विनाश और पानी की सफाई करने के लिए चूने का उपयोग किया जाय, तब इसे पानी में डालना चाहिये। इसके लिए क्विक लाइम को इतना ही डालना चाहिये जिससे पी० एच० सदैव 10 से० कम ही रहे। तालाब की पूरी और भलीभाँति सफाई करने की दृष्टि से 10,000 किलो० प्रति हेक्टर की मात्रा आवश्यक है परन्तु यदि खाद के रूप में प्रति-वर्ष चूना डाला जाता हो तो 100-200 किलो० प्रति हेक्टर की मात्रा समुचित है।

तालाब में चूने की मात्रा निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसकी भूमि का परीक्षण करके उसमें क्षारीय तत्वों को देख लिया जाय। चूने की आवश्यकता मोटे तौर पर पी० एच० के आधार पर ही निर्धारित की जा सकती है। यदि समुअंक पता

हो तो शेफर ग्लास के मतानुसार निम्नांकित सारिणी से चूने की आवश्यकता बतायी जा सकती है :—

सारणी

तालाब में चूना देने की मात्रा

भूमि का समुअंक	केल्शियम ओक्साइड की आवश्यकता-सैकड़ा किलो० में		
	दुमट (लोम)	रेतीली दुमट (सेंडी लोम)	रेतीली भूमि (सेंड)
समुअंक 4 या उससे कम	40	20	12.5
4 से 4.5	30	15	15.5
4.5 से 5	25	12.5	10.0
5 से 5.5	15	10	5.0
5.5 से 6	10	5	2.5
6 से 6.5	5	5	0

खाद देना––जलाशय में विघटन की क्रियाओं के निरन्तर होनेके कारण पौष्टिक पदार्थों का निरन्तर ह्रास होता रहता है और सर्वाधिक मत्स्य-उत्पादन करने की दृष्टि से और उसके लिए जैविक उत्पादन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है, जलाशय में समय-समय पर खाद देकर पौष्टिक पदार्थों को बढ़ाया जाय। तालाब को सुखा कर नितल भूमि पर पड़े पदार्थों को सक्रिय बना दिया जाता है। प्राकृतिक उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से कृत्रिम खाद दी जा सकती है। खेती की भांति मत्स्य-पालन में प्रांगारिक पदार्थ जैसे गोबर, मुर्गीपालन क्षेत्र की खाद, सड़ी हुई खली, बीज, सीवेज, म्युनिसिपैलिटी की खाद, हरी खाद आदि भी लाभदायक होते हैं। अप्रांगारिक खादों में अमोनियम सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट आदि पदार्थ ही उपयोग किये जाते हैं। यह सर्वविदित है कि ये उत्पादन बढ़ाते हैं तथापि वास्तव में कितनी मात्रा और कितना मिश्रण प्रति इकाई क्षेत्र के लिए उपयोग किया जाय इसके बारे में अभी खोज जारी है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में कुछ कार्य अप्रांगारिक खादों के उपयोग के बारे में किया जा रहा है और इनके उपयोग से उत्पादन में 300-400% तक वृद्धि हुई है।

सीवेज––भारत में प्रचलित पद्धति तो प्रांगारिक-पदार्थों की खाद देना है। बड़े शहरों के आसपास शहरी मल-प्रवाह को मत्स्य-उत्पादन जलाशयों में खाद के रूप में उपयोग किया जा रहा है और यह लाभप्रद ही रहा है। परन्तु प्रांगारिक खादों के प्रयोग में तीन कठिनाइयाँ हैं :—

(1) उनके पौष्टिक अंश सम नहीं रहते हैं।

(2) यदि पूर्णतः नियन्त्रित मात्रा में इसका प्रयोग न किया जाय तो प्रांगारिक कलुषीकरण और ओषजन वायु की कमी हो जाती है, ।

(3) यह सूत्रवत् आप्यकाओं, इत्यादि की अति वृद्धि करती है, जिनमें मच्छर आदि अन्य कीड़े बसते हैं।

इसके अतिरिक्त उष्ण प्रदेशों में प्रांगारिक-खाद को ही प्रोत्साहन दिया जाता है, क्योंकि यह सरलता से प्राप्य है और सस्ती भी है। अप्रांगारिक-खाद एक तो कठिनाई से मिलती है और फिर अपेक्षाकृत मितव्ययी नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त प्रांगारिक-खाद भूमि का भौतिक रूप भी सुधारती है। इनमें पौष्टिक तत्व बहुत समय तक पानी में स्थिर रहते हैं और धीरे-धीरे पानी में घुलते रहते हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक श्री स्विगल का मत है कि अप्रांगारिक-खादों को प्रांगारिक-खाद के साथ मिलाकर देने से अपेक्षा कृत अधिक लाभ होता है।

प्रांगरिक खाद––खाद की उपयोगिता और उसका प्रभाव जलाशय की भूमि पर विशेषतः निर्भर है । साधारणतः सन्तोषजनक भूमि में प्रांगारिक-खाद शीघ्र ही विघटित हो जाती है। पौष्टिक तत्व शीघ्र ही तल भूमि में घुल जाते हैं तथा खाद का उर्वरक प्रभाव लम्बे समय लगभग एक वर्ष तक रहता है, परन्तु कम उपजाऊ भूमि में खाद का प्रभाव शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। साधारण भूमि निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत की गयी है––

(1) कंकरीली और रेतीली भूमि, जिसे मलप्रवाह अथवा घुड़साल के मलवे की खाद से सुधारा जा सकता है ।

(2) जीर्णक भूमि (पीट), जो बिना सड़े हुए वनस्पति पदार्थों के इकट्ठे होने से बनती है और उपजाऊ नहीं होती है।

इसमें अधिक मात्रा में चूना देने के उपरान्त वनस्पति सड़ने पर उर्वरता में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

(3) काली मिट्टी की भूमि, जिसमें सड़ते हुए प्राणि और वनस्पतियाँ होती है, अति उर्वर होती है।

अतः जलाशयों में खाद देने की क्रिया प्रारम्भ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि नितल की भूमि की पूरी तरह जाँच की जाय, उसके बाद ही उपयुक्त खाद और उसकी मात्रा निर्धारित करके खाद का उपयोग किया जाय।

प्रांगारिक-खाद देते समय यह विशेष विचारणीय है कि उसके प्रभाव से ओषजन की मात्रा बहुत कम न हो जाय। सभी भारतीय शफर मछलियों को 3 पी० पी० एम० से कम ओषजन होने पर घातक (लीथल) स्थिति हो जाती है। साधारणतः खाद की मात्रा

अन्वीक्षण और विभ्रम के नियम पर आधारित पद्धति से ही तय की जाती है। साधारणतः 10,000 किलोग्राम पशुओं के मल का खाद प्रति हेक्टर की दर से देने की सलाह दी जाती है, परन्तु मुर्गीखाने की खाद का उपयोग बहुत कम मात्रा में किया जाता है और कोई भी मात्रा निर्धारित नहीं है। जैसा कि बताया जा चुका है इसके प्रयोग की मात्रा परिस्थितियों पर निर्भर करती है। जब पशुओं के मल का खाद न मिल सके तो म्युनिसिपैलिटी के खाद का उपयोग किया जा सकता है। यह खाद 500 किलोग्राम से 1000 किलोग्राम प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष के हिसाब से देना चाहिये।

यद्यपि अप्रांगारिक-खाद का उपयोग तालाब सुखाने के बाद ही उचित होता है तथापि जहाँ इसकी संभावना न हो, नाव में बैठकर पानी में खाद का घोल कर दिया जाता है। वर्षा के बाद ही पहली दफा खाद दी जाती है। फिर एक-एक सप्ताह के बाद दो तीन दफा और खाद दी जाती है। खाद देने के बाद प्लवक उत्पादन हो जाता है और मलिनता वह जाती है। यदि 'सेची की डिस्क' (मलिनता मापक उपकरण) 45 से०मी० पर डूब जाय तो प्लवकों की मात्रा पर्याप्त समझी जाती है और खाद की मात्रा पर्याप्त मानी जाती है। भारतवर्ष में प्रचलित जाँच के तरीकों के अनुसार पानी में कोहनी डुबोने पर मुट्ठी यदि दिखाई न दे तो प्लवक पर्याप्त समझे जाते हैं। और यह निश्चय हो जाता है कि खाद पर्याप्त है।

२. संचय

(अ) तालाब की उर्वरता--तालाब की उर्वरता का तात्पर्य उस तालाब की मछली-उत्पादन क्षमता से है। यह सामान्य परिस्थितियों में अधिकतम उत्पादन ही माना जाता है, और यह उत्पादन निरंतर बना रहे। सामान्यतः मत्स्य-पालक अधिकतम उत्पादन को बनाये रखना चाहता है। तालाब की उत्पादन क्षमता या उर्वरता का ज्ञान तालाब के उत्पादन कार्यक्रम बनाने के पूर्व बहुत ही आवश्यक है। तालाब में मछलियों की संख्या निर्धारण करने का काम भी उर्वरता की जानकारी के आधार पर पूर्ण होता है। यद्यपि मत्स्य-पालक के लिए यह अति आवश्यक है कि वह अपने तालाब की उर्वरता को पहले ही जान ले, तथापि यह कठिन विधि है। अतः साधारणतः यह अनुमान पर ही आधारित की जाती है।

तालाब की प्रतिवर्ष उर्वरता का पता लगाने के लिए निम्नांकित सूत्र के आधार पर गणित किया जाता है—

$$\text{के} = \frac{\text{एन ए}}{10} \times \text{बी} \times \text{क}$$

के = तालाब की वार्षिक उत्पादन क्षमता

$\frac{\text{एन ए}}{10}$ = तालाब का आकार और उसमें 10 से भाग देने के बाद

बी = तालाब की जैविकी उत्पादन क्षमता

क = उर्वरता का माप विशेष

यह एक विस्तृत गणित है जिसके लिए पूर्ण अध्ययन और ज्ञान की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए मत्स्य-वैज्ञानिक की सलाह अति आवश्यक है। किसी तालाब की संपूर्ण उर्वरता का पता लगाने के लिए, प्राकृतिक उर्वरता, खाद के द्वारा उत्पन्न उर्वरता तथा कृत्रिम आहार द्वारा उत्पन्न उर्वरता का पता लगाना होता है। संपूर्ण उर्वरता इन सबका योग होती है। यदि तालाब में कृत्रिम भोजन और खाद नहीं दी जाती है तो प्राकृतिक उर्वरता ही संपूर्ण उर्वरता होती है। परंतु सघन मत्स्य-पालन में तीनों प्रकार की उर्वरता का योग ही संपूर्ण उर्वरता होती है।

मत्स्य-बीज-संचय—मत्स्य-पालन का मुख्य उद्देश्य कम-से-कम व्यय करके अधिक से अधिक मछली पैदा करना और आर्थिक लाभ प्राप्त करना है। इसी आधार पर अनेक विधियाँ अपनायी जाती है। अतः हर देश में ऋतुओं के वातावरण और सञ्चय के तरीकों से सम्बन्धित सञ्चय–घनत्व भी अलग-अलग मिलता है। सञ्चय–घनत्व मछलियों की वृद्धि क्षमता के आधार पर बदलता है। सञ्चय की संख्या का पता लगाने के लिए वैज्ञानिकों ने जो सिद्धांत तय किया है, उसका सूत्र निम्नांकित है—

$$\underset{\text{(संख्या)}}{\text{सञ्चय की दर}} = \frac{\text{उत्पादन लक्ष्य या संपूर्ण उर्वरता (किलो)}}{\text{प्रति मछली का भार किलो (बढ़ने पर)}} \times \underset{\text{(संख्या)}}{\text{मछलियों की हानि}}$$

इसमें संपूर्ण उर्वरता का पहले से ही ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार की गणना सामान्यतः हर मत्स्य-पालक के लिए सम्भव नहीं होती है। सञ्चय की दर भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न है। सामान्य सिद्धान्त के आधार पर 5 क्यू॰ मीटर या 4.5 क्यू॰ मीटर जगह एक मछली के लिए उसकी शारीरिक वृद्धि और उत्तम स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है। चूँकि भारतवर्ष में कृत्रिम आहार का उपयोग बहुत ही कम किया जाता है, अतः यही सिद्धान्त साधारण गणना के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह सिद्धान्त भी मछलियों की ओषजन आवश्यकता के अनुसार बदला जा सकता है और यह मछलियों की अलग-अलग प्रजातियों के लिए पृथक्-पृथक् है।

उत्पादन की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि सहिष्णु मछलियों का समन्वय कर उन्हें सञ्चय किया जाय। पाली जाने वाली बहुत सी मछलियाँ केवल विशेष प्रकार का ही भोजन करती है। अतः केवल एक प्रकार के मत्स्यों के सञ्चय से जलाशय में

उपलब्ध सम्पूर्ण भोजन उपयोग नहीं हो पाता। इस रूप में मत्स्य-पालन का यह ढंग मितव्ययी नहीं है अतः इसके लिए एक साथ ऐसी विविध मत्स्य-प्रजातियों का पालन किया जाता है जिनकी भोजन की आदतें भिन्न-भिन्न हों और इस प्रकार हों, कि उपलब्ध सभी भोजन का उपयोग हो सके साथ ही वे समस्त मत्स्य-प्रजातियाँ सहचारी हों और एक दूसरे के प्रति सहिष्णु हों। इसी सिद्धांत के आधार पर मछलियों के समूहों का चुनाव हो चुका है और इनका सञ्चय प्रचलित है।

भारतवर्ष में सञ्चय योग्य प्रमुख मछलियाँ कतला, रोहू और मिरगल हैं। इन्हें साथ-साथ पाला जाता है। कतला स्तर-भोजी है, रोहू अधिकतर स्कंभ-भोजी है, और मिरगल नितल-भोजी है। कालबासू भी एक नितल-भोजी मछली जो इन सबके साथ कहीं-कहीं पाली जाती हैं। कहीं-कहीं महाशीर को भी सञ्चय में साथ लिया जाता है, परन्तु इसका प्रचलन बहुत ही सीमित है। देश में विदेशी मछलियों कामनकार्प, ग्रास-कार्प और सिल्वरकार्प के आगमन के कारण अब मिश्रित पालन में ये मछलियाँ भी साथ-साथ पाली जाती हैं। सघन मत्स्य-पालन में गौरामी का भी समावेश साथ-साथ करा लिया जाता हैं। देश में हुए प्रयोगों के आधार पर अभी तक यह निष्कर्ष निकाला है कि केवल देशी शफर या केवल विदेशी अभ्यागत शफरों को अलग-अलग पालने की अपेक्षा यदि सभी देशी और विदेशी अभ्यागत शफर मछलियों को साथ-साथ पाला जाय तो सर्वाधिक उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

यद्यपि मत्स्य-पालन यहाँ बहुत पुराना है। तथापि सञ्चय घनत्व के बारे में सिद्धांत निश्चित नहीं है। बंगाल की प्रचलित पद्धति के अनुसार 30 कतला, 30 रोहू, 40 मिरगल कालबासू मत्स्य का संचय प्रतिवर्ष किया जाता है। एक अन्य वैज्ञानिक के मतानुसार 30 कतला 60 रोहू 10 मिरगल का सञ्चय उपयुक्त रहता है। अभ्यागत मछलियों के साथ हुए सघन मत्स्य-पालन में जो सर्वोत्तम उत्पादन प्राप्त हुआ है, उसमें कतला 2, रोहू 6, मिरगल 2.5, सिल्वर कार्प 5, ग्रासकार्प 2, कामनकार्प 2.5, गौरामी 3 का अनुपात सञ्चय करने में किया गया था। अधिकांश मछली-पालक मत्स्यबीज को जाति के आधार पर कभी नहीं गिनते और इस सिद्धांत पर भी स्थिर नहीं रहते हैं।

सञ्चय के समय 10% हानि की संभावना रखते हुए संख्या बढ़ाकर सञ्चय किया जाता है। सामान्यतः प्रति हेक्टर 5000 से 10,000 फ्राई या 2500 से 5000 फ्रिगरलिंग की दर से सञ्चय किया जाता है। फिश-सीड कमेटी 1966 ने सञ्चय दर की निम्नांकित रूप में सिफारिश की :—

(1) छोटे 5 एकड़ तक के तालाब— 2500 फ्राई या 1200 अंगुलिकाएँ प्रति एकड़

(2) मध्यम 5 से 25 एकड़ तक के तालाब—3000 फ्राई या 1500 अंगुलिकाएँ प्रति एकड़

(3) बड़े 25 से 500 एकड़ तक के तालाब—500 अंगुलिकाएँ प्रति एकड़

परन्तु ये सिफारिशें सघन मत्स्यपालन को ध्यान में रखकर नहीं की गयी हैं ; इनका आधार उत्पन्न मत्स्य-बीज का उचित क्षेत्रीय वितरण रहा है, वैसे अन्य मछलियों की संख्या और दर स्थानीय व्यक्ति के विवेक और निर्णय के आधार पर ही की जाती है। अनुकूलतम संख्या की सही गणना का सञ्चय किया जाना देखा नहीं गया है।

किसी भी जलाशय की सञ्चय क्षमता को उसकी उर्वरता के आधार पर ही गणना कर कार्य करना अधिक उचित प्रतीत होता है। उर्वरकों का प्रयोग और कृत्रिम आहार का फल सीमित है और इनका अभाव भी हो सकता है।

3. कृत्रिम-आहार

कृत्रिम-आहार के रूप में भारत में तेल की खली, गोबर, फिशमील आदि का प्रयोग किया जाता है। इसको शफर-मछलियाँ प्रत्यक्ष रूप से खाती तो हैं ही, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से बचे हुए अतिरिक्त भोजन की मात्रा जलाशय में उर्वरक का काम करती है। कृत्रिम भोजन की आहार की उपयोगिता का रासायनिक विवरण निम्नांकित है :—

सारणी

वस्तु का नाम	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाशियम
सरसों की खली	4.5%	1.6%	1.3%
मूँगफली की खली	7.2%	1.6%	1.4%
गोबर	0.4%	0.15%	0.2%
फिशमील	10.0%	4.0%	2.0%

कृत्रिम-आहार कितना दिया जाय और कब दिया जाय, यह विचारणीय है। सामान्यतः मछलियों के भार का दो प्रतिशत के हिसाब से कृत्रिम आहार दिया जाता है। परंतु कृत्रिम आहार का उपयोग एक आर्थिक समस्या है। यदि इसका उपयोग मितव्ययी होगा, तभी प्रयोग बढ़ाया या घटाया जा सकता है। कृत्रिम आहार के मूल्य के साथ-साथ मछली द्वारा इसे पचाने की क्षमता का ज्ञान भी उपयोगी है। ऐसे कृत्रिम आहार को जिसे मछली पचा न सके और उसकी वृद्धि न हो, कोई भी प्रयोग करना पसन्द नहीं करेगा। पश्चिमी वैज्ञानिकों के मतानुसार केवल कृत्रिम भोजन पर भी शफर मछलियों का उत्पादन किया जा सकता है।

भारतवर्ष में अभी भी सूखे आहार पर पानी छिड़क देने से ही काम चल जाता है। यहाँ कृत्रिम आहार की गोली, पेलेट्स आदि नहीं बनायी जाती हैं; किंतु इस पर अब प्रयोगात्मक रूप से कार्य आरंभ कर दिया गया है।

4. तालाब की व्यवस्था

तालाव से वाञ्छित फल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी देखरेख और सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाय। यह जलाशय प्राकृतिक स्थिति में स्वतः ही साफ और ठीक रह सकते हैं। तालाव की जैविकी क्रियाएँ इसमें प्रांगारिक पदार्थों को शीघ्र सड़ाकर उनसे विघटित तत्वों को जैविकी उत्पादन के लिए उपलब्ध करा देते हैं। इसी प्रकार ओषजन का प्राकृतिक चक्र भी चलता रहता है। परन्तु जब तालाव का उपयोग सघन मछली-पालन के लिए किया जाता है उसमें अधिक संख्या में मछली का सञ्चय और खाद आदि दी जाती है। इस क्रिया से सामान्य चक्र बिगड़ जाता है और असामान्य परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः मछली-पालकों के लिए यह आवश्यक है, कि वे जलाशय की सफाई और देखरेख पर पूरा ध्यान दें, जिससे संचय की गयी मछली को असामान्य परिस्थितियों के कारण हानि न होने पाये।

समय-समय पर जाल चलाकर, मछली की वृद्धि का निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। इससे मछली की वृद्धि का निरीक्षण ही नहीं होता है, अपितु मछली को शारीरिक व्यायाम भी मिलता है। अन्य मछली किसी प्रकार से आ गयी हो तथा आहार—स्थान के लिए स्पर्धा कर, सञ्चित मछलियोंको हानि पहुँचा रही हो और मछलियों में यदि कोई बीमारी फैल रही हो तो, निरीक्षण से इसका पता लग जाता है। इस प्रकार का निरीक्षण मास में एक-दो बार अवश्य ही कर लेना चाहिये। यदि एक सी परिस्थितियाँ हों और एक ही तालाव में एक जाति की मछली नहीं बढ़ रही हो अथवा उनकी वृद्धि में अधिक अन्तर पाया जाय तो बड़ी मछलियों को अलग कर देना उचित रहता है। इससे छोटी मछलियों को वृद्धि का अवसर मिलता है। ऐसे जलाशयों से जिनमें गर्मी के मौसम में पानी बहुत ही कम रह जाता है, यदि सम्भव हो, तो उन्हें गहरे पानी में हटा देना चाहिये। यदि कोई उपाय संभव न हो तो हानि होने से पूर्व ही बेच देना चाहिये।

तालाव में ओषजन और कार्बनडाईआक्साइड का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। सञ्चित जलाशयों में मछलियों की संख्या समुचित होने के कारण उसमें आक्सीजन वायु का निरन्तर उपयोग होता रहता है। यदि उसी मात्रा में वायु के मिलने का साधन नहीं है, तो कभी भी मछली के जीवन के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो सकती हैं। वायु की कमी के कारण मछलियों की मृत्यु रोकने के लिए तालाव में स्वच्छ और ताजा पानी डालना आवश्यक है। इसी के लिए जापानी मत्स्य-पालक तालाबों में निरन्तर बहाव बनाये रखते हैं। पानी की सतह में जाल चलाकर अथवा नाव चलाकर हलचल पैदा करने से भी वायु प्राप्त हो सकती है। परन्तु ऐसा करते समय नितल भूमि में गड़बड़ी न हो। ऐसा होने से नितल पर पड़े हुये प्रांगारिक पदार्थों के सड़ने की गति में वृद्धि हो जायेगी

९

और परिस्थितियाँ और भी विषम हो जायेंगी। वढ़ने की अपेक्षा सड़ने में वायु का अधिक उपयोग हो जाने से वस्तुतः वायु की कमी हो जायेगी। अधिक आप्यकाओं (एल्गी) के होने से भी वायु की कमी उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में नीला थोथा आदि किसी भी आप्यकानाशक का प्रयोग कर उनको कम कर देना चाहिये। औषजन वायु के कारणों को देखते हुये तथा उसकी हानि को समझते हुये यह आवश्यक है कि समय-समय पर तालावों की नितल मृदा (खाद) को निकाल देना चाहिये। खाद निकाले हुए और आप्यका रहित तालावों में वायु की कमी से मृत्यु कम ही होती है।

जल पौधों की अधिक वृद्धि हो जाने से जलीय परिस्थितियों में असामान्यता उत्पन्न हो जाती है और इसके लिए उनकी वृद्धि रोकना और उनको एक सीमा में ही रखना आवश्यक है। सीमित मात्रा में उनकी जरूरत भी होती है। पौधों का कुछ भाग तल पर गिरकर सड़ता है और लवण पैदा करता है। साथ ही यह छोटे कीट और अन्य जीवों को भी रोकने में सहायता करता है। तैरने वाले पौधों को कभी भी वढ़ने नहीं देना चाहिये, अन्यथा ये पानी की सतह को ढक लेते हैं और हानि पहुँचाते हैं। यदि जलाशय उथला नहीं है, तो छाया की आवश्यकता नहीं है। अधिक छाया भी हानिकारक हो सकती है। जलाशय के किनारे पर बड़े पेड़ उगे हुये हों, तो उनके गिरने वाले पत्तों को समय-समय पर साफ करते रहना चाहिये।

पानी की स्थितियों का समय-समय पर रासायनिक निरीक्षण उचित समझा जाता है। इसमें जलीय असामान्यताओं का ज्ञान समय पर ही हो जाता है और उनका सही उपचार समय रहते ही किया जा सकता है। यदि पानी का समुअंक आम्लीयता दर्शाता है, तो चूने के प्रयोग से क्षारीयता की ओर लाया जा सकता है। चूना समुअंक को ठीक करने के साथ-साथ परजीवी कीटों से उत्पन्न बीमारियों की रोकथाम भी करता है। बंगाल के मछली-पालक पानी के समुअंक को उचित करने के लिए केले के पत्ते का उपयोग करते हैं। दूषित वायु के उत्पन्न न होने देने के लिए तली को समय-समय पर हिला-डुला कर हलचल मचा देते हैं इससे जमा हो गयी दूषित वायु निकल जाती है। जाँच कर लेने पर इसको कम करने के लिए थोड़ी मात्रा में फिटकरी का प्रयोग किया जाता है। कुछ कार्यकर्त्ता इसे कम करने के लिए रासायनिक खाद भी डालते हैं। जिससे दुहरा लाभ मिलता है, मलिनता कम होने के साथ-साथ तालावों में मीन-आहार के उत्पादन में भी सहायता मिलती है।

तालावों की नालियों पर रोक लगा देने से उसमें अवाञ्छित मछलियाँ नहीं आ पाती हैं और सञ्चित मछलियों को बाहर जाने का अवसर नहीं मिल पाता है। तालाब के बाहरी किनारों की भूमि से लगभग २ मीटर सीधी काट देने से और चिकना कर देने

से मरल मछलियाँ अथवा अन्य कम पानी में रहने वाली मछलियाँ प्रवेश नहीं पा सकती हैं। समय-समय पर मछलियों के शत्रुओं का विनाश करते रहना चाहिये। जलाशय में मत्स्याखेट वर्षाकाल में नहीं करना चाहिये। इससे प्रजनन के लिए तैयार मछली प्रजनन-स्थल तक नहीं जा पाती और इससे छोटे बच्चों को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है।

5. मत्स्य-उत्पादन

(अ) मत्स्य-वृद्धि—मछली की वृद्धि तालाब में मछलियों की संख्या और उपलब्ध आहार पर निर्भर करती है। ऐसे तालाबों में जिनमें कम संख्या में मछलियाँ सञ्चय की गयी हैं प्रतिवर्ष मछली की वृद्धि यद्यपि अपेक्षाकृत अधिक होती है तथापि प्रति क्षेत्र उत्पादन कम होता है और उसमें मितव्ययिता नहीं होती। मछली की वृद्धि तालाब के तापक्रम और भौतिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। वृद्धि में मछली के पैतृक गुण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अभिपोषण-तालाब में मछली की वृद्धि के आधार पर ही सञ्चय तालाब में शीघ्र बढ़ती हुई मछलियों को अधिक पसंद किया जाता है। प्रजनन के लिए शीघ्र बढ़ने वाले गुणों से सम्पन्न समजाति (स्टेन) को ही छाँटा जाता है। मछली की वृद्धि एक से अधिक स्थानीय और परिस्थिति जन्य लक्षणों पर निर्भर करती है। मछली की अधिकाधिक वृद्धि का सही ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है।

भारतीय शफर-मछलियों की वृद्धि के बारे में प्राप्त सामान्य जानकारी अवलोकन और अनुभव के आधार पर ही अधिक है। प्रथम वर्ष के अंत में साधारणतः औसतन कतला दो किलो, रोहू और सामान्य शफर एक किलो तथा मिरगल 750 ग्राम की हो जाती हैं। कम सञ्चय और पहली बार सञ्चित जलाशयों में एक वर्ष के अंत में चार किलो की कतला मछली पकड़ी गयी है। मछलियों की वृद्धि के बारे में प्राप्त जानकारी निम्नांकित सारिणी में दी गयी है :—

सारणी

भारतीय प्रमुख शफर-मछलियों की वृद्धि

मछलियों की प्रजाति	मछली का भार ग्राम में		
	एक वर्ष के बाद	दो वर्ष के बाद	तीन वर्ष के बाद
कतला	1125-4100	4000-5000	6750
रोहू	900	3600	5400
मिरगल	650-1000	2600	4000
कालवासू	450	—	—
महाशीर	500	—	—

सामान्य शफर जो कुछ वर्ष पूर्व भारतवर्ष में लायी गयी है उसकी वृद्धि भी सामान्यत: एक वर्ष में आठ सौ से एक हजार ग्राम तक होती है। यदि छ: इंच की अंगुलिका के रूप में संचय करें तो एक वर्ष में चार किलो तक बढ़ जाती है।

(ब) उत्पादन—भारत में प्रतिएकड़ उत्पादन 240 से 1500 किलो के बीच विभिन्न क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तरप्रदेश में यह उत्पादन 180 किलो से 640 किलो प्रति एकड़ तथा मध्यप्रदेश में 240 किलो से 1480 किलो प्रति एकड़ के बीच आँका गया है। भारतीय मत्स्य-वैज्ञानिक इस उत्पादन को बढ़ाने के लिए जो नये-नये तरीके सुझा रहे हैं उसके आधार पर 1600 किलो प्रति एकड़ (4000 कि. प्रति हेक्टर) प्रतिवर्ष का उत्पादन प्राप्त किया जा चुका है। यह उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही अच्छा है। मत्स्य-पालक को बाजार में विक्रय-मूल्य भी पर्याप्त मिलता है। इसलिये इसे अब और बढ़ाने में सभी रुचि ले रहे हैं।

(स) मछली निकालना—प्रमुख शफर की वृद्धि उसकी-आयु के द्वितीय वर्ष में सबसे अधिक आँकी गयी है। द्वितीय वर्ष के अंत में ही मछली की फसल निकाल लेना उत्तम रहता है। यदि इन्हें तुरन्त नहीं निकाला जाय तो अगली फसल पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। छोटी मछलियों को बढ़ने के लिए उचित अवसर नहीं मिल पाता है।

मछलियों को ऐसे समय में ही निकालना चाहिये, जब कि बाजार में मछली की अच्छी माँग हो और उसका मूल्य भी अच्छा प्राप्त हो सके। इसको सड़ने से बचाना भी आवश्यक है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए अक्टूबर से मार्च तक का समय, उष्ण प्रदेशों में मछली निकालने के लिए उत्तम समझा जाता है। यही काल होता है जबकि ठंड के कारण मछली कम सड़ती है और बाजार में माँग होने से मूल्य भी अधिक मिलता है। ग्रीष्मऋतु में भी कुछ मछली निकलवा देनी चाहिये, जिससे पानी कम हो जाने पर मछलियों की सामूहिक मृत्यु का भय नहीं रहता है। वैसे मछली कितनी और कब निकाली जाय यह स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर मत्स्य-पालक स्वयं ही तय कर सकेगा।

मछली निकालने की व्यवस्था के लिए सबसे अच्छा तरीका सहकारी समितियों के द्वारा स्वत्व-शुल्क-पद्धति पर मछली निकलवाना समझा जाता है। इसमें तालाब का मालिक स्वेच्छानुसार केवल बड़ी मछलियाँ ही निकलवा सकता है तथा इसमें सहकारी-समितियों को भी कोई आपत्ति नहीं होती है। इस प्रकार स्थानीय व्यक्तियों को कार्य भी मिलता है और उचित मूल्य भी प्राप्त होता है। स्थानीय मछुओं के लिए यह निश्चित हो जाने पर कि मछली निकालने का कार्य उन्हें ही मिलेगा, चोरी का भय और रखवाली का व्यय भी कम हो जाता है साथ ही मत्स्यपालकों का नाव जाल आदि का खर्च भी बच जाता है। और सहकारी सीमितियाँ भी तीन चार रुपये प्रति किलो का दाम, वहीं तालाब पर ही दे देती हैं।

११

जलाशयों और बाँधों में मत्स्य-पालन

गाँव तालाव और पोखरों के अलावा सिंचाई के लिए, बिजली-उत्पादन अथवा बाढ़-नियन्त्रण के लिए बड़े-बड़े बाँधों के निर्माण होने के साथ-साथ मत्स्य-उत्पादन के लिए विस्तृत जलक्षेत्र उपलब्ध होते जा रहे हैं। जिनको सफलतापूर्वक मत्स्य-उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। सिंचाई बाँधों का निर्माण बहुत पहले से होता रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद इस प्रकार की अधिक योजनाएँ सिंचाई तथा बिजली-उत्पादन के लिए बनायी गयी हैं। द्वितीय योजना के अन्त तक लगभग 1500 वर्गमील विस्तृत अतिरिक्त जलक्षेत्र इन योजनाओं के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है और यह क्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा है। इनमें गांधीसागर बाँध जैसे 265 वर्गमील के बाँध भी हैं।

वाँधों में मत्स्य-उत्पादन की क्रियाएँ छोटे तालाबों से भिन्न होती हैं। छोटे तालाबों में पूर्ण-नियन्त्रण सम्भव होता है, जबकि ऐसे विस्तृत जलक्षेत्रों में पूर्ण नियन्त्रण सम्भव नहीं हो पाता है। इस प्रकार के तालाबों में कार्यप्रणाली अध्ययन और अनुभव के आधार पर लगातार उन्नति कर रही है तथा नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं। भारतवर्ष में सवसे पहले मद्रास राज्य में विस्तृत जलक्षेत्रों की उन्नति की ओर ध्यान दिया गया है। कावेरी नदी पर बँधा हुआ मेटूर बाँध इसका एक उदाहरण है। वैज्ञानिक कार्यप्रणाली से कार्य करने पर अब इससे प्रतिवर्ष प्रति एकड़ उत्पादन 40 किलो के लगभग हो गया है। अब तो लगभग सभी प्रान्तों के मत्स्योद्योग विभागों ने अपने क्षेत्रों के बाँधों का उपयोग कर मत्स्य-उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है तथा प्रति एकड़ उत्पादन की वृद्धि के लिए अभिनव प्रयोग किये जा रहे हैं।

जलाशयों की जलीय परिस्थितियाँ

झीलों और बाँधों की जल-जैविकी परिस्थितियों में यद्यपि कुछ समानता है, परन्तु कुछ बातों में भिन्नता भी है। ये बाँध नदी क्षेत्र और तटवर्ती भूमि के ऊपर एक विस्तृत जलग्रहण क्षेत्र से पानी इकट्ठा करने के लिए बनाये जाते हैं। ये आकार और

गहराई में भी झीलों से भिन्न होते हैं। गर्मी में इनका पानी निकल जाने के कारण तट की भूमि सूख जाती है। इन झीलों में सदैव हवा के प्रभाव के कारण पानी में प्रवाह रहता है और इससे किनारों का कटाव और निर्माण होता रहता है। इन जल क्षेत्रों के उत्पादन-क्षेत्र मुख्यतः किनारों के निकट उथले भाग होते है, अतः पानी की अत्यधिक कमी हो जाने से उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है। बाँधों और झीलों में उत्पादन जलाशय की आयु के अनुसार बढ़ता घटता है। ये उत्पादन तल के प्रांगारिक-पदार्थों के लवणों पर अवलम्बित है। नितल पदार्थों के मुख्य-स्रोत, सड़ने वाले प्लवकों, हवा द्वारा लाये गए प्रांगारिक और अप्रांगारिक-पदार्थ, खाद आदि, बहकर आये हुए पदार्थ, वनस्पति और प्राणियों के बचे हुए हिस्से, सतह पर तैरने वाली वनस्तपतियों के अंश और किनारों से बहकर आये हुए पदार्थ होते हैं। उथले भागों में इनकी मात्रा और अनुपात पर ही उर्वरता निर्भर करती है। मछलियों पर प्रभावशील अन्य आवश्यक भौतिक कारण तापक्रम है। इन जल-क्षेत्रों और प्राकृतिक-झीलों में ताप का स्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हो जाता है। प्रयोगों के आधार पर यह पता लगा है कि थर्माक्लाइन बहुत कम बन पाता है और इसके कारण पानी का निरन्तर मिश्रण होता रहता है। इसके कारण पौष्टिक तत्वों का चक्र भी चलता है। ऐसे क्षेत्रों में वायु अधिक प्रभावशील होती है और इसके फलस्वरूप ही निरन्तर मिश्रण होता रहता है। इस मिश्रण के कारण पानी में गैसें पूर्णतया घुल जाती हैं। कुछ बाँधों के निरीक्षण से पता चला है कि पानी की गहराई में कुछ मौसमों में ओषजन वायु की कमी होती है और नितल के निकट मीथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसें पर्याप्त मात्रा में प्रांगारिक-पदार्थों की सड़न के कारण बनने लगी हैं।

इन क्षेत्रों में ऐसे जीव बहुतायत से उत्पन्न होते हैं जो स्थिर जलीय परिस्थितियों में रह सकते हैं। बाँध के बनने के बाद नदी के अस्थिर जल में रहने वाले जीवों की कमी होने लगती है और केवल वे ही जीव रह जाते हैं जो नवीन परिस्थितियों में रह सकते हैं। प्राणि-मन्द-प्लवक और पादप-मन्द-प्लवक लगभग जलाशयों की भाँति ही होते हैं परन्तु पानी के मिश्रण के कारण उनके वितरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उनमें जलपादपों की उत्पत्ति आवश्यक होती है जिससे कारण मछलियाँ जीवन की हर दशा में, हर आकार में सुरक्षा प्राप्त करती हैं। परन्तु इनकी अनियन्त्रित वृद्धि मछलियों के लिए शत्रुवत् कार्य करती है और इनके अधिक हो जाने पर इनका निवारण अति कठिन और व्ययसाध्य होता है। पादप-विनाशी रसायनों की गहरे पानी में उपयोगिता भी शंकास्पद ही है।

इन जलक्षेत्रों में प्राणी उत्पादन अधिकांश गहराई पर ही निर्भर करता है। उथले पानी में प्रांगारिक जीवन अधिक उत्पन्न होता है। अतः ये स्थान मछलियों के लिए भी अधिक हितकर होते हैं। इनमें मत्स्य-पालन के सम्बन्ध में विचारणीय बात यह है कि छोटे जला-

शयों की भाँति इनमें सभी प्रकार की मछलियाँ रहती हैं। बहुत से जलाशयों में ये हिंसक प्रजाति की मछलियाँ, उत्पादन का मुख्य भाग बन जाती हैं। यद्यपि हिंसक मछलियों का नियन्त्रण उनको मारकर ही किया जा सकता है, तथापि जलाशयों में मत्स्य-उत्पादन-योजना बनाने के पूर्व स्थानीय मछलियों का ज्ञान परम आवश्यक है। इन मछलियों की प्रजनन सम्बन्धी जानकारी विशेष रूप से होनी चाहिये।

मत्स्य-पालन की व्यवस्था और सर्वेक्षण

जलाशयों में उत्पादन कार्यक्रम अधिक कठिन होते हैं और छोटे जलाशयों से भिन्न होते हैं। अन्य देशों में जलाशयों के सम्बन्धों में बहुत ही अधिक कार्य हुए हैं। छोटी 1000 हे० तक की झीलों में यहाँ के जीव-वैज्ञानिक मछलियों और प्लवकों आदि आवश्यक प्राणियों की पायी जाने वाली प्रजातियों को समूल नष्ट कर केवल वाञ्छित मछलियों और अन्य प्राणियों को ही पालते हैं। इस प्रकार नियन्त्रण से प्रति हेक्टर उत्पादन बढ़ा लिया गया है। बड़े जलाशयों में उत्पादन 48 किलो प्रति हेक्टर तक पहुँच गया है तथा छोटी 100 हे० तक की झील में 90–164 किलो प्रति हेक्टर तक हो गया है। भारतवर्ष का औसत उत्पादन अभी केवल 9 पौण्ड प्रति एकड़ ही है जो बहुत कम है। कुछ चुने हुए जलाशय जैसे मैटूर, गांधीसागर आदि में उत्पादन सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है। ऐसे जलाशयों के लिए युक्तिपूर्ण कार्यक्रम निम्नांकित उद्देश्य ध्यान में रखते हुए बनाना चाहिये तथा इसके बाद ही जलक्षेत्र का पूरा-पूरा उपयोग हो सकेगा।

(1) जलक्षेत्र के प्राणि-जीवन और पादप-जीवन का विस्तृत सर्वेक्षण कर वहाँ पर प्राप्त मछलियों के अनुपात का अध्ययन कर यह जानना कि उसमें व्यापारिक महत्व की कौन-कौन-सी मछलियाँ प्राप्त हैं।

(2) प्रमुख मछलियों तथा उन जलाशयों में प्राप्त अन्य प्राणियों के जीवन-चक्र का अध्ययन करना, जल का सर्वेक्षण कर मत्स्य-आहार का, विशेष रूप से प्लवकों का ज्ञान प्राप्त करना। इससे यह अनुमान लगाना सम्भव होगा कि इन परिस्थितियों में कौन-कौन-सी नयी मछलियाँ, किस आधार और संख्या में सञ्चय करना उपयुक्त होगा।

(3) व्यापारिक उपयोग की मछलियों की संख्या का अध्ययन कर यह ज्ञात करना कि उनमें विभिन्न जातियों का घनत्व है और प्रतिवर्ष कितनी संख्या में उनको पकड़ना चाहिये। समयानुसार अन्य आवश्यक विषयों का भी अध्ययन करना चाहिये।

उपरोक्त प्राथमिक सूचना ज्ञात करने के बाद उसके आधार पर विकास कार्यक्रम निम्नलिखित रूप में बनाये जा सकते हैं :—

(1) जलाशय की भौतिक परिस्थितियों में सुधार कर उन्हें मत्स्योत्पादन के अनुरूप तैयार करना।

(2) संचय की उचित व्यवस्था करना और कार्यक्रम बनाना।
(3) संरक्षण-व्यवस्था की तैयारी करना।
(4) वैज्ञानिक पद्धति पर अनुपातित और नियन्त्रित मछली पकड़ने की व्यवस्था करना।

जलाशय में मछली की वृद्धि, प्रजनन और सफल मत्स्य-ग्रहण के लिए जलाशयों के तल को एक सा बना देना और साफ कर देना बहुत आवश्यक है। इसमें से ठूंठ, पत्थर, चट्टानें आदि निकाल देने से मछली पकड़ने के जाल सफलतापूर्वक लगाये जा सकते हैं और पर्याप्त मछली पकड़ी जा सकती है। मछली पकड़ने के लिए उपयोगी स्थानों का चयन करना और तदनुसार उनका सुधार भी आवश्यक है। इन सबके साथ मत्स्य-प्रजनन और उत्पादन के लिए अनुकूलतम जलस्तर का निर्णय करना और तदनुसार जलस्तर बनाये रखने के लिए नियम बनाना भी अति आवश्यक है। भारतवर्ष में मत्स्य-उत्पादन को उचित स्थान नहीं दिया गया है तथा इसे केवल अतिरिक्त उत्पादन समझते हुए गौण माना गया है। वास्तव में मत्स्य-संचालन व्यवस्था के अनुरूप अनुकूलतम जलस्तर आदि के विशेष नियम बना कर उनका पालन करना मत्स्य-उत्पादन के लिए बहुत आवश्यक है।

जलाशय निर्माण के बाद नदी के जल की अस्थिर-जलीय-परिस्थितियों के स्थान पर स्थिर-जलीय-परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है और इस कारण मछलियों के कुछ प्रजनन स्थल भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार की बदली हुई परिस्थितियाँ कुछ मछलियों के लिए हानिकारक होती हैं परन्तु साधारणतः मत्स्य-उत्पादन के लिए हितकर होती है। मछलियों के आहार में भी अन्तर आ जाता है। ऐसी दशा में परिस्थितियों के अनुकूल नवीन मछलियाँ लाकर उन जलाशयों में सञ्चय करना उचित होता है। ये मछलियाँ ऐसी हों जो बढ़ने के साथ ही साथ प्रजनन भी करती रहें।

कारखानों से बहकर आने वाला व्यर्थ रासायनिक पदार्थ कभी-कभी बड़ी भयानक स्थिति उत्पन्न कर देता है। विभिन्न उद्योगों से निकले हुए पदार्थों में भिन्न-भिन्न रासायनिक तत्वों के विशेष अनुपात होने के कारण इनका प्रभाव भी अलग-अलग होता है। ऐसे स्थानों पर ऐसी व्यवस्था का कड़ाई से पालन किया जाय जिससे व्यर्थ पदार्थ बहाने के पूर्व क्लीव बना दिया जाय। अतः ऐसे रासायनिक पदार्थों और उद्योगों का गहन अध्ययन, उनका परीक्षण और उनके निकास की हानिरहित व्यवस्था, मत्स्य-उत्पादन के सफल कार्यक्रम के लिए अति आवश्यक है।

जलाशयों की मछलियों में हिंसक मछलियों और छोटी चारा-मछलियों की बहुतायत हो सकती है। इनको कम करने के लिए अधिक मात्रा में मारना और सीमित क्षेत्रों में विष द्वारा नष्ट कर देना उचित रहता है। ऐसे प्रयोग रूस और अमेरिका की कुछ झीलों में सफलतापूर्वक किये गए हैं। विस्तृत जलक्षेत्रों में इसके प्रयोग और सफलता की

सम्भावना सीमित ही रहती है। वहाँ पर अनचाही मछलियों को नष्ट करना और हिंसक प्रजातियों को पाल कर चारा-मछलियों का उपयोग किया जा सकता है। हिंसक-मछलियों का नियन्त्रण भी आवश्यक है। केवल व्यापारिक महत्त्व की मछलियों का पालन ही ठीक रहता है और अन्य को नष्ट करना आवश्यक है। जलाशय में पहला पानी भरने से पूर्व हिंसक-मछलियों का नियन्त्रण किया जा सकता है। अधिकांशतः ऐसे बाँध नदी के ऊपरी भाग पर बनाये जाते हैं। विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जहाँ नदी बारहमासी नहीं होती है तथा गर्मी में कुछ गहरे डाबर ही रह जाते हैं। ऐसे छोटे-छोटे डाबरों से मछली पकड़ना अति सरल कार्य होता है। डाबरों से मछली पकड़ने के लिए जाली, विष-प्रयोग अथवा विस्फोटकों की सहायता से कार्य किया जा सकता है। ऐसा करने के बाद हिंसक-मछली और चारा-मछली के बढ़ने की सम्भावनाएँ कम ही रह जाती हैं।

जलाशयों में सञ्चय के लिए बहुतायत से मिलनेवाली प्रजातियों के मत्स्य-बीज का उपयोग किया जा सकता है। यदि बाँधों में जलपौधे बढ़ गये हों तो पौधे-भोजी मछलियाँ जैसे गौरामी, सामान्य शफर इत्यादि पालनी चाहिये। यह आवश्यक है, कि जलाशय में उपलब्ध सभी मत्स्य-आहार का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय। यदि आवश्यक हो तो कुछ विदेशी मछलियों का उपयोग भी किया जाय। परन्तु ऐसे जलाशयों में संचय किये जाने वाले मछलियों के बच्चों का आहार भी आवश्यक है। बड़े जलाशयों में कम से कम 15 से०मी० के मीन-शिशु सञ्चय करने चाहिये। नवीनतम अध्ययन के आधार पर प्रौढ़ और बड़ी मछलियों का सञ्चय, उत्पादन-वृद्धि और प्रजनन के लिए आवश्यक है। इस प्रकार के प्रयोगों से मध्य प्रदेश के कुछ जलाशयों से शीघ्र उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। तथापि यह आवश्यक है कि मत्स्य-बीज की प्राप्ति के लिए प्रत्येक जलाशय के निकट एक मत्स्य-बीज-प्रक्षेत्र बनाया जाय। इससे परिवहन पर अनावश्यक व्यय बच सकेगा तथा यात्रा में कुछ मछली अंगुलिकाओं की हानि बच सकेगी। मछलियों के छोटे बच्चे अधिप्लवन कपाटों के खोलने पर उसके नीचे प्रचुर मात्रा में एकत्र मिलेंगे। यदि फिशपास बना होगा तो यह स्वतः ही जलाशय में आ सकेंगे, अन्यथा इनको एकत्र कर सञ्चय करने की व्यवस्था करनी होगी। रूसी विशेषज्ञों के मतानुसार विशेषतः नवीन जलाशयों में मछलियों के साथ-साथ कुछ-कुछ चुने हुए आहार के प्लवक का सञ्चय करना भी आवश्यक है।

मत्स्य-बीज सञ्चय

ऐसे जलक्षेत्रों को किस संख्या के अनुपात में सञ्चय किया जाय, इसके बारे में अभी भी ज्ञान प्रयोगात्मक स्थिति में हैं। फिश-सीड कमेटी (1966) ने अपने प्रतिवेदन में जलाशयों में 500 फिंगरलिंग प्रति हेक्टर सञ्चय करने का अभिस्ताव किया है। मध्यप्रदेश में हुए

अनुभवों के आधार पर पाँचवी पंचवर्षीय-योजना के कार्यक्रम में सञ्चय की निम्नांकित रूप में व्यवस्था की गयी है :—

	जलाशय	सञ्चय (अंगुलिकाएँ प्रति हेक्टर)
1.	41 हेक्टर से 200 हेक्टर	1250
2.	200 से 1000 हेक्टर	1250
3.	1001 से 4000 हेक्टर	750
4.	4001 से 12000 हेक्टर	500
5.	12000 से अधिक	250

सञ्चय करने से पूर्व और संख्या तय करते समय उपलब्ध मछलियों की संख्या, और आहार के स्रोतों का उचित अनुपात लगाना होगा। इस कार्य के लिए प्रचलित वैज्ञानिक पद्धतियाँ जैसे टेगिंग आदि का उपयोग करना चाहिये।

अधिकांश जल क्षेत्रों में कुछ वर्षों बाद मछली वढ़कर, प्रजनन करना शुरू कर देती है और इस प्रक्रिया से मछली को जलाशय में स्थापित होना समझा जाता है। ऐसी परि-स्थितियों में जलाशय का पुनः सञ्चय करना आवश्यक नहीं होता है। भारतीय प्रमुख शफर मछलियाँ जो स्वभावतः स्थिर-जलों में प्रजनन नहीं करती है। इन बाँधों के किनारों के पास उथले स्थानों में प्रजनन करना प्रारंभ कर देती है। ऐसे जलाशयों में सञ्चय फिर उसी समय आवश्यक हो जाता जब कि मत्स्याखेट अधिक होने के कारण, कोई मछली कम होने लगती है। तथापि एक बात तो निश्चित है कि जलाशयों में प्रारम्भिक सञ्चय बहुत अधिक संख्या में करना चाहिये। कभी-कभी बीज के अतिरिक्त वड़ी मछलियों का सञ्चय उचित समझा गया है, जिससे प्रजनन आरंभ हो सके। जलाशयों में मछली की कमी की स्थिति आरेचन (डिप्लीशन) न उत्पन्न होने पाये, इसके लिए मछलियों को मारना प्रारम्भ करने के वाद, सामान्यतः कुछ सीमित मात्रा में उनका सञ्चय करते रहना, भी अच्छा ही रहता है।

वड़े जलाशय के सुधार के लिए यह आवश्यक है कि सर्वेक्षण के वाद यदि आवश्यक समझा जाय और अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध हों तो, फिशलेडर्स या फिशपास का निर्माण करवा देना चाहिये। यद्यपि भारत में अभी तक ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है तथापि नदी के नीचे के भाग में वाँध वाँधने पर यह स्थिति आ सकती है। इन फिशपासों के द्वारा नदी के नीचे के भाग में, पायी जाने वाली मछलियाँ जलाशय में आने लग जायेंगी और स्वतः सञ्चय में वृद्धि हो जायगी।

जलाशयों में मछलियों की हानि का भय बिजली उत्पादन की टवीइन्स मशीनों, सिंचाई की नहरों आदि से रहता है। ऐसे उपकरणों से होने वाली हानि बचाने के लिए जाली लगायी जा सकती है, जिन्हें फिश-स्क्रीन कहते हैं। इस प्रकार के प्रयोग पश्चिमी देशों में बहुत हुए हैं। स्थायी जाली मलवे के कारण रुक जाती है और कार्य सुचारु रूप से नहीं हो पाता है। अतः घूमने वाली जाली तथा बिजली की स्क्रीन अथवा बिजली की धारा द्वारा नियन्त्रण भी किया जाता है। बिजली की धारा पानी में निरन्तर बहती रहती है जिसके करेण्ट के भय से मछली उस ओर बिलकुल ही नहीं आती है। रूसी विशेषज्ञों ने फिश-लॉक्स को अधिक उपयोगी पाया है तथा उसी का प्रयोग किया है। यह आवश्यक है कि, जलाशय की निर्माण योजना और निर्माण व्यय प्राकलन में पहले से ही प्रावधान करा देना चाहिये। इसके लिए जलाशय निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था से ही मछली की व्यवस्था के लिए मत्स्य-विशेषज्ञ का सहयोग आवश्यक है।

इन जलाशयों में और आसपास की नदी में भी संरक्षण की आवश्यकता होती है। ऐसे स्थानों पर छोटी मछली का मारना रोक देना चाहिये। बाँध के नीचे दो तीन मील की दूरी तक मछली मारने पर रोक लगाना आवश्यक है यही वह स्थान है, जहाँ मछलियों के बच्चे आकर इकट्ठे होते हैं। यदि बाँध के ऊपर नदी में कहीं पानी का प्रपात है, तो वहाँ भी मत्स्याखेट पर रोक लगाना आवश्यक है। बाँधों में और उसके आसपास सभी प्रजनन स्थलों का पता लगाना चाहिये तथा ऐसे सभी स्थलों को प्रतिबन्धित स्थल घोषित कर देना चाहिये, जिसके फलस्वरूप वहाँ मछली पकड़ना रोक दिया जायेगा। पानी निकालने वाली नहरों, नालियों तथा ऐसे दरवाजों से पानी निकालने की मात्रा इस प्रकार नियन्त्रित कर निकालनी चाहिये, जिससे मछलियों की हानि न हो सके।

जलाशयों में अधिप्लवन-वार (वेस्ट वेयर) से भी मछली की हानि होती देखी गयी है। हानि कितनी होगी इसका अनुमान वार कितने दिन चलता है और किस तरह का बना है, इस पर निर्भर करता है। जमीन के स्तर पर बनाये गये सपाट वेस्ट-वेयर से मत्स्य-हानि की सम्भावना बहुत रहती है इस प्रकार की हानि का वैज्ञानिक अध्ययन परीक्षण अभी तक नहीं हो पाया है। कहीं-कहीं वेस्ट-वेयर के द्वारा मछलियाँ बाँधों में आती देखी गयी हैं और जलाशय के उत्पादन पर इसका प्रभाव स्पष्ट पड़ता है। ये हानि वेस्ट-वेयर चलने पर 25-50% तक आँकी गयी है।

मत्स्याखेट

बाँधों और जलाशयों में मछली मारने की सफलता, उचित स्थानों पर ही मछली पकड़ने पर निर्भर करती है। ऐसे स्थानों पर ही अधिक मछली मिल सकती है। इसके लिए मछलियों के विचरण का अध्ययन बहुत आवश्यक है। मछलियाँ विभिन्न मौसमों में

तथा प्रतिदिन आहार के लिए और सुरक्षा आदि के लिए विचरण करती रहती हैं। स्थान विशेष की ओर जाती अथवा आती हुई मछलियाँ पकड़ी जा सकती हैं। यदि सही अध्ययन कर लिया जाय और सही जाल का प्रयोग किया जा सके तो 6 घण्टे में प्रति जाल 75 किलो तक मछली पकड़ी जा सकती है। यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि मछली मारना नियन्त्रित हो, और सीमित हो।

जलाशयों में उपलब्ध मछलियों के आधार पर पकड़ी जाने वाली मछलियों की संख्या निर्धारित की जा सकती है। अतः जलाशयों में मछली की संख्या और उनके बढ़ने की संख्या का अध्ययन करना चाहिये। इस प्रकार के अध्ययन से मछलियों के पकड़े जाने का निर्णय लिया जा सकेगा, जिसमें मछलियों के पकड़े जाने का अध्ययन भी सम्मिलित है। तात्पर्य यह है कि एक ही आयु की मछलियाँ ही न पकड़ी जावें। अनियन्त्रित मछली पकड़ने से तथा एक ही प्रकार के जालों के प्रयोग से एक ही आयु की मछलियों की क्षति (डिप्लीशन) हो जाती है। यह क्षति स्पष्ट हो जाने पर उस प्रजाति विशेष की मछलियों का पकड़ना कुछ समय के लिए बन्द कर दिया जाता है तथा पुनर्स्थापन के वाद भी उस मछली का पकड़ना पुनः शुरू किया जाता है।

जलाशयों में मछली पकड़ना भी विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि यहाँ सब प्रकार के जालों का उपयोग सफलता से नहीं किया जा सकता है। जलाशयों की गहराई, विस्तार के साथ-साथ नितल पर अवरोध होना भी मत्स्याखेट की समस्याएँ हैं। जलाशयों से अधिक मछली पकड़ने की सफलता के लिए, केन्द्र और राज्यों के मत्स्याखेट विशेषज्ञ निरन्तर खोजबीन कर रहे हैं। इसके लिए वर्तमान जालों के निर्माण कार्य में सुधार किया जा रहा है। वर्तमान जालों में गिलनेट या फसला ही अधिक उपयोग किया जाता है। यह आयताकार जाल रेशम या कृत्रिम धागे नायलोन से वनाया जाता है इसके ऊपरी सिरे पर मजबूत किन्तु पतली रस्सी लगायी जाती है, निचले हिस्से में रस्सी नहीं रहती है ऊपर प्लाव (फलोट्स) लगे होते हैं। यह तैरने वाली दीवार की भाँति जल में लगाया जाता है। यह जाल स्थिर करके भी लगाये जाते हैं। तीन स्तरों पर, जल के ऊपर, जल के मध्य में (स्कम्भ में) तथा नितल में भी इनके लगाये जाने की प्रथा है।

इन जालों के फन्दे छोटे-बड़े आकार के होते हैं, और पकड़ी जाने वाली मछली के अनुसार ही विभिन्न आकार के फन्दों का जाल प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः 2.5 से० मी० से 10 से० मी० तक का फन्दा प्रयोग होता है। इन जालों की गहराई $3\frac{1}{2}$ मीटर तक होती है इनकी लम्बाई निश्चित नहीं है। इनके 30 मी० लम्बे अनेक टुकड़े एक साथ प्रयोग किये जाते हैं।

इन जालों को बहुधा सायंकाल लगाया जाता है और सुबह निकाल लिया जाता है। इनमें मछलियाँ गलफड़ों से पकड़ी जा सकती हैं अथवा उलझ जाती हैं। सूत के जाल

भारी होकर इस लायक नहीं रहते कि उनमें मछली उलझ जाय, इसलिए कृत्रिम रेशे के जाल अधिक अच्छे और उपयोगी माने जाते हैं।

इन जलाशयों में इन्जन लगे बड़े जहाजों से "ट्राल जाल" उपयोगी नहीं हो सकते, क्योंकि हमारी मछलियाँ झुण्ड में रहने की आदी नहीं होती हैं। इन्जनयुक्त छोटी नौकाएँ ऐसे जलाशयों में अधिक उपयोगी पायी गयी हैं। इनका उपयोग मछली एकत्र करने के लिए परिवहन आदि कार्यों में किया जाता है।

इन जलाशयों के आकार विकास के लिए उपलब्ध धनराशि, परिस्थितियों के नियन्त्रण की सीमाएँ और मछुओं की संख्या पर निर्भर करते हुए ही जलाशयों से मत्स्य-उत्पादन का विकास किया जा सकता है। विकास कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने के पूर्व विभिन्न प्रकार के जैविक, भौतिक और रासायनिक अध्ययन किये जाते हैं। इसके द्वारा उपलब्ध परिस्थिति के लिए उपयोगी मछली को छाँटा जा सकता है। पर्याप्त मात्रा और संख्या में वृद्धि करने के लिए मछलियों का आहार, प्रजनन की परिस्थितियाँ आदि प्रदान करने के साथ-साथ शत्रुओं की संख्या भी कम करनी होती है। मछलियों का सञ्चय तथा वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर सीमित मत्स्याखेट करने से निरन्तर स्थायी उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

१२

नदियों में मत्स्योत्पादन

भारत में नदियों का विस्तार बहुत अधिक है। भारत में नदियों की लम्बाई लगभग 27,500 किलोमीटर है। नहरें और सिंचाई की नालियों की लम्बाई 1,15,000 किलोमीटर से अधिक की आँकी गयी है। भारत की नदियाँ प्रमुखतः पाँच भागों में बाँटी जाती हैं :—

(1) गंगा और उसकी सहायक नदियाँ।
(2) पूर्वी-तट की नदियाँ।
(3) पश्चिमी-तट की नदियाँ।
(4) ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियाँ।
(5) सिंध और उसकी सहायक नदियाँ।

गंगा और उसकी सहायक नदियाँ—ये नदियाँ उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल प्रान्त से होकर बहती हैं। इस समूह में गंगा, यमुना, चम्बल, कोसी, सोन, गोमती, गंडक, दामोदर इत्यादि नदियाँ आती हैं। इस क्षेत्र में औसतन 75 से 200 से० मी० वर्षा होती है। इन नदियों को हिमालय के दक्षिण-भाग का बहा हुआ पानी प्राप्त होता है। इस नदी-समूह में प्राकृतिक मछलियों का प्रचुर भण्डार है। अतः इनका व्यापारिक महत्त्व है।

पूर्वी-तट की नदियाँ—इनमें गोदावरी, कृष्णा, कावेरी प्रमुख हैं। ये आन्ध्र, मैसूर, मद्रास प्रान्त में बहती हैं। इनमें पश्चिमी-घाट के पूर्वी अञ्चल, महादेव पहाड़ियों के दक्षिणी-भाग और मलिकाला पहाड़ियों का गर्म-पानी बह कर आता है। इस पानी के गुणों के अन्तर के कारण यहाँ की मछलियों में भी अन्तर पाया जाता है। इस क्षेत्र में 70 से० मी० से 150 से० मी० तक वर्षा होती है।

पश्चिमी-तट की नदियाँ—इनमें नर्मदा, ताप्ती और माही प्रमुख हैं। ये नदियाँ 45 से० मी० से 300 से० मी० तक वर्षा वाले क्षेत्र से होकर बहती हैं। इनमें पश्चिमी-

घाट के पश्चिमी-अञ्चल का पानी बहकर आता है। ये तीव्र गति से बहने वाली नदियाँ हैं अतः इनमें वे मछलियाँ पाली जाती हैं जो ऐसे पानी में रह सकती हैं। ये नदियाँ अपेक्षाकृत कम लम्बी और बारहमासी हैं। इन नदियों की कुल लम्बाई लगभग 3300 किलोमीटर है। ये मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र में बहती हैं।

ब्रह्मपुत्र की नदियों का समूह—इस समूह की प्रमुख नदियाँ ब्रह्मपुत्र और तिस्ता हैं। ये नदियाँ असम, त्रिपुरा तथा बंगाल प्रान्त में बहती हैं। इन नदियों में मध्य तथा पूर्वी-हिमालय के उत्तरी-ढलान का पानी बहकर आता है। इन नदियों में तीव्र गति से बहने वाले पानी में रहने वाली मछलियों के अतिरिक्त, व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ अन्य मछलियाँ भी प्राप्त होती हैं।

सिंध-नदी की सहायक नदियाँ—ये नदियाँ पंजाब, हिमाचलप्रदेश तथा कश्मीर में बहती है। इस समूह में सिन्ध, झेलम, राबी, व्यास, चिनाव तथा सतलज हैं। इन नदियों में पानी हिमालय से बहकर आता है और इन नदियों की मछलियाँ लगभग गंगा के समूह के समान ही हैं, जिनमें व्यापारिक दृष्टि से महत्त्व की बहुत सी नदियाँ प्राप्त हैं। पाकिस्तान बन जाने के बाद इस नदी-समूह का बहुत-सा भाग पाकिस्तानी क्षेत्र में चला गया है।

नदियों में पायी जाने वाली व्यापारिक-महत्त्व की मछलियाँ

1. **गंगा एवं उसकी सहायक नदियाँ**—

कतला, रोहू, नरेन, महाशीर, रेवा, कालबास, पुटी, कोई, मागुर, सिंघी, सोल, पंगस, लोंची (पढ़िन), चिताला, सिंघाड़।

2. **ब्रह्मपुत्र एवं उसकी सहायक नदियाँ**—

रोहू, कतला, नरेन, कालवास, चाकलेट, महाशीर, चिताला, सिंघाड़।

3. **सिन्ध की सहायक नदियाँ**—

रोहू, सफेद-रोहू, रेवा, नरेन, कालबास, पुटी, चिताला, सिंघाड़।

4. **नर्मदा तथा ताप्ती की सहायक नदियाँ**—

कतला, सफेद-रोहू, रोहू, नरेन, महाशीर, सिंघाड़, पढ़िन, रेवा, कालबास, पुटी, कोई, मागुर, सिंघी, सोल, पंगस, पढ़िन, चिताला, बाटा।

5. **गोदावरी एवं उसकी सहायक नदियाँ—**

कतला, सफेद-रोहू, रेवा, नगेन्द्रम, संठरखोल, ब्राह्मण मीन, नरेन, कालबास, मागुर, महाशीर, सोल, पंगस, पढ़िन वाटा, सिंघाड़।

6. **कृष्णा—**

कतला, सिहिना रेवा, नगेन्द्रम, संठरखोल शफर, कालबास, कोई, मागुर, महाशीर, पंगस, पढ़िन, सफेद-रोहू, वाटा, सिंघाड़।

7. **कावेरी—**

कतला, बैन-केन्डाह, रेवा, शूकर मुख शफर, नगेन्द्रम, कारीमीन कालबास, चाकलेट महाशीर, कर्नाटक शफर, कोजीमीन, कोई, पंगस, पढ़िन, सफेद-रोहू, वाटा, सिंघाड़।

मछलियाँ

भारतवर्ष की नदियों में विभिन्न प्रकार की व्यापारिक महत्त्व की मछलियाँ उपलब्ध हैं। विभिन्न देशों की भौगोलिक स्थिति और जलवायु के अन्तर के कारण वहाँ पायी जाने वाली मछलियों की प्रजातियों में भी अन्तर है और कुछ मछलियों का वितरण सीमित है। एक क्षेत्र में प्राप्त मछलियाँ अन्य क्षेत्रों में नहीं पहुँच पाती हैं। भारत की नदियों में प्राप्त विभिन्न मछली-समूह निम्नलिखित प्रतिशत के अनुपात में उपलब्ध हैं :–

(1)	मेजरकार्प (प्रमुख शफर)	35·2%
(2)	कैट फिश (बिडाल मीन)	32·9%
(3)	सजीव मछलियाँ (लाइवफिश)	10%
(4)	झींगा (प्रान्स)	6·5%
(5)	मलिना (मलेट्स)	4·4%
(6)	फेदरवेक्स (पृष्ठपक्ष प्रजाति)	4·8%
(7)	विविध	4·9%
(8)	ईल्स (सर्पमीन)	0·7%
(9)	हेरिंग्स (बहुला प्रजाति)	0·6%

मेजरकार्प या प्रमुख-शफर भारत की नदियों की प्रमुख मछलियाँ हैं। इनका नदियों में विशेष और बहुगुण महत्त्व है। ये मछलियाँ भारत की पाली जाने वाली प्रमुख मछलियाँ हैं। ये नदियों की प्रमुख मछली होने के कारण वहीं पर प्रजनन भी करती हैं। अतः प्रमुख शफर-मछली के बीज का मुख्य स्रोत अभी भी नदियाँ ही हैं। परन्तु मछलियों का वितरण सामान्य न होकर सीमित है, जो भौगोलिक और नैसर्गिक वातावरण पर आधारित है।

व्यापारिक महत्त्व की हिंसक मछलियाँ
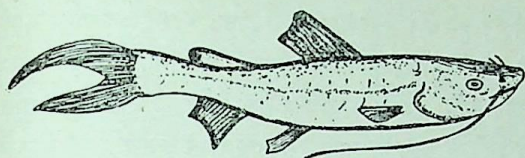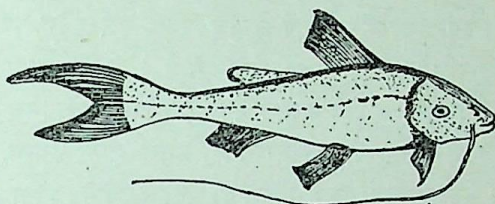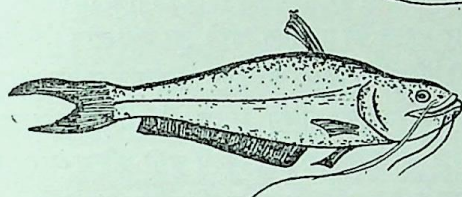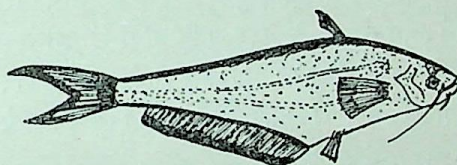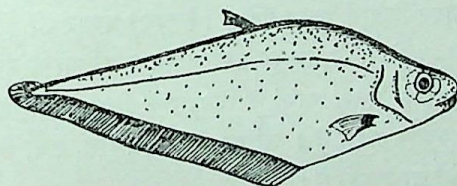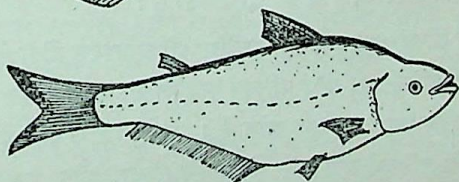
1. सिंघाड़ 2. मि. एओर 3. पावदा 4. लौंच 5. पतोला 6. सिलन्द

पृथक्-पृथक् अध्ययन करने पर पाया गया कि बहुत से नदीक्षेत्रों को मछलियों के उत्पादन के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। पञ्जाब तथा नीलगिरि की पहाड़ियों की नदियाँ और नाले ऐसे ही व्यर्थ पड़े हुए थे। विदेशी-मछली ट्राउट भारत में लाकर यहाँ के तालाबों में सञ्चय की गयी थी। यहाँ स्थापित होकर यह विदेशी सैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गयी है। इस प्रकार ट्राउट मछली का पालन सैलानियों को आखेट की सुविधा प्रदान कर मनोरंजन का साधन बनने के साथ ही साथ एक आय स्रोत के रूप में भी विकसित हो गया है। इसी प्रकार मिररकार्प हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पञ्जाब और नीलगिरि के ऊँचे स्थानों पर समुद्रतल से लाकर पाली गयी है और अब इस मछली का प्रचुर उत्पादन होने लगा है, जिससे उस क्षेत्र में खाने के लिए पर्याप्त मछली मिलने लगी है। इसी प्रकार दक्षिण-भारत की नदियों में उत्तरभारत की प्रमुख शफर कतला, रोहू और मिरगल का अभाव था। इन मछलियों का मछलियों की खेती में उपयोग होता है। मछली की खेती के विकास की संभावनाओं और महत्त्व को दृष्टिगत करते हुए जल-जीव वैज्ञानिकों ने इन मछलियों को दक्षिण-भारत की नदियों में सञ्चय करने की आवश्यकता का अनुभव किया। इन कतला, रोहू तथा मिरगल मछलियों का दक्षिण भारत की नदियों में सञ्चय कराया गया और अब ये मछलियाँ वहाँ इतनी फैल गयी हैं कि ये सभी दक्षिण-भारत की नदियों में पायी जाने लगी हैं। दक्षिण के कुछ राज्य तो इन मछलियों के बीज के लिए स्वावलम्बी भी हो गये हैं। तमिलनाडु के मेटूर आदि बाँधों में कतला का प्रचुर उत्पादन हो रहा है। कुछ ऐसी मछलियों को जो मीठे और खारी दोनों प्रकार के पानी में रह सकती हैं नदियों में पालकर नदी की मछलियों को बढ़ाया जा सकता है।

विदेशी अथवा देशी मछलियों का सञ्चय ही नदी की मछलियों की वृद्धि नहीं कर सकता है। नदी में मत्स्य-उत्पादन-क्रियाएँ 'मत्स्य-ग्रहण' (केप्चर) प्रकार की हैं और इस प्रकार के मत्स्य-क्षेत्रों को केवल मछलियों के सञ्चय तथा नवीन प्रजातियों के प्रवेश से ही बढ़ाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों के 'मत्स्य-ग्रहण' के विकास के लिए मछली के संरक्षण की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। उचित संरक्षण-प्रणाली तथा नियमन से ही, मछली की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

नदियों की संरक्षण व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक होती है कि वहाँ पाली जाने वाली मेजरकार्प मछलियों का बीज प्रतिवर्ष पर्याप्त संख्या में एकत्र किया जाता है। नदियाँ मछली के बीज का एक मुख्य स्रोत हैं। अभी तक के अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतिवर्ष प्रजनन से होनेवाली संख्या वृद्धि, मत्स्य-बीज के एकत्र करने के बाद भी बहुत रहती है, और बीज एकत्र करने का कोई प्रतिकूल-प्रभाव मछली की संख्या पर नहीं पड़ता है। वास्तव में यह बीज नदी के उस उथले भाग से एकत्र किया जाता है

जो साधारणतः सूखा रहता है और जहाँ केवल बाढ़ के कारण ही पानी भर जाता है। ऐसे क्षेत्रों के सूखने पर इन मीनशिशुओं की हानि का भय रहता है, तथा इस प्रकार उनका संग्रह, इनकी रक्षा ही है।

नदियों को उचित स्थलों पर बाँध से बाँधा जाता है, जिसका प्रमुख उपयोग बाढ़-नियन्त्रण, विजली-उत्पादन तथा सिंचाई के लिए किया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में बाँध के नीचे और मुहाने पर जहाँ पानी रुकता है, नदी की मछलियाँ एकत्र होती हैं और वहाँ मछुओं को मछली-मारने में सरलता रहती है। इसी प्रकार बाँध के ऊपरी हिस्सों में पानी निरन्तर रुकने के कारण वहाँ साद मिट्टी इकट्ठी होने लगती है जिससे वहाँ के वातावरण में अन्तर आने लगता है और जो उपलब्ध मछलियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इन सब परिस्थितियों के कारण नदियों में मछलियों की कमी होने लगती है और इस क्रिया के फलस्वरूप मछलियाँ समाप्त भी हो जाती हैं।

अतः मछलियों की हानि रोकने और मछलियों की संख्या को पर्याप्त बनाये रखने के लिए उचित अध्ययन के पश्चात्, संरक्षण-व्यवस्था प्रभावशील करने का प्रयत्न किया जाता है। मत्स्य-संरक्षण-व्यवस्था से साधारणतः यह आशय है कि, मछली-निकालने की क्रिया प्रतिबन्धित और सीमित हो जाती है, जिसके फलस्वरूप अधिक मत्स्य-उत्पादन निरन्तर प्राप्त किया जा सकता है। संरक्षण-व्यवस्था को विस्तार से समझने के पूर्व आरेचन (डिप्लीशन) का प्रभाव विस्तार से समझना आवश्यक है।

आरेचन "डिप्लीशन"

साधारणतः यह अनुभव किया गया है कि मछुए यदि मुक्त होकर मनमाने तरीके से मछली मारते हैं और उन पर किसी प्रकार की देख-रेख तथा नियन्त्रण नहीं रहता है तो वे अनियन्त्रित रूप से मछली मारते रहते हैं। ये मछुए मछली और नदी की मत्स्य-संख्या आदि का ध्यान बिल्कुल नहीं रखते। उनका उद्देश्य तो उस समय अधिक से अधिक मछली प्राप्त करना रहता है। वे इस अनियन्त्रित मत्स्य-ग्रहण का प्रभाव समझते नहीं हैं, और इसका परिणाम मछली के आरेचन (डिप्लीशन) के रूप में प्रकट होता है।

साधारण भाषा में आरेचन उपलब्ध मात्रा से अधिक मछली मारने के कारण हुई मछली की कमी है। आरेचन का पता निम्नांकित लक्षणों से लग सकता है :—

1—मछली मारने की प्रति इकाई श्रम में मछली की मात्रा में कमी।

2—किसी आयु अथवा लम्बाई विशेष की मछलियों की कमी हो जाने से, अथवा प्रारम्भिक अवस्था में ही मछलियों के अधिक पकड़े जाने से।

आरेचन (डिप्लीशन) ऐसी क्रिया है, जिसे सरलता से एक ही दृष्टि में आँका नहीं जा सकता है। इसको सैद्धान्तिक रूप से पता लगाने के तरीके उपलब्ध हैं, तथा

निम्नांकित सूत्र की सहायता से इसका पता लगाया जा सकता है। वर्ष के अन्त में होने वाली मछली की मात्रा (भार) का पता लगाने का सूत्र निम्नलिखित है :—

म०भा०=म०भा० 1+4 उ०+बा०–(प्रा०हा०+म० ग्र०)

अर्थात् म०भा०=वर्ष के अन्त में होने वाली मछली का भार

म०भा० 1=वर्ष के प्रारम्भ में मछली का भार

उ०= संचय अथवा उत्पत्ति से मछली की वृद्धि

बा०= मछलियों की बाढ़

प्रा०हा०=मछलियों की प्राकृतिक हानि

म०ग्र०=मत्स्य-ग्रहण से हुई मछलियों की हानि।

उक्त सूत्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सञ्चय तथा उत्पत्ति से मछली की संख्या-वृद्धि और मछलियों की बाढ़ तथा मछलियों की प्राकृतिक हानि का मत्स्य-ग्रहण से सीधा सम्बन्ध है। यदि मत्स्य-ग्रहण इस क्रिया से (उ०=बाढ़–प्रा० हानि) कम रहेगा तो आरेचन नहीं होगा। यदि मत्स्य-ग्रहण अधिक होगा तो आरेचन (डिप्लीशन) हो जायगा।

उपरोक्त सूत्र में वर्णित तथ्यों को सिद्धान्ततः समझना सरल है, परन्तु इनके क्षेत्र में जाकर अवलोकन तथा अध्ययन अपेक्षाकृत कठिन है। आरेचन केवल एक अथवा दो बार के आकड़ों से अथवा एक वर्ष के अध्ययन से पता नहीं लगाया जा सकता है। आरेचन को पहचानने के लिए लगातार अध्ययन और अवलोकन करना आवश्यक है। इसके लिए पकड़ी जाने वाली मछली की निरन्तर जानकारी प्राप्त करना और लगातार आँकड़े तैयार करना भी आवश्यक है। यदि किसी क्षेत्र में आरेचन हो जाता है तो उस क्षेत्र के मत्स्य-साधन को साधारण अवस्था में आने में काफी वर्ष लग सकते हैं।

संरक्षण

प्राप्त अनुभवों के आधार पर और भविष्य में आरेचन (डिप्लीशन) न होने देने के उद्देश्य से, भारत के केन्द्रीय-शासन ने विभिन्न कारणों का पता लगाने और उनके असर को जानने के लिए विशेषज्ञ नियुक्त किये थे। इन विशेषज्ञों द्वारा बनाये गये नियमों के आधार पर अनियन्त्रित मछली पकड़ने पर रोक लग सकी। नदियों में मछली की हानि और आरेचन रोकने के लिए निम्नांकित कारण साधारणतः महत्त्वपूर्ण पाये गये हैं, जिन पर नियन्त्रण करना आवश्यक है :—

(1) **विष प्रयोग**—मछुए सीमित गहरे जलों में विष प्रयोग कर हर तरह की मछली मार लेते हैं। स्थानीय कुछ पेड़ों की छाल, फल, पत्ती आदि को पानी में मिला दिया जाता है। इसके फलस्वरूप जल विष-युक्त हो जाता है और सभी जातियों की मछलियाँ

मर कर ऊपर आ जाती है। इस क्रिया से पानी की सभी मछलियाँ एक साथ मर जाती हैं, अतः इस विधि पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है।

(2) **विस्फोटक-पदार्थों का प्रयोग**--ये विस्फोटक-पदार्थ, सीमित गहरे जलों में विस्फोट किये जाते हैं, जहाँ गर्मी की ऋतु में मछलियाँ आश्रय के लिए एकत्र होती हैं। यह विस्फोट जो जल में ही होता है धक्के के कारण मछली को अव्यवस्थित कर उसका सन्तुलन बिगाड़ देता है, मछली को घायल कर देता है अथवा मछली को मार देता है। इस प्रकार पूरी-पूरी मछलियाँ मछुओं की पकड़ में आ जाती हैं। इसमें भी सामूहिक हानि हो जाती है। इससे मछली की हानि तो होती ही है, साथ ही पानी भी आगामी कुछ काल के लिए मछलियों के रहने योग्य नहीं रहता है।

(3) **स्थिर-यन्त्रों का निर्माण**--पहाड़ी नदियों और नालों में तथा ऐसे स्थलों पर जहाँ साधारण आदमियों की पहुँच नहीं होती है, नदी में स्थिर यन्त्र अथवा बार बाँध दिये जाते हैं। जिसके फलस्वरूप सभी प्रकार की मछलियाँ तथा जल-जीव पकड़ लिये जाते हैं। यह सामूहिक हनन का तरीका है।

(4) **जाल के खानों पर नियन्त्रण**--स्वभाव से ही मछुए मछली पकड़ने के लिए सबसे छोटे खानों का जाल ले जाते हैं जिससे वे कम से कम समय में अधिकतम भार प्राप्त कर सकें। इसके द्वारा वे भले ही छोटी मछलियाँ पकड़ें, कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु इससे हानि यह है कि अपरिपक्व छोटी मछलियाँ या मछलियों का बीज भी पकड़ लिया जाता है, जो आगे जाकर वृद्धि प्राप्त कर, प्रजनन द्वारा मछलियों की संख्या में वृद्धि करता। मछलियों को निरन्तर प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है उन्हें बढ़ने दिया जाय और पकड़े जाने के पूर्व जीवन में कम से कम एक बार तो प्रजनन का मौका दिया जाय। इस प्रकार हर मछली लाखों शिशुमीन पैदाकर, संख्या-वृद्धि में सहायता करेगी जिससे मछलियों की संख्या स्थिर रह सकेगी। अतः यदि जाल पर नियन्त्रण लग जाता है तो मछली के बच्चे बचाये जा सकेंगे।

(5) **प्रतिबन्धित क्षेत्र और काल**--यह तथ्य मान्य है कि वर्षाकाल में मछलियाँ प्रजनन करती हैं। जहाँ मछलियाँ प्रजनन करती हैं ऐसे स्थानों पर इस काल में मछुए जाते हैं तथा बड़ी मात्रा में मनमाने ढंग से मछलियों का हनन करते हैं। इससे नदी-नालों के मत्स्य-जीवन पर दो प्रकार से विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार से बड़ी मछलियाँ तो भारी संख्या में मारी ही जाती हैं परन्तु इस समय असंख्य अंडे और छोटे शिशुओं की भी हानि होती है, जो नदी में बढ़ कर संख्या-वृद्धि में सहायता करते हैं। अतः यदि वर्षाकाल के दो-तीन मास प्रतिबन्धित घोषित कर दिये जायँ तो मछलियों को प्रजनन का पूरा-पूरा मौका मिलेगा तथा बच्चे नदी में पहुँच सकेंगे। ऐसे क्षेत्रों में मछुओं को कुछ सहायता

देने की दृष्टि से केवल काँटे से मछली मारने की सुविधा प्रदान की जा सकती है। नदी के ऐसे स्थल जहाँ मछलियाँ बड़ी संख्या में रहती हैं, "सुरक्षित-स्थान" घोषित कर देने से मछली मारने पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। इससे प्रौढ़ मछली के हनन पर नियन्त्रण होगा और नदी की मछली सुरक्षित रह सकेगी। मछली के प्रजनन-स्थलों पर, प्रजननकाल में मछली मारने पर प्रतिबन्ध भी आवश्यक हो जाता है।

(6) **अधिप्लवन-द्वारों के समीप मछली मारने पर प्रतिबन्ध**--बाँधों के अधिप्लवन-द्वारों, बाँधों के नीचे, एनीकटों के पास, मछलियाँ स्वभावतः एकत्र हो जाती हैं। ऐसे स्थानों पर मछुओं द्वारा बड़ी संख्या में मछलियाँ मारी जाती हैं।

(7) **समय और मछली का भार नियन्त्रित करना**--कहीं-कहीं मछली मारने को नियन्त्रित करने के लिए, मछली मारने के समय तथा प्रति लायसेन्स भार नियन्त्रित कर दिया जाता है परन्तु वह सामान्यतः हर जगह नहीं किया जाता है और इसका बहुत सीमित ही उपयोग है।

मछलियों का संरक्षण केवल मीठे पानी या अन्तर्देशीय जलों की ही समस्या नहीं है। यह हर प्रकार के क्षेत्रों में आवश्यक है। प्रजनन के लिए प्रवजन (माइग्रेशन) करनेवाली मछलियों को मारने पर मात्रा और जालों पर प्रतिबन्ध लगाना अधिक श्रेयस्कर होता है।

नियम

भारतवर्ष में मछली-मारने सम्बन्धी नियम बनाने का कार्य 19वीं शताब्दी के मध्य-काल के आसपास हुआ था। सर फ्रान्सिस डे के सर्वेक्षण के बाद यह कार्य किया गया था। भारतीय-मत्स्योद्योग-एक्ट-चतुर्थ सन् 1897 में पारित किया गया था। इस एक्ट में मत्स्योद्योग, मत्स्य-ग्रहण आदि की सही और नियमित परिभाषा दी गयी थी। लोक-जलक्षेत्र और व्यक्तिगत-जलक्षेत्रों को अलग-अलग किया गया था और सभी प्रकार के जलक्षेत्रों में शासन के अधिकारों को स्पष्ट किया गया था। इस एक्ट के अन्तर्गत विष-प्रयोग, विस्फोटक का प्रयोग, अस्थिर इञ्जिनों के प्रयोग आदि पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। विविध प्रकार के जालों का वर्णन किया गया था, और छोटे खानों के जालों पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। विशेष प्रकार के जालों का प्रयोग भी बताया गया था। इसके अतिरिक्त विभिन्न-राज्यों द्वारा अपने-अपने जल-क्षेत्रों में अपनी आवश्यकता के अनुसार मत्स्योद्योग-एक्ट तथा नियम बनाने का प्रावधान किया गया था।

सबसे पहले सन् 1914 में पञ्जाब राज्य का मत्स्योद्योग-एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार सभी जल राज्य-शासन के संरक्षण में आ गये थे। मद्रास-प्रान्त का मत्स्योद्योग-एक्ट सन् 1929 में पारित हुआ, जिसके अनुसार राज्य का मत्स्योद्योग सुरक्षित किया गया था। इसके बाद सन् 1939 में बंगाल-प्रान्त का ऐक्ट पास हुआ, ऐक्ट के

अनुसार कोई भी जलक्षेत्र या तालाब अनुपयोगी नहीं रह सकेगा और सब तालाबों को सुधार कर मत्स्योद्योग के उपयोगी बनाया जा सकेगा। अब तक लगभग सभी राज्यों में ऐक्ट तथा नियम बनाये जा चुके हैं और प्रजनन-स्थलों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

मत्स्योद्योग का संरक्षण अब अन्तर्देशीय समस्या बन गयी है। पिछले सालों में संयुक्त-राष्ट्र-संगठन के "कृषि खाद्य- संगठन" ने समुद्र के भीतर एटोमिक (परमाणु) विस्फोटों के प्रभाव का अध्ययन कर यह पाया गया कि, इस प्रकार के विस्फोट समुद्री-मत्स्य के जीवन के लिए बहुत अधिक हानिकारक हैं। इस पर विशेष रूप से विचार किया गया। इन विस्फोटों के कारण मछलियों के आहार और उनके प्रजनन-स्थलों पर विशेष रूप से हानि का प्रभाव पड़ा है। "कृषि खाद्य संगठन" की "विश्व जलीय संसाधन समिति" के संरक्षण के लिए विशेष सभा आमन्त्रित की गयी ; उसमें पानी के अन्दर एटोमिक (परमाणु) विस्फोटों के प्रभावों की आलोचना की गयी और प्रतिकूल प्रभावों को प्रकाश में लाया गया।

कलुषीकरण (पोल्यूशन)

देश में उद्योगों की पर्याप्त वृद्धि हो रही है। वर्तमान-काल उद्योगीकरण का समय कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। हर प्रान्त औद्योगीकरण की दौड़ में आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा है। देश की अर्थव्यवस्था के लिए यह आवश्यक भी प्रतीत होता है। परन्तु इन उद्योगों का मत्स्योद्योग अथवा मत्स्य-जीवन पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। बड़े अथवा छोटे सभी उद्योग अपनी फैक्टरी का उत्प्रवाह (एफ्लुएण्ट) नालों और नदियों में प्रवाहित करते हैं। ये उत्प्रवाह जो विशेष प्रकार के रसायन घोल होते हैं, जल के वातावरण को कलुषित कर देते हैं और उसे मछलियों के रहने के योग्य नहीं रहने देते। यह क्रिया ही कलुषीकरण कहलाती है। कभी-कभी तो इस कलुषीकरण का प्रभाव इतना होता है कि उस क्षेत्र में किसी प्रकार के जीव नहीं रह सकते।

कलुषीकरण-प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रत्यक्ष कलुषीकरण में तो जलक्षेत्र तुरन्त ही मछलियों के रहने योग्य नहीं रहता है। दूसरे प्रभाव धीरे-धीरे होते हैं और इस कारण मत्स्य-भोजन और ओक्सीजन वायु की कमी होने के कारण मछलियाँ वातावरण में रह नहीं सकतीं। कलुषीकरण का अध्ययन नदी के बहाव, समुअंक (पी०एच०), ओक्सीजन वायु की घुलनशीलता आदि गुणों के लगातार अवलोकन से किया जा सकता है। पानी की जल जीवन जारज आवश्यकता (बी०ओ०डी०) और घुली ओक्सीजन का निरन्तर अध्ययन और उसका ग्राफ खींच कर कलुषीकरण को पहचाना जा सकता है।

विभिन्न उद्योगों का कलुषीकरण प्रभाव पृथक्-पृथक् होता है। लोह-उद्योग अथवा आम्ल-फैक्ट्री का उत्प्रवाह विषालु प्रभावकारी होता है। इसका प्रभाव मछलियों के गल-

फड़ों पर होता है और इससे मछलियाँ मर जाती हैं। इस प्रकार का जलक्षेत्र मछलियों के रहने योग्य बिलकुल भी नहीं रहता है। ब्रोमाइड-उद्योग तथा अन्य गर्म-उत्प्रवाह शरीर पर घातक प्रभाव डालते हैं। प्राकृतिक तेल के उद्योग का उत्प्रवाह भोजन-प्रणाली पर असर डालता है और मछली मर जाती है। कुछ उत्प्रवाहों का शनैः-शनैः प्रवाह होता है जिससे प्लवकजीवक नष्ट होने लगता है और ओक्सीजन कम होती जाती है अथवा पी०एच० भी प्रतिकूल सीमा में पहुँच जाता है।

कलुषीकरण मछली के प्रजनन को भी रोकता है। यह प्रवजन (माइग्रेशन) भोजन अथवा प्रजनन के लिए होता है। नदी के बीच में कलुषित क्षेत्र होने के कारण इधर से उधर मछली का आना रुक जाता है। इस कारण मछली का आरेचन हो जाता है।

भारतीय-कृषि-अनुसन्धान-परिषद् इसके बारे में अध्ययन कर रही है तथा विभिन्न उद्योगों के उत्प्रवाहों के प्रभाव की जाँच कर रही है जिससे उसके रोक के लिए प्रवन्धकारी सुझाव दिये जा सकें। यद्यपि उद्योग-नियमों के अन्तर्गत उत्प्रवाह को क्लीव करके छोड़ने की व्यवस्था की गयी है, परन्तु ऐसा बहुत कम हो पा रहा है। अतः इस ओर शासन का विशेष ध्यान होना चाहिये और आवश्यक हो तो पृथक् नियम बनाने की व्यवस्था आवश्यक है। यदि मत्स्य-जीवन और मत्स्य-उद्योग को बचाना है तो इस ओर पूरा-पूरा ध्यान देना आवश्यक है।

बाँधों का प्रभाव

नदी की मछली के जीवन पर बाँधों का भी प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। बिजली-उत्पादन, सिंचाई तथा बाढ़-नियन्त्रण के लिए नदियों पर योजनाओं के अनुरूप बाँध बनाये जा रहे हैं। यद्यपि बाँध बनाने के बाद शीघ्र ही प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है तथापि इसका शनैः-शनैः प्रभाव पड़ता है।

ये बाँध मछलियों के प्रवजन (माइग्रेशन) के लिए रुकावट डालते हैं, और अवरोधक का कार्य करते हैं। ये अवरोधक इतने ऊँचे होते हैं जिन्हें मछलियाँ पार नहीं कर सकती हैं और नीचे क्षेत्र की मछलियाँ ऊपर जहाँ उनके प्रजनन-स्थल होते हैं वहाँ नहीं पहुँच पाती हैं। इस सुविधा से वंचित होने पर मछलियाँ या तो अण्डे पचा लेती हैं अथवा अण्डे बाँधने की बीमारी से मर जाती हैं। इस प्रकार नदी-क्षेत्र में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जब मछली नदी की धारा में लुप्त हो जाती है।

बाँध बनने के कारण बाढ़ पर नियन्त्रण हो जाता है। इस प्रकार बाढ़ रुक जाने से, समुद्र से अथवा मिश्रित जलों से प्रजनन के लिए चढ़कर आनेवाली मछली की जातियाँ जो कभी बहुत मात्रा में पकड़ी जाती थीं, बिलकुल भी नहीं आती है। ये मछलियाँ केवल

बाढ़ से आकर्षित होती हैं, और पानी का प्रवाह कम होने पर नहीं आती हैं। भारत में ऐसी चढ़ने वाली मछलियाँ हिलसा तथा ईल्स है। कावेरी पर मैसूर बाँध बन जाने के कारण उसमें हिलसा मछली कम हो गयी है। इसका प्रभाव नदी के मुहाने से बाँध की दूरी पर अवलम्बित है। बाँधों के कारण मछलियों की आदतों पर भी प्रभाव पड़ता है।

मीन-मार्ग (फिश-पास)

यद्यपि बाँध बनने से स्थिर जल की एक बड़ी झील मत्स्य-पालन और निरन्तर मत्स्य-उत्पादन के लिए प्राप्त हो जाती है तथापि उपरोक्त वर्णित अन्य प्रभावों को भी भुलाया नहीं जा सकता है। मछलियों को प्रवजन की सुविधा देने तथा बाँध के अवरोधक प्रभाव को कम करने के लिए मीनमार्ग (फिश-पास या फिश-वे) बनाये जा सकते हैं। कहीं पर फिश-पास बनाने के पूर्व कुछ बातों का अध्ययन करना आवश्यक है, जिससे इस निर्माण पर होने वाला व्यय उपयोगी हो सके। फिश-पास के निर्माण के पूर्व ध्यान देने योग्य बातों में कुछ निम्नलिखित इस प्रकार है :—

(1) क्या किसी मौसम में मछलियों का प्रभावशील प्रवजन होता है ?
(2) क्या बाँध का अवरोधक प्रभाव इस प्रवजन पर गम्भीर रूप से पड़ेगा ?
(3) क्या यह मछली नवीन वातावरण में रह सकेगी ?
(4) क्या ये मछली फिश—पास में से तैरकर पार करने योग्य और मजबूत है ?
(5) क्या ऐसी मछलियाँ नहीं हैं, जो नदी में सञ्चय की जा सकें ?
(6) क्या मछलियों पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव इतना लाभकारी होगा कि इस फिश—पास के निर्माण का व्यय किया जा सके ?

सब तरफ से सन्तुष्ट हो जाने पर ही फिश—पास का निर्माण हाथ में लेना उपयोगी होगा। फिश—पास विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(1) फिश लेडर।
(2) फिश लिफ्ट
(3) फिश लॉक

इनके रूप और निर्माण आदि की व्यवस्था विशेष अनुभव के बाद ही तय की जा सकती है। इन पर शीघ्र ही निर्णय नहीं लिया जा सकता क्योंकि इनके आकार और रूप आवश्यकता के अनुसार स्थान-स्थान पर बदलते रहते हैं।

आदर्श फिश-पास आज तक बन नहीं पाये हैं। भारतवर्ष में अब तक बने फिश-पास पूर्णतः सफल नहीं हो सके हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि भारतवर्ष में फिश-पासों की आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस प्रकार का निर्णय लेना इस स्थिति में उचित नहीं होगा। वास्तव में हर एक बाँध के निर्माण के बाद ही उसके लिए हर तथ्य पर विचार करना आवश्यक

होगा और इस प्रकार के विचार के बाद ही कुछ निर्णय लेना उचित होगा, क्योंकि हर स्थान पर परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है ।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित उपायों के अनुरूप मछलियों का स्टाक सतत तैयार रखा जा सकता है और आरेचन रोका जा सकता है। इसकी सहायता से प्रावजन मछलियों को आने-जाने के लिए मार्ग की सुविधा मिलती रहेगी और उनको प्रजनन और भोजन की सुविधा प्राप्त होगी। उपर्युक्त उपायों के पालन से नदियों में मछली की संख्या को स्थिर रखकर उससे अधिक उत्पादन प्राप्त करने की व्यवस्था की जा सकेगी।

१३

मत्स्याखेट की प्रचलित पद्धतियाँ

सामान्यतः आन्तरस्थलीय जलों में जलाशय या तालाब का मालिक स्वयं ही मछली निकालने का कार्य नहीं करता है। यह कार्य मछली निकालने का काम करने वाले ठेकेदारों, मछुओं अथवा मछली-सहकारी समितियों के माध्यम से कराया जाता है। इस तरह मत्स्याखेट एक अलग ही क्रिया बन गयी है। मत्स्याखेट की प्रचलित पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं :—

(1) स्वत्वशुल्क या रायल्टी की विधि
(2) स्वत्वशुल्क सह नीलामी की विधि
(3) मत्स्याखेट और मत्स्य-क्रय की द्विटेण्डरीय विधि
(4) नीलामी की विधि
(5) विभागीय मत्स्याखेट विधि

(1) सत्वशुल्क या रायल्टी की विधि——इस विधि में, तालाब या जलाशय का मालिक तालाब से निकाली जाने वाली मछलियों के लिए, एक निर्धारित समय के लिए, मछलियों की जाति के अनुसार, प्रति टन या क्विंटल की स्वत्वशुल्क की दर नियत कर देता है। स्वत्वशुल्क की दरें, प्रतिवर्ष निम्नांकित सिद्धान्तों के आधार पर तय की जाती हैं।

(1) मछलियों की जातियों/भार के आधार पर
(2) तालाब से निकाली जाने वाली संख्या/भार के आधार पर

इस पद्धति में तालाब पर अच्छे कार्यकर्त्ता की देखरेख में यह कार्य कराया जाता है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, दामोदर वेली कार्पोरेशन आदि में इस पद्धति पर कार्य कराया जाता है। मध्यप्रदेश इस व्यवस्था का जनक कहा जा सकता है। इस व्यवस्था की प्रणाली में इसके लाभ और हानि दोनों है। इस प्रणाली के लाभ निम्नांकित हैं:——

(1) उत्पादन अधिकतम और स्थायी रहता है।
(2) मछली की कमी तुरन्त ही स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि प्रति इकाई उत्पादन कम हो जाता है।

(3) इच्छानुसार मछली-आखेट प्रारम्भ किया जा सकता और रोका जा सकता है। इससे 'बन्द ॠतु' लागू की जा सकती है।
(4) इस विधि से उत्पादन के सही आँकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं।
(5) विडाल मीन को निकालने में सुविधा रहती है।
(6) राज्य को अथवा मालिक को अधिक आय मिलती है।
(7) अपवञ्चन और छोटी मोटी चोरियों की गुंजायश कम रहती है।

इसकी हानियाँ निम्नांकित हैं :—

(1) इसके लिए ईमानदार और निपुण स्थानीय कर्मचारी चाहिये।
(2) इस तरीके से कुछ मात्रा में चोरी होने की संभावना रहती है। वैसे यह तरीका अब लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है, तथा अधिकांश प्रान्तों द्वारा अपनाया जा रहा है। पञ्चायतें भी इसी पद्धति को अपनायें तो इससे उनको तालाब से अच्छा मूल्य मिल जाता है और स्थानीय मछुए भी निर्धारित मूल्य प्राप्त कर लेते हैं।

(2) **स्वत्वशुल्क-सह-नीलामी की विधि**—इस पद्धति में स्वत्वशुल्क की दरें तय करने की अपेक्षा इन दरों के लिए नीलामी की जाती है और अधिकतम बोली पर स्वत्व-शुल्क की दर तय कर दी जाती है। इस प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार की मछलियों के लिए अलग-अलग दरें नियत की जाती हैं। गोविन्द-सागर (पंजाब) में इस प्रथा के अनुरूप सरकारी समितियों द्वारा लगायी गयी बोली से, 12% अधिक होने की दशा में ही बाहरी व्यक्ति को कार्य दिया जाता है। इस प्रणाली में (1) स्वत्वशुल्क की दरें मनमानी न रख कर, सोच-समझ कर बोली (दर) लगायी जाती है।

(2) इन बोलियों पर बर्फ संवहन और बाजार की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।
(3) इसमें राज्य की आय प्रतिस्पर्धात्मक दरों पर आगे बढ़ती है। परन्तु इसमें यह हानि है कि अधिक बोली लगाने वाला ठेकेदार स्थानीय मछुओं को काम न देकर बाहर से व्यक्ति ले आता है।

(3) **मत्स्याखेट की और मत्स्य-क्रय की ठेके की विधि**—यह प्रथा उत्तर प्रदेश में प्रचलित है। इस प्रथा में मत्स्याखेट करने की दरों के और तालाब से पकड़ी गयी मछली को उठाने की दरों के, दो भिन्न-भिन्न ठेका प्रस्ताव (टेण्डर) आमन्त्रित किये जाते हैं। इस विधि में इन ठेकों के कुछ नियम और शर्तें होती हैं। प्रमुख नियम और शर्तें प्रतिमास की मत्स्याखेट की सीमा, अग्रिम धनराशि, मछली और जाल का आकार, अन्य मत्स्य-कर्मियों को भी तालाब में भेजने की अनुमति तथा शर्तें न मानने पर दण्ड आदि प्रमुख होते हैं।

इन ठेका-प्रस्तावों (टेण्डरों) को टेण्डरबोर्ड के सम्मुख खोला जाता है। मत्स्याखेट के लिए निम्नतर दर और मत्स्य उठाने के लिए अधिकतम दर को स्वीकृत करके, कार्य कराया जाता है। दोनों ही पार्टियों से प्रतिभूति जमा करा ली जाती है।

यह प्रक्रिया (1) सामान्य और सरल है। (2) इसमें विभाग/तालाब के स्वामी को सञ्चय तथा सामान्य देखभाल के अतिरिक्त कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं रहता है। (3) मछली की चोरी कम हो जाती है। इस प्रक्रिया में तालाब में मछली कम हो जाती है तथा इससे सही आँकड़े नहीं मिल पाते हैं।

(4) **नीलामी की विधि**—इसमें तालाब की मछली को अधिकतम बोली पर नीलाम कर दिया जाता है। यह छोटे तालाबों में अधिक उपयोगी पायी गयी है। तालाब के सम्भावित उत्पादन का अधिकतम मूल्य देने वाले को यह कार्य दिया जाता है।

यद्यपि नीलामकर्ता नीलामी के समय मछली के आकार, जाल के फन्दे, मछली के मासिक आँकड़े देने की शर्तें और प्रतिबन्ध लगा देता है, परन्तु इनका पालन करना कठिन होता है। ठेका लेने वाला सीधे ठेके से अथवा अन्य किसी भी तरीके से अधिक से अधिक छोटी या बड़ी मछली निकाल कर लाभ लेने की सोचता है। इस विधि से तालाब के वैज्ञानिक उत्पादन और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मत्स्याखेट कर्ता कभी भी सही-सही उत्पादन के आँकड़े नहीं देता है।

नीलामी, बोली अथवा टेण्डर दोनों प्रकार से की जा सकती है। तथापि टेण्डर का तरीका अधिक सफल प्रतीत होता है। खुली बोली में एक स्थान पर एकत्र ठेकेदार आपस में मिलकर बोली को सीमित कर सकते हैं, और ऐसा देखा भी गया है। तथापि ठेका प्रस्ताव (टेण्डर) विधि में कहाँ-कहाँ से और किस-किस के प्रस्ताव होगें यह अज्ञात रहता है और ये वास्तविकता के निकट रहते हैं।

चर्चा—इन सभी प्रचलित पद्धतियों में स्वत्वशुल्क से मत्स्याखेट की पद्धति, मछुआ सहकारी समिति के माध्यम से कार्य सबसे अच्छा और उपयोगी पाया गया है। जब मछुआ सहकारी समितियाँ कार्य करती हैं तब चोरी कम से कम होती है तथा स्थानीय मछुओं को ही नियमित कार्य मिलता है। ऐसे स्थानों पर, जहाँ स्थानीय समितियों को कार्य दिया जाता है स्वत्वशुल्क की दरें इतनी कम रखी जाती हैं, जिससे कि बाजार भाव और स्वत्वशुल्क में इतना अन्तर अवश्य रहे कि मछुओं को पर्याप्त लाभ मिल सके।

स्वत्वशुल्क पद्धति से ठेकेदारीप्रथा को कोई लाभ नहीं होता। ठेकेदार इस प्रथा से हतोत्साह होते है। शनै शनैः उनकी रुचि इस धन्धे में कम होने लगती है। संभागीय मछुआ संघों के गठन और विक्रय-व्यवस्था इनके हाथों में आने से रहा-सहा कार्य भी ठेकेदारों से छिनता जा रहा है।

(5) **विभागीय मत्स्याखेट-विधि**--उपरोक्त मत्स्याखेट प्रथाओं के अतिरिक्त एक और विधि है, विभागीय मत्स्याखेट विधि। इस विधि में विभाग अपने जाल और नाव द्वारा अपने कार्यकर्ताओं से मत्स्याखेट कराते है। यह विधि भवानीसागर, मेटूर (तमिलनाडु), राधानगरी-जलाशय, महाराष्ट्र, हीराकुंड-जलाशय आदि में प्रचलित है। कार्य-कर्ताओं में प्रतिस्पर्धा कराने के लिए तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए मछुओं को सामान्य निर्धारित उत्पादन से अधिक उत्पादन देने पर बोनस देने की व्यवस्था की गयी है। इस विधि से उत्पादन के आँकड़े और सांख्यिकी तो पूरी होती ही है और यहाँ इच्छानुसार नये और उपयोगी जालों का उपयोग तथा प्रदर्शन भी किया जा सकता है। इस प्रकार के मत्स्याखेट में स्थानीय मछुओं को ही कार्य मिलता है।

परन्तु इस प्रकार की मत्स्याखेट की विधि में व्यय अधिक होता है। यह अकुशल प्रक्रिया है तथा इसमें मछली की चोरी होने की सम्भावना अधिक रहती है।

मत्स्योद्योग विकास में मत्स्याखेट का महत्त्व--जलाशयों में मत्स्याखेट दूरदर्शी कार्यक्रम बनाकर करना चाहिये। जलाशयों में मत्स्योद्योग का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें निरन्तर मत्स्योत्पादन करने का उद्देश्य रख कर व्यवस्था की जाती है। मत्स्योद्योग की भिन्न व्यवस्था क्रियाओं में मत्स्याखेट बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसी पर विकास कार्यक्रम की सफलता निर्भर करती है। यदि मत्स्याखेट त्रूटिपूर्ण हुआ तो मत्स्योद्योग विकास अस्थायी फलदायक ही रह जाता है। अतः यह आवश्यक है कि मत्स्याखेट की वही विधि अपनानी चाहिये, जिससे विकास कार्यक्रम निरन्तर चल सके और पूर्ण विकास का स्थायी प्रभाव हो सके। सही मत्स्याखेट के निम्नलिखित प्रभाव पड़ते है।

(1) इससे स्थायी (सदा मिलने वाला) अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है।
(2) उत्पादन की सही सांख्यिकी मिलती है।
(3) अवाञ्छित और माँस भोजी मछलियाँ निकलती हैं, और कम हो जाती है।
(4) अधिकतम आय प्राप्त होती है।
(5) मछली की चोरी कम से कम होती है।
(6) मछली अच्छी और ताजी स्थिति में मिलती है।
(7) स्थानीय मछुओं की सामाजिक और आर्थिक उन्नति होती है।
(8) मछुओं में सहकारिता की वृद्धि होती है।
(9) प्रशासन मितव्ययी और कुशल होता है।
(10) बाजार में स्पर्धा बनी रहती है।

अतः ऐसी ही मत्स्याखेट पद्धति का चुनाव करना चाहिये, जो अधिकांश या सभी बातें पूर्ण कर सके।

१४

मछलियों के रोग और उनका नियन्त्रण

अन्य जीवों की भाँति मछलियों के भी रोग होते हैं। इनका अध्ययन और ज्ञान मत्स्य-पालक के लिए आवश्यक है। क्योंकि इनमें से कुछ रोग संक्रामक होते हैं, जिनसे मछलियों की सामूहिक मृत्यु हो जाती है। ये बीमारियाँ मीठे पानी में अपेक्षाकृत अधिक होती है और मत्स्य-पालन-तालाबों में बहुतायत से होने लगती है। ये मत्स्य-कृषकों के लिए भयानक हैं। कृत्रिम परिस्थितियों में रहने से बीमारियाँ अधिक देखी गयी हैं तथा प्राकृतिक जलों में बीमारियाँ कम होती हैं। बीमारियों का बाहुल्य जलाशय में मछलियों के सञ्चय पर निर्भर रहता है। ये बीमारियाँ वहाँ अधिक पायी गयी हैं जहाँ मत्स्य-बीज अधिक मात्रा में सञ्चय किया जाता है। अतः यदि मत्स्य-पालक अधिक सञ्चय कर अधिक उत्पादन प्राप्त करना चाहता है तो यह भी आवश्यक है कि अतिरिक्त आहार प्रदान करने की दृष्टि से तालाब की सफाई का भी विशेष ध्यान रखे।

मछलियों के रोग सैकड़ों प्रकार के परजीवी और अपरजीवी, शारीरिक-क्षीणता आदि होते है। इस प्रकार के रोग के प्रभाव का प्रारम्भ होने के पूर्व, जल की परिस्थितियाँ खराब होने लगती है तथा मछलियों की रोगों को रोक सकने की क्षमता में कमी होने लगती है। मछलियों को पकड़ते समय अथवा परिवहन के समय, तनिक भी असावधानी होने पर लगी हुई शारीरिक चोटें परजीवी रोगों के शुरू होने के लिए अनुकूल रहती हैं। पूरी देखरेख और उचित व्यवस्था में रखे गये जलाशयों में बीमारियाँ नहीं देखी गयी हैं। सञ्चय के समय लापरवाही और अपर्याप्त आहार व्यवस्था में मछलियों के परजीवी रोग अधिक पनपते हैं और इसका अन्त सामूहिक मछलियों की हानि में होता है। यदि निकट के किसी जलाशय में कोई बीमारी फैल रही हो तो अपने जलाशय को बचाने की पूरी व्यवस्था करनी चाहिये। यद्यपि मछलियों के रोगों के उपचार के तरीके भी हैं, दवाइयाँ भी हैं, तथापि उपचार कठिन है तथा कभी-कभी तो अधिक संख्या में मछलियों से युक्त तालाब में उपचार सम्भव भी नहीं होता है। अतः मछलियों के संम्बन्ध में तो "चिकित्सा

से निवारण अच्छा है" सिद्धान्त का अनुकरण ही उचित है। रोगों के निवारण के लिए बीमार मछलियों को निकाल कर नष्ट कर देना सबसे अच्छा उपाय है।

मरी हुई मछलियों को उठाकर जाँच करनी चाहिये। यदि मरी हुई मछली के शरीर पर रोग के लक्षण नहीं हैं और आयु क्षय के कारण मृत्यु हो तो चिन्ता की बात नहीं है। यदि रोग के लक्षण हों तो तुरन्त ही उपचार और निवारण के उपाय करने चाहिये। एक ही जाति की अनेक मछलियों का एक ही समय पर मरना चिन्ता का विषय बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में कारण की जाँच के लिए, मछलियों को निकाल कर देखने के साथ-साथ पानी की जाँच कराना भी आवश्यक है। क्योंकि मछलियों की मृत्यु कभी-कभी परिस्थितिजन्य भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, पानी में ऑक्सीजन अथवा आहार की कमी, समुअंक का अनुकूल न होना, विष का घुल जाना आदि परिस्थियाँ हो सकती है। मछलियों के कुछ रोगों का निवारण और उपचार इस अध्याय में आगे किया जा रहा है।

मछलियों में बीमारियों के लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं। यह पता लगाने के लिए कि मछली बीमार है अथवा स्वस्थ है बहुत से लक्षण हैं। स्वस्थ मछली चमकीली और साफ रंग वाली होती है। यदि रंग पीला पड़ता दिखायी दे तो बीमारी का लक्षण समझना चाहिये। भदरंग होना बीमारी का लक्षण समझा जाता है, यह तथ्य प्रत्येक मत्स्य पर लागू नहीं होता। कुछ मादा मछलियाँ प्रजनन के बाद पीली और भदरंग हो जाती है। कुछ मछलियों का भयभीत हो जाने पर भी रंग हल्का हो जाता है, परन्तु यदि लक्षण कुछ समय तक बना रहे तो बीमारी का लक्षण ही समझना चाहिये।

शरीर के ऊपरी हिस्सों में चर्म-रोग होने पर लसलसा पदार्थ शरीर से बहने लगता है। यह पदार्थ भूरा होता है, अतः गहरे रंग की मछलियों में शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है। अन्य भागों में चर्म-रोग होने पर शरीर पर काले सफेद दाग अथवा अन्य प्रकार के चकत्ते पड़ जाते है। चर्म-रोग होने पर मछली पत्थर, पौधों आदि से शरीर रगड़ने लगती है। बड़े परजीवी कीटाणु आदि के चिपकने पर भी यह लक्षण दिखायी देता है।

गलफड़ों का असामान्य रूप से बन्द करना और उनका रंग बदलना, पीला पड़ जाना आदि बीमारियों के लक्षण हैं। कभी-कभी गलफड़ों के क्लोमांशुओं पर लाल-लाल चकत्ते भी दिखायी पड़ते है। शाकाणुजन्य रोगों में चर्म और मांस पर लाल-लाल चकत्ते पड़ जाते है। आँखों की बीमारियाँ आँख पर सूजन आने से पहचानी जा सकती है। कुछ रोगों में शल्क उखड़ने लगते है।

आन्तरिक बीमारियों का अनुमान पेट पर सूजन देख कर लगाया जा सकता है। कुछ रोगों में पेट पतला हो जाता है। जलोदर अथवा प्रजनन अंगों की खराबियाँ होने पर पेट फूला दृष्टिगत होता है, परन्तु प्रजनन अंगों की परिपक्वता काल में ऐसा नहीं होता

है। कृमिजन्य रोगों में भी पेट फूल जाता है। मल के साथ रक्त के छिछड़े आने पर आँतों की बीमारियाँ समझी जा सकती हैं। प्लवनाशय की बीमारियाँ समशीतोष्ण जलवायु में पायी जाती हैं। ऐसे रोग से ग्रसित मछलियाँ, शरीर का संतुलन नहीं रख पाती हैं तथा जल के स्तर अथवा नितल पर तैरने लगती हैं।

सामान्य लक्षणों के आधार पर कुछ बीमारियाँ पहचानी जा सकती हैं। रोगी मछली को पहचानने का एक और साधारण तरीका है। मछली के पलटने पर उसकी आँख की पुतली यदि चलती दिखायी दे, तो मछली निरोग है और यदि पलटने पर भी मछली की आँख की पुतली न पलटे तो रोगी समझना चाहिये। यदि मछली अधिक बीमार है तो आँख की पुतली शरीर को पलटने की दिशा में पलटती जाती है। जब अन्य सामान्य लक्षण सुस्पष्ट न हों तब यह बीमार मछलियों को पहचानने का अच्छा तरीका है।

चर्मरोग तथा परजीवी

मत्स्य-जूँ (आर्गूलस)––मछलियों के लिए यह सामान्य तथा भयानक परजीवी है। यह चपटा कीट होता है तथा शफर-मछलियों में यह भयानक रूप से पाया जाता है। इस जीव के आठ टाँगें होती हैं, जिनकी सहायता से यह पानी में तैर सकता है। इसके शरीर पर मछली के पुच्छपक्ष की भाँति एक पूँछ भी होती है। प्रजनन एवं श्वास के अंग पूँछ में ही स्थित होते है। नर में दो बड़ी टेस्टिस होती है और मादा में वीर्य ग्रहण करने की थैली होती है, जिसमें सम्भोग के बाद प्राप्त वीर्य रखा रहता है। मत्स्य-जूँ के शरीर पर चिपटने के लिए दो विशेष अंग होते है, जिनके द्वारा यह मछली के शरीर पर चिपक जाता है। इन चिपकने वाले अंगों के ऊपर दो विशेष आँखें और उनके बीच में एक पोला डंक होता है। यह डंक मछली के शरीर पर चिपकने के बाद उसकी चमड़ी में प्रविष्ट कर दिया जाता है और इसकी सहायता से मछली का रक्त चूस-चूस कर यह जीव आहार करता है। इसके पास ही इस जीव का मुँह होता है। पेट में बहुत शाखाएँ और उपशाखाएँ होती हैं। इसका पेट रक्त से इतना भरा जा सकता है कि कभी-कभी तो यह परजीवी कई सप्ताह तक बगैर खाने के रह सकते हैं। ये मत्स्य-जूँ अप्रैल से सितम्बर मास में प्रजनन करते हैं और इनके अण्डे पत्थर के टुकड़ों, जल-पादपों की टहनियों आदि पर चिपके रहते हैं जो निषेचन के लगभग चार सप्ताह बाद फूटते हैं। इसके शिशु अपने प्रौढ़ों से आकार और रूप में भिन्न नहीं होते हैं और तुरन्त चिपकने के लिए मछली की तलाश प्रारम्भ कर देते हैं। यदि कोई उचित मछली प्राप्त नहीं होती तो तीन सप्ताह के बाद ये नष्ट हो जाते हैं। एक मास की आयु में ये लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। मादा-जीव प्रजनन के तुरन्त बाद ही मर जाते हैं। एक समय दिये जाने वाले अण्डों की संख्या के बारे में विभिन्न मत हैं।

ये जीव पर्याप्त बड़े आकार के होते हैं और किसी भी चिमटी की सहायता से इन्हें पकड़ा जा सकता है। यदि इनकी संख्या अधिक हो, तो शरीर के रगड़ने से ये छुटाये जा सकते हैं, इन्हें अलग करने के लिए मछली को मुँह से पूँछ की ओर ही रगड़ना चाहिये। ये जूँ मछली के शरीर पर विशेष अंगों से चिपके रहते हैं, अतः इनका छुटाना तनिक कठिन कार्य है। सरलता से छुटाने के लिए किसी ब्रश अथवा पेंसिल की सहायता से इनके शरीर पर एक बूंद तीव्र नमक का घोल डाल देते है। परन्तु यह विशेष ध्यान रखने की बात है कि नमक का घोल मछली के घाव और शरीर पर न लगने पाय।

जैविकी-नियन्त्रण-विधि से, जलाशय में इल्ली भोजी छोटी मछलियाँ जैसे गम्बूसिया आदि छोड़ देने से मत्स्य-जूँ नष्ट किये जा सकते है। एक प्रकार से जलाशय से इनको निकालना असम्भव सा ही है। पानी में पोटाशियम—पर-मैंगनेट का घोल 0.3 ग्रेन प्रति गैलन मिला देने से ये कम हो जाते हैं। दस दिन के बाद यह क्रिया पुनः दोहरानी चाहिये। दवाई की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये अन्यथा मछलियों को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। उपचार के काल में ओषजन विशेष रूप से देनी चाहिये।

मत्स्य-पालन-जलाशयों में सबसे अच्छी विधि है कि मछलियों को यथाशीघ्र निकाल कर जलाशय को सुखा देना चाहिये। नितल की भूमि एक-एक दिन सूखी रहने देकर अण्डे तथा प्रौढ़ दोनों धूप से मर जाते है। यदि यह सुखाना सम्भव नहीं हो तो 0.1-0.2 ग्राम प्रति लीटर की मात्रा में, चूने का प्रयोग करना चाहिये। चूँकि यह प्राणी तीन सप्ताह तक बिना मछली के रह सकता है और बाद में मर जाता है, अतः पुनः सञ्चय इतने समय के बाद ही करना चाहिये। शेफ्लग्लास की राय में 0.2 प्रतिशत लायसोल के घोल में 10-15 सेकण्ड तक मछली को स्नान कराने से मत्स्य-जूँ नष्ट हो जाते हैं।

मत्स्य-कीट (लर्निया)—यह कोपीपोड लगभग 20 मि०मी० लम्बा होता है। इसके जहाज के लंगर के आकार के अवयव होते है जिनकी सहायता से यह कीट मादा-मछली के शरीर पर चिपक जाती है। नर-कीट मछली को हानि नहीं पहुँचाता है तथा आकार में भी भिन्न होता है। मछली के माँस में अपने अवयव प्रवेश कराके यह मछली पर अच्छी तरह चिपक जाता है तथा इसके कारण मछली बहुत बुरी तरह से घायल हो जाती है। चिमटी की सहायता से इसे निकालना सम्भव नहीं है। ये गोल्ड-फ़िश आदि मछलियों में पाया जाता है। इस कीट की मादा मई मास में परिपक्व हो जाती है जबकि इसके शरीर पर दो अण्डों की थैलियाँ दिखाई देने लगती हैं। मई के अन्त में इसका प्रजनन होता है। शिशु नोप्लीयस लार्वा प्रौढ़ होने तक पानी में तैरता रहता है। मछली के शरीर में घाव पैदा कर यह मादा-प्रजनन के बाद नष्ट हो जाती है। इन घावों में शाकाणु तथा फफूँदी के अन्य रोगों के आक्रमण की सम्भावना रहती है।

उपचार के लिए पोटेशियम पर मैंगनेट के 0.1 प्रतिशत घोल से कीट को ब्रश की सहायता से छूने पर यह मर जाता है और चिमटी से निकाल लिया जाता है। घावों को मरक्युरोक्रोम (1:10) घोल से धोने से अन्य संक्रमणों का भय नहीं रहता है। तालाबों को परमैंगनेट के घोल से शुद्ध किया जा सकता है।

पीला मक्षी-जातक (यलो ग्रब)—ये 'क्लाइनोस्टोमम' अखण्ड चपटे क्रमि 'पृथुक्रमि' (प्लेटीहेल्मेन्थीस) समूह के जीव होते हैं। ये मीठे पानी की मछलियों की चमड़ी तथा माँस में पाये जाते हैं और विश्व भर में पाये जाते हैं। ये मछलियों में (लार्वल) डिम्भावस्था में पाये जाते हैं। मछलियों के शरीर पर छोटी पीली गाँठों के रूप में इसके लक्षण दिखाई देते हैं। इनका आकार २.५ मि० मि० तक का हो सकता है। रोग के आक्रमण के अनुसार, एक मछली पर एक-दो से लेकर सौ तक गाँठ पायी जा सकती है। क्रमि के आ जाने पर प्रतिरोध के रूप में मछली का शरीर इसके आसपास कोष्ट तैयार कर देता है जो गाँठ की तरह दिखाई देता है। इन गाँठों को यदि काट कर देखा जाय तो इनमें क्रमि पाया जायगा। ये 1.5 से 6.5 मिलीमीटर तक लम्बे, तथा बड़े कीट 2 मि० मी० तक चौड़े होते है। ये चपटे सफेद रंग के होते है।

इसके कारण मछली को विशेष असुविधा नहीं होती है, जब तक इस प्रकार की गाँठों की संख्या बहुत अधिक न हो। इन गाँठों के स्पष्ट होने में बीमारी के प्रारम्भ से तीन सप्ताह तक लग सकते हैं और ये गाँठें सात सप्ताह में पूर्ण आकार की हो जाती हैं।

इस क्रमि का जीवनचक्र जटिल होता है। प्रौढ़-क्रमि मत्स्य-भोजी चिड़ियों के गले तथा मुँह में रहते है, ये क्रमि बहु-लिंगी होते हैं और यहीं अण्डे देते हैं। ये अण्डे पक्षियों के शरीर से मुँह अथवा मल द्वारा जल में पहुँच जाते हैं। जल में पैदा होने वाली डिम्भावस्था मिरासीडिया घोंघा प्रजाति की हीलोस्टोमा पर आक्रमण कर उसके यकृत में प्रवेश करती है। यहीं ये स्पोरोसिस्ट का आकार ग्रहण करते हैं और अभिजनन के द्वारा 'सीडिया' अवस्था पैदा करते है, जिनसे अलैंगिक अभिजनन से "सरकेरिया" अवस्था पैदा होती है। इस अवस्था में ये घोंघा को छोड़ देते है। सरकेरिया मछली पर आक्रमण करते हैं। गाँठ में मेटा सरकेरिया अवस्था रहती है। मछलियों को पक्षियों द्वारा खाये जाने के बाद ये पक्षियों की भोजन नली में विचरण करती हुई गले तक पहुँच जाती है और प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर लेती है। यहीं इनका प्रजनन होता है, अण्डे निकलते हैं, और इस प्रकार जीवनचक्र पूरा होता है।

यह छूत की बीमारी नहीं है। अतः बीमार मछलियों को पृथक् करना आवश्यक नहीं है। अवरोधात्मक क्रिया के रूप में तालाब के घोंघों को साफ करना आवश्यक है। उपचार के रूप में मछली की गाँठ काटकर उसमें से क्रमि निकाला जा सकता है तथा घाव को मरक्युरोक्रोम से धोना उचित रहता है, जिससे अन्य बीमारी का भय न रहे।

चमड़ी पर आक्रमण करनेवाले अन्य चपटे कृमि—इन सामान्यत: पायी जाने वाली बीमारियों के अतिरिक्त भी बहुत सी बीमारियाँ परजीवी-कृमि, कीटों अथवा अन्य जीवों द्वारा फैलायी जाती हैं जिनका प्रभाव विभिन्न प्रकार से पड़ता है। इन चपटे कृमि में गायरोडेक्टाइसस और डेक्टायस्नोगायरस सामान्य है। ये शरीर पर परजीवी के रूप में रहते हैं। शरीर पर इनके चिपक जाने के कारण मछली शिथिल पड़ जाती है, पक्ष गिरने लगते हैं, रंग पीला पड़ जाता है। शरीर पर रक्तबिन्दु दिखाई देने लगते हैं। इनका प्रभाव घातक होता है। अत: उपचार अतिशीघ्र ही प्रारम्भ कर देना चाहिये। ये बहुत सूक्ष्म और दूर्वीक्षण यन्त्र से दिखाई देने वाले जीव होते है। ये जीव शफर (कार्प) जाति की मछलियों पर प्राय: आक्रमण करते पाये जाते है। ट्राउट-मछलियों पर भी ये आक्रमण करते हैं। जिन मछलियों पर बीमारी का आक्रमण हो चुका है और कमजोर पड़ गयी हैं, उनको बचाना बहुत कठिन होता है। बीमार मछलियों को स्वस्थ मछलियों से पृथक् कर देना बीमारी को फैलने से रोकने की सबसे अच्छी व्यवस्था है।

उपचार के लिए 1 : 2000 अमोनिया घोल में मछली को 15 मिनट डुबाना लाभकारी पाया गया है। छोटी और कमजोर मछलियों पर अमोनिया घोल का घातक प्रभाव हो सकता है। अत: ऐसी स्थिति में "मिथिलीन ब्ल्यू" का स्नान उपयोगी पाया गया है। 1 ग्राम रसायन का 100 सी० सी० जल में घोल बनाकर उसका उपयोग लाभदायक रहता है। जब तक घोल नीले रंग का रहे, तब तक यह घोल उपयोग के लायक रहता है। कुछ वैज्ञानिकों ने फोर्मलीन का भी प्रयोग किया है।

काले और सफेद चकत्तों की बीमारी—काले-चकत्तों की बीमारी को अंग्रेजी में डिप्लोस्टोमिएसिस तथा सफेद-चकत्तों की बीमारी को इक्थियोथिरिएसिस या 'इक' कहते है। काले चकत्तों की बीमारी ट्रिमेटोड समूह के नियोडिप्लोस्टोमम क्यूटीकोला और सफेद चकत्तों की बीमारी एक कोषीय प्राणी इक्थीयोपथीरियस मल्टीफिलिस नामक जीव द्वारा फैलायी जाती है।

काले-चकत्ते शरीर के हर अंग यहाँ तक कि, आँखों और मुँह में भी हो सकते हैं। इस जीव का कोष्ठ होता है, ये जीव अपना जीवनचक्र दो जीवों पर रह कर पूरा करते हैं। यह प्रौढ़ पक्षियों के पेट में रहता है। पक्षियों के मल के साथ इसके अण्डे पानी में आ जाते हैं, जहाँ इनसे बच्चे निकलते हैं, जो मछलियों में अपना आगामी जीवन प्रारम्भ कर देते है। यदि बीमार मछली जलपक्षी का आहार बनती है, तब आगामी जीवनचक्र पक्षियों के पेट में पूरा होता है। यह बीमारी एक मछली से दूसरी मछली में नहीं फैलती, अत: केवल बीमार मछलियों का उपचार आवश्यक है। यह रोग 2.7 भाग प्रति 100,000 भाग जल के पिकरिक एसिड के घोल में एक घण्टा स्नान द्वारा ठीक किया जा सकता है।

सफेद चकत्तों की बीमारी में यह परजीवी चमड़ी में प्रवेश करता है। इससे चमड़ी में कड़ा कोष्ठ वन जाता है और यह कोष्ठ चमड़े का भाग है, परजीवी का कोष्ठ नहीं। जब ये परजीवी प्रौढ़ वन कर प्रजनन करते हैं, इस कोष्ठ को फोड़ कर बाहर आ जाते हैं तथा अन्य मछलियों पर आक्रमण करते हैं। एक प्रौढ़ से 500-1200 शिशु जीव पैदा होते हैं। ये जीव पानी में अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकते हैं, अतः शीघ्र ही अपने अतिथेय को ढूंढ निकालते हैं। अतः यदि जलाशय में से रानी मछलियाँ निकाल ली जायँ तो 3 दिन वाद तालाव पुनः मछलियों के रहने लायक हो जायगा और इस बीमारी के आक्रमण का भय नहीं रहेगा। यदि सम्भव हो तो बीमार मछलियों का उपचार पृथक् तालाव में करना चाहिये। इसके उपचार के लिए कुनीन आदि दवाइयों का प्रयोग किया जाता है।

कार्प मछलियों पर एक कोशीय प्राणी स्पोरोजोआ के मोर्वस नोडूलोसस द्वारा बीमारी फैलायी है। 'ये सब परजीवी हैं'। इनके कारण चमड़ी पर गाँठे पड़ जाती हैं, अतः यह गाँठ की वीमारी कहलाती है। इनके उपचार के सम्वन्ध में अध्ययन किये जा रहे हैं।

गलफड़ों की बीमारी--गलफड़े मछलियों की श्वाँस-क्रिया का प्रमुख अंग है। इन अंगों पर पानी में घुली हुई ओषजन का प्रभाव पड़ता है। ओक्सीजन की आवश्यकता हर मछली की पृथक्-पृथक् होती है। मछलियों को सही हालत में रखने के लिए इस अंग का वचाव वड़ा आवश्यक है। गलफड़ों पर वहुत से परजीवी भी आक्रमण कर देते है। ओक्सीजन की कमी ही नहीं अधिकता भी मछलियों की बीमारी का कारण बन सकती है। ओक्सीजन की अधिकता के कारण मछलियाँ बेचैन हो जाती हैं और वायु के बुलवुले शरीर पर इकट्ठे होने लगते है। वायु की अधिकता होने पर मछलियों को निकाल कर दूसरे पानी में डाल देना उचित रहता है। इसी प्रकार कार्वन-डाय-ओक्साइड की अधिकता भी विषालु प्रभाव डाल सकती है, जिसका गलफड़ों और श्वाँस क्रिया पर प्रभाव पड़ता है।

गलफड़ों पर आक्रमण करने वाले परजीवी वहुत प्रकार के होते हैं। ये कीट (अर्गेसिलस सीवोल्डी), डेक्टाइलोगाइरस, ट्रेटाकोनस आदि होते हैं। इनका उपचार 'मिथिलीन व्ल्यू' के 1:2000 घोल में 15 मिनट तक स्नान है। अधिक पुरानी बीमारी में सेलिसिलिक एसिड के घोल में स्नान भी उपयोगी पाया गया है। डिप्लोजोन पेराडोक्सम, वूसिफेलस आदि अन्य रूप हैं जो गलफड़ों पर असर करते हैं। एक कोषीय प्राणि-स्पोरोझोअन भी गलफेड़ों पर आक्रमण करते हैं। एटीव्राइन के घोल में स्नान इसका उपयोगी उपचार पाया जाता है।

गिलरोट (गलफड़ों का गलना)--भारत के आसपास के क्षेत्र में पाली जाने वाली मछलियों में फैलने वाली यह वीमारी बहुत पायी गयी है। जिन तालावों की तली में सड़ी और सड़ती हुई वस्तुओं की मात्रा अधिक होती है, वहाँ यह अधिक होती है। यह बीमारी

एक फफूंद के आक्रमण के कारण होती है। यह फफूंद ब्रेकियोमाइसिस कहलाती है। इसके प्रभाव से कुछ गलफड़ों के पंख जैसे पतले भाग (फिलामेण्ट), विशेष रूप से ऊपरी भाग कालापन लिये लाल रंग का और निचला भाग सफेद हो जाता है। यह इस फफूंद के आक्रमण से खून के बहाव में अवरोध होने के कारण उत्पन्न होता है। बीमारी प्रारम्भ में भयानक रूप से फैलती है और बहुत सी मछलियाँ मरने लगती हैं। लगभग आठ दिन में आक्रमण का असर कम हो जाता है। कुछ बीमार मछलियाँ बच सकती हैं जो बाद में ठीक हो जाती हैं। बीमारी का तालाब में उपचार करना उचित रहता है। तालाब में ठण्डा पानी मिलाना दोहरा लाभ देता है। इससे पानी ठण्डा होता है और मलिनता भी कम होती है। मछलियों का खाना बन्द कर देना चाहिये। सड़न को रोकने की क्रिया करना उचित रहता है। पानी अधिक से अधिक बदलना या पुराना पानी बदल कर नया पानी डालना सबसे अच्छा रहता है।

अन्य बीमारियों के साथ 'गलफड़े सूजने' की बीमारी भी हो जाती है। इसका प्रभाव धीरे-धीरे भोजन प्रणाली पर भी पड़ जाता है। मत्स्य-पालन-तालाबों में से बीमार मछली को अलग कर देना उचित रहता है। इस बीमारी के उपचार के रूप में बीमार मछलियों को अलग कर देना सबसे अच्छा तरीका है।

अन्य बीमारियाँ

दस्त की बीमारी—यह सामान्य बीमारी है जो किसी परजीवी के कारण नहीं होती है। यदि कृत्रिम भोजन में वसा (फैट) और अपच-शील पदार्थ बहुत होते हैं तो यह बीमारी हो जाती है। गुदा पर लाल रंगत और म्यूकस जैसा पदार्थ बहता है। इसके बाद कृत्रिम आहार बन्द कर देना चाहिये। तालाब से पानी निकाल कर साफ पानी भर देने से मछलियाँ ठीक हो जाती है।

सेप्रोलेग्निया फफूंद का आक्रमण—जिन मछलियों का शरीर किसी कारण चोट खा जाता है तो घाव पर यह फफूंद आक्रमण कर देती है। नर्म मुलायम अंगों पर यह प्रभाव अधिक होता है। गलफड़ों पर भी अक्सर दिखाई देता है। फफूंदी छोटे बच्चों पर आक्रमण करती है जिससे मछलियों के बच्चे इकट्ठे मरने लगते हैं। अधिक संख्या में सञ्चय, तालाबों में काई का होना, चोट आदि इसके फैलने में सहायक होते हैं। इसका उपचार मछली को 5 से 10 मिनट तक 3 प्रतिशत नमक के घोल, अथवा 1:2000 भाग नीला-थोथा का घोल, अथवा 1: 1000 भाग पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में स्नान कराना है। सुविधा होने पर बीमार मछलियों को एक पृथक् "उपचार तालाब" में डाल देना चाहिये।

फिन रोट (पक्षों का गलना)—यह बीमारी बैक्टीरिया से फैलती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस बीमारी में पक्ष गलने लगते हैं। इसमें पुच्छ पक्ष, अन्य पक्ष अथवा

दोनों गलने लगते हैं। विशेष रूप से पुच्छ पक्ष टूटने लगता है और धीरे-धीरे गल जाता है। यह मछलियों के बच्चों में अधिक घातक होती है। इसके उपचार के लिए नीला-थोथा के 1:2000 भाग घोल में एक या दो मिनट का स्नान कराना चाहिये। यह घोल विषाक्त भी हो सकता है। अतः उपचार जानकार व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये, जिससे मछली के ऊपर बीमारी के असर को देखकर उपचार का समय तय किया जा सके। जैसे ही मछली कष्ट अनुभव करे, उपचार रोक देना चाहिये।

जलोदर (ड्रोप्सी)—इस बीमारी में शरीर के किसी अंग में तरल पदार्थ भर जाता है और शरीर आभाहीन हो जाता है। मछलियों में, विशेषकर पेट में पानी भर जाता है और पेट फूले हुए गुब्बारे की भाँति दिखायी देता है। दबाव अधिक वढ़ने से फटने का भय लगने लगता है, परन्तु इस स्थिति में पहुँचने के पूर्व ही बीमार मछली मर जाती है। यह बीमारी एक से दूसरे में फैलने वाली छूत जैसी बीमारी है। ऐसा विश्वास है यह बीमारी भी बैक्टीरिया से फैलती है। यह बैक्टीरिया केवल कमजोर मछलियों पर आक्रमण करता है।

आँखों की बीमारी—कुछ बीमारियाँ ऐसी हैं, जो केवल मछली की आँख की बीमारियाँ कही जा सकती हैं। इनमें सफेद या भूरे धागे जैसी फफूंद आँख की पुतली पर जम जाती है। मछलियों में आँख की बीमारी भयानक है; क्योंकि आँख से सीधे आक्रमण दिमाग पर होता है। उपचार के विना आँख नंष्ट हो जाती है और फिर दिमाग में फफूंद का असर होने लगता है और मछली की मौत हो जाती है। फफूंद का उपचार करने के लिए 1-2 प्रतिशत सिल्वरनाइट्रेट घोल को ब्रश से लगा देना चाहिये। इसके प्रभाव को हटाने के लिए बाद में रूई से 1 प्रतिशत पोटैशियम डायक्रोमेट घोल से धो देना चाहिये।

आँख का बाहर निकल आना (उदक्षिगोल या एक्सोप्थेल्मस)—इस बीमारी में आँख बढ़ जाती है और बाहर को लटक आती है। कभी-कभी तो इस प्रकार आँख के बढ़ जाने के बाद और कोई कठिनाई नहीं होती है तथापि कुछ मछलियाँ इसके बाद मर जाती है। इसके बारे में अनुमान है कि यह बीमारी वैक्टीरिया के द्वारा फैलायी जाती है।

इसके अतिरिक्त मछलियों में अवयवों की भी बीमारियाँ होती हैं। परजीवी कीट आन्तरिक भागों पर भी प्रभाव डालते हैं। साधारणतः ये बीमारियाँ कम ही पायी जाती हैं। परिवहन करते समय शरीर पर चोट आ जाने से शरीर कुरूप भी हो जाता है, क्योंकि चोट खाया हुआ हिस्सा सही-सही वृद्धि प्राप्त नहीं करता है।

१५

पंचायत-राज और गाँवों में मत्स्य-पालन

मनुष्य की बस्तियों के निकट पानी की व्यवस्था आवश्यक होती है। भारत के लगभग हर गाँव में छोटे-छोटे जलाशय उपलब्ध हैं। विशेषत: उन क्षेत्रों में, जहाँ धान की खेती होती है ऐसे तालावों की अधिकता है। ऐसे क्षेत्रों में धान की सिंचाई के लिए अधिक पानी एकत्र रखने की आवश्यकता होती है तथा पुराने समय में बड़े-बड़े सिंचाई के बाँधों का निर्माण न होने से ग्रामीण तालावों द्वारा ही सिंचाई करते थे। इन तालाबों के सही-सही आँकड़े प्राप्त किये जायँ तो इनका देश के सम्पूर्ण जल-क्षेत्र का एक बड़ा भाग होता है।

कुछ क्षेत्र ऐसे भी होंगे जहाँ भौगोलिक-स्थिति के कारण जलाशय या तालाव न होने की दशा में जल की आवश्यकता पूर्ति के लिए नदियाँ सहायक होती हैं। अत: पंचायत-राज के लिए मत्स्य-पालन का रूप तनिक विस्तृत हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों में जल-पूर्ति व्यवस्था और मत्स्य-उत्पादन कार्य साथ-साथ होते रहते हैं। कुछ क्षत्र ऐसे है, जहाँ केवल मत्स्य-पालन कार्यक्रम ही हो सकता है, जबकि अन्य क्षेत्रों में केवल प्राकृतिक जल में उचित मत्स्य-उत्पादन व्यवस्था का ही नियन्त्रण रह सकता है। प्राकृतिक-जल के उत्पादन का उदाहरण, बंगाल में नदियों से एकत्र किया जाने वाला मत्स्य-बीज और उनका कलकत्ता में विक्रय है। यह मत्स्य-बीज करोड़ों की संख्या में इकट्ठा होता है, लाखों रुपयों के मूल्य का होता है। सामान्यत: प्राप्त होने वाली मछलियों की जातियों में केवल व्यवसायिक दृष्टि से उपयोगी प्रजातियों को ही पकड़ा जाता है।

निजी तालाबों को छोड़ कर अधिकांश तालाव अब पञ्चायत की सम्पत्ति हैं। ग्रामीण तालाव केवल सिंचाई अथवा दैनिक उपयोग के लिए ही लाभप्रद नहीं है, इसमें पैदा होने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं, विभिन्न वनस्पतियों, विभिन्न जीवों की ओर हमारी उद्देश्यपूर्ण दृष्टि जाती है। इसके अतिरिक्त इनसे मनुष्य के लिए अति उपयोगी प्रांगारिक भोजन भी उत्पन्न होता है। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि हर जलाशय या तालाब मनुष्य

के लिए भोजन उत्पन्न कर सकता है और यह भी सत्य है कि इनसे प्राप्त उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में हो सकता है। इस प्रकार यह जलाशय पौष्टिक भोजन के उत्पादन के साथ-साथ पंचायतों को आहार की दृष्टि से आत्मनिर्भर बना सकते है, क्योंकि स्थानीय उत्पादन के द्वारा कम से कम उस क्षेत्र के लोगों को सस्ता मीन-आहार सुलभ हो ही जायगा। इस अतिरिक्त उत्पादन व्यवस्था से पंचायत क्षेत्रों में रहने वाले मछुओं को कार्य मिलेगा और पंचायतों को अतिरिक्त आय मिलेगी। इस प्रकार देश की अर्थ-व्यवस्था में मत्स्य-पालन का अपना विशेष स्थान है।

स्थानीय-शासन पंचायतों को सौंपने पर, सम्भव है प्रत्येक स्थान पर मत्स्य-पालन अर्थ-व्यवस्था में अधिक सहायक न हो, तथापि सामाजिक व्यवस्था और अन्य उद्योगों के लिए अवश्य सहायक होगा। अतः मत्स्य-पालन की सलाह, पंचायतों को अर्थ-व्यवस्था सुधारने के अतिरिक्त उपयोगिता की दृष्टि से भी दी जाती है। यह तथ्य इस बात से प्रकट हो जायगा, कि देश के उत्पादन का 35% भाग मीठे पानी की मछली का है। विश्व के कुछ देशों में यह उत्पादन समुद्री उत्पादन से भी अधिक है। मीठे पानी के जिन क्षेत्रों में यह कार्य पंचायतें कर रही है वहाँ पर ग्रामीण विकास के कार्य, जैसे तालाब की मरम्मत, कुएँ खुदवाना, औषधालय चलाना, पंचायत भवन निर्माण, पाठशाला बनवाना, बिजली लगवाना, आदि मछली-पालन की आय से पूर्ण किये जा रहे हैं और इनके उदाहरण अब लगभग हर जगह मिल सकते हैं। इस उद्योग के पनपने से पंचायत क्षेत्रों में अधिक मात्रा में मछुओं को धन्धा मिलने लगा है और वे अब सामाजिक सहकारी समितियाँ निर्माण कर अपनी भी उन्नति कर रहे हैं। अनेक मछुओं ने जिन्होंने अपनी यह जीविका छोड़ दी थी और अन्य साधन अपना लिये थे, अब पुनः वंशानुगत कार्य पर वापस आ गये हैं।

भूमि का प्रत्येक भाग कृषि के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है। यह उपयोगिता भूमि खण्ड की भौगोलिक-स्थिति पर निर्भर करती है कि वहाँ कितना पानी आता है और कितना भरा रहता है, कितना रिसता है और भूमि कैसी है? जिस प्रकार भूमि पर कृषि-उत्पादन के लिए विभिन्न योजनाओं द्वारा अधिक जोर दिया जा रहा है,उसी प्रकार अन्य प्रकार की भूमि और जल क्षेत्र के उपयोग की योजनाएँ बन गयी हैं। जिससे उसको भी उपयोगी बनाया जा सके। हर तालाब में प्रांगारिक पदार्थो का उत्पादन तो होता ही है और यह उत्पादन भोज्य पदार्थों का है। अतः इस आहार श्रृंखला को उचित रूप से उपयोग करके अधिक और वांछित उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार कृषि के लिए अनुपयोगी भूमि को जलाशय का रूप प्रदान करके मत्स्योतपादन के लिए उपयोग किया जा सकता है। वहाँ मत्स्योतपादन सुगमता से किया जा सकता है। अतः ऐसे भूखण्ड जो पानी की अधिकता के कारण खेती के लिए अनुपयुक्त होते हैं, आधार-

उत्पादन के लिए उपयोगी बनाये जा रहे हैं। अधिक गीली रहने वाली भूमि से पानी निकालने की व्यवस्था की जा रही है। ऐसी योजना में उन जलाशयों की उपयोगिता पर ध्यान दिया जा रहा है, जो कृषि भूमि के समान अधिक उपयोगी और उत्पादन-क्षमता वाले हैं। उचित व्यवस्था करने पर ये जलाशय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के स्थायी अंग बन सकते है। जलग्रहण क्षेत्रों से पानी के साथ-साथ इन खेतों से खाद प्राप्त होती है और यह खाद (सिल्ट) तालाबों की सफाई के समय खेतों को वापस कर दी जाती है। हरा-चारा मछलियों को आहार के रूप में दिया जाता है तथा जल-वनस्पतियाँ खेतों में हरी खाद के रूप में उपयोग की जा सकती हैं। इन्हीं खेतों से बहने वाले पानी से तालाब भरते हैं, और इन्हीं तालाबों से खेत सींचे जाते हैं।

ऐसे स्थानों पर जो दलदली हैं अथवा निम्नस्तर पर होने के कारण जिनमें पानी भरा रहता है तथा जो कृषि योग्य नहीं हो सकते हैं, आवश्यक मरम्मत कर उनमें मत्स्य-पालन किया जा सकता है। ये स्थान नहरों के किनारे नदियों के मुहानों के पास अथवा झीलों के निकट होते हैं। इनकी उत्पत्ति के लिए उस स्थान की भौगोलिक परिस्थितियाँ उत्तर-दायी हैं। ऐसे दलदल प्रायः व्यर्थ ही पड़े रहते हैं। यह अनावश्यक है कि इस प्रकार के पानी को अनुपयोगी रहने दिया जाय। वर्तमान में इस प्रकार के दलदली क्षेत्रों के पानी को निकाल कर उचित बाँध बनाकर और छोटे-छोटे तालाबों का रूप देकर उन्हें मत्स्य-पालन के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है। पानी निकालने के वाद कुछ ऊपरी हिस्सा बच जाता है, जिसे कृषि के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों की सीमा के बाहर व्यय अधिक होता हो तो फिर दलदलों में, गहरे स्थानों की वनस्पतियाँ निकालकर, उनमें मछलियाँ पालकर, उनको उपयोगी बनाया जा सकता है। परन्तु इसके लिए उचित व्यवस्था की आवश्यकता है। इन सब क्रियाओं से अनुपयोगी भूमि का उपयोग तो हो ही जायगा, साथ ही इन क्षेत्रों में पलने वाले मच्छरों तथा घातक बीमारियों के कीटाणुओं से भी मुक्ति मिल जाती है।

ईंटें बनाने की खदानों अथवा मिट्टी निकालने के बाद बने हुये गड्ढों का तनिक व्यय करने के बाद अच्छे और उपयोगी तालाब का रूप दिया जा सकता है। इससे गाँव में मछली-पालन के लिए स्थान तो मिलेगा ही, निस्तार और सिंचाई की सुविधा भी मिल जायगी। इस प्रकार के बड़े-बड़े गड्ढे भारत में बहुतायत से प्राप्त हैं और बहुत बड़ा भू-भाग व्यर्थ ही पड़ा हुआ है। ग्राम-विकास योजनाओं के अन्तर्गत ऐसे गड्ढों को समुचित उपयोगी बनाने के लिए पर्याप्त साधन का प्रयोग होना चाहिये। नदी मुहाने के क्षेत्रों में खारी मिट्टी हो जाने पर अनुपयोगी खेतों की भी खारी मिट्टी निकाल कर गहरा करके मत्स्य-पालन और धान की खेती के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

कृषि और ग्रामीण-उद्योगों की वृद्धि होने से चरागाहों और प्राकृतिक जंगलों की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। भूमि के ऊपर प्राकृतिक वनस्पतियाँ नष्ट करने से भूमि क्षरण का प्रभाव दिखाई देता है। कृषि-क्रियाओं में यह आवश्यक है कि इस प्रकार के भूमि क्षरण को रोका जाय। इन क्रियाओं से भूमि से बहने वाले पानी के लिए उचित रास्ते का निर्माण होगा और अतिरिक्त पानी नीचे की ओर बह कर इकट्ठा हो जायगा, जो वाद में तालाव का रूप ले लेगा। इस प्रकार वह भूमि नष्ट होने से बच जायगी। साथ ही ये जल-क्षेत्र भूक्षरण को रोकने के लिए लगाये गये पौधों को सींचने के काम में भी आयेंगे। इस प्रकार से निर्मित तालाबों में मत्स्य-पालन कर इसे और भी उपयोगी तथा लाभदायक बनाया जा सकता है। इस प्रकार तालाब के निर्माण-हेतु उपयोग की गयी भूमिं भी अनुपजाऊ नहीं रहती है।

मत्स्य-पालन धान के खेतों में भी किया जा सकता है, क्योंकि धान के खेतों में 3-4 मास तक पानी भरा रहता है और यह अवधि कुछ मछलियों की वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है। इससे अतिरिक्त मत्स्य-उत्पादन के साथ-साथ धान के उत्पादन में भी वृद्धि हो जाती है। चावल के खेतों में मछली-पालन की क्रियाएँ स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं और इस सम्बन्ध में स्थानीय मत्स्य-पालन कार्यकर्ता अधिक सरलता से योजना बना सकते हैं। ऐसे खेतों से लगभग 100 कि० प्रति हेक्टर तक का मछली-उत्पादन हो सकता है। अन्य स्थानों में जहाँ धान की प्रजातियों के लिए कम पानी की जरूरत पड़ती है अथवा जहाँ मछलियाँ धान के काटने के समय तक पर्याप्त वृद्धि नहीं कर पातीं, यदि पानी के साधन उपलब्ध हों तो उन खेतों में पुनः पानी भर कर उन्हें इस अतिरिक्त मछली की पैदावार के लिए काम में लिया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में बाँधों को थोड़ा ऊँचा कर उनकी मरम्मत करनी चाहिये तथा गहरी नालियाँ खोद कर मछली को सुरक्षा प्रदान कर दी जाय। मछलियाँ साथ पालने पर धान की वृद्धि तो होती ही है, साथ ही मछलियाँ पौधों को हानि पहुँचाने-वाली इल्ली कीड़ों को खा जाती हैं तथा खेतों की घास-पतवार को खाकर निराई का व्यय और श्रम भी बचा देती हैं। इसके अतिरिक्त मछलियों का मलमूत्र, मरी हुई मछलियाँ तथा उनका बचा हुआ भोजन, खेत को खाद प्रदान करता है।

कतिपय राज्यों और विशेष क्षेत्रों में परम्परागत तालाबों में सिंघाड़े की खेती होती आ रही है। ऐसी जगहों में स्थानीय मछुए मछली नहीं पालते हैं। इस प्रकार के तालाबों का भी समुचित उपयोग हो सके, इसके लिए केन्द्रीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली की एक योजना के अन्तर्गत मध्यप्रदेश मत्स्योद्योग विभाग ने, सिंघाड़ा-सह-मत्स्य-पालन की योजना बनायी। इस योजना के अन्तर्गत डा० महेन्द्र वर्मा (1965) द्वारा अनुसंधान किया गया। इस अनुसंधान ने एक नवीन दिशा दी है। सिंघाड़े के तालाब में साथ-साथ मत्स्य-

पालन भी किया जा सकता है और इससे प्रति हेक्टर 125 किलो अतिरिक्त मछली मिल सकती है। इस परीक्षण के परिणाम के आधार पर अब विस्तार से कार्य किया जा रहा है।

तालाबों के बाँधों पर काफी स्थान होता है और बहुधा जल का स्तर बाँध के सिरे से 20-25 सेण्टी मीटर नीचे ही होता है। ऐसे बाँधों पर साग-सब्जी तथा फल-फूलदार पेड़ उगाने से मत्स्य-पालक को अतिरिक्त आमदनी हो सकती है और आर्थिक उन्नति में सुधार हो सकता है। इस प्रकार के उत्पादन से कुछ विशेष नहीं तो सामयिक श्रमिकों पर होने वाला व्यय तो निकल ही सकता है। उन क्षेत्रों में जहाँ रेशम का उत्पादन होता है, शहतूत के पेड़ उगाना अधिक उपयोगी और लाभप्रद होगा। तालाब से पानी में फलने-फूलने वाले फल-फूलों और सब्जियों को भी पैदा किया जा सकता है।

भारत और अन्य एशियाई देशों में तालाबों का उपयोग पशुओं को पानी पिलाने तथा सफाई के लिए भी किया जाता है, तथा पशुओं के उपयोग में आने वाले तालाबों में, मछली-पालन भी किया जा सकता है। ऐसे तालाबों में उत्पादन सामान्य से अधिक देखा गया है। मत्स्य-उत्पादन में वृद्धि करने के लिए तालाबों में प्रांगारिक खाद दी जाती है और पशुओं के प्रयोग में आने वाले तालाबों में जाने से यह कार्य किसी सीमा तक स्वतः ही हो जाता है। प्रांगारिक खाद को लेकर के कुछ ग्रामीण तालाबों में बस्ती की नालियाँ बहती है और इससे मत्स्य-आहार की वृद्धि देखी गयी है।

जलाशयों के ऐसे किनारों पर जहाँ साग-सब्जी फल आदि नहीं उगाये जा सकते हैं तथा घास ही उगती है, कुशल मत्स्य-पालक इन स्थानों का उपयोग बकरी चराने अथवा मुर्गी पालन के लिए करता है। इसके साथ ही इसमें हंस, बतख आदि ऐसे जल-पक्षी भी पाले जा सकते हैं, जिनका प्रमुख आहार घोंघे, सीप आदि हैं। चीन इत्यादि देशों में सुअर-पालन, मत्स्य-पालन के साथ-साथ अपनाया जाता है। सुअर का मल प्रांगारिक खाद के रूप में तालाब में अति उपयोगी है। तालाब में उगने वाली घास आदि ही सुअर के भोजन के रूप में काम आती है।

भारतवर्ष में पंचवर्षीय योजना-काल में सर्वांगीण उन्नति के लिए ग्रामीण-विकास-योजनाएँ प्रस्तुत की जा रही है। मत्स्य-पालन को भी महत्त्व दिया जा रहा है। तालाबों के मालिक, निजी मत्स्य-पालकों और पन्चायतों को मत्स्य-पालन में रुचि उत्पन्न कराने और उनको लाभ देने के दृष्टिकोण से भारत सरकार की योजनाओं के अन्तर्गत मत्स्य-बीज आधी कीमत पर सुलभ कराये जा रहे हैं। प्रादेशिक सरकारें भी स्थानीय परि-स्थितियों के अनुसार मत्स्य-बीज बाँटने के साथ-साथ तालाबों के सुधार, सुधारे हुए जल के संरक्षण के लिए ऋण इत्यादि की व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार की योजनाओं का लाभ भी प्रत्यक्ष मिल रहा है। पन्चायतों की आय भी बढ़ती जा रही है। इससे पन्चायतों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होकर जन-जीवन में पंचायत-राज के प्रति आस्था उत्पन्न हो रही है।

कहीं-कहीं तो पञ्चायतों को प्रतिवर्ष 8-10 हजार रुपये की नियमित आय होने लगी है, परन्तु यह स्थिति सन्तोष कर लेने की नहीं है। ये जलाशय पहले से ही बेकार पड़े थे और इनमें प्रर्याप्त मीन-आहार था। अतः प्रारम्भ में उत्पादन संतोषजनक मिल रहा है। यह भी विदित तथ्य है कि मत्स्य-कृषक और पञ्चायत के कार्यकर्ता मत्स्य-पालन में रुचि अवश्य लेने लगे हैं परन्तु इनका ज्ञान अभी सीमित है। अतः इन्हें आगे भी ज्ञान की आवश्यकता है। ऐसी पञ्चायतों को जिनके पास लगभग सौ एकड़ (40 हेक्टर) जल-क्षेत्र है, मत्स्य-पालन की व्यवस्था के लिए एक निपुण कर्मचारी नियुक्त कर लेना चाहिये। यह व्यक्ति उन्हें निरन्तर समान उत्पादन प्राप्त करने में सहायता देगा। जन-सामान्य को सलाह देने के लिए भारत सरकार द्वारा मत्स्य-पालन 'प्रसार अधिकारी' नियुक्त किये जा रहे हैं।

ऐसे ग्राम-क्षेत्रों में जहाँ तालाब नहीं हैं और नदियाँ बहती हैं, वहाँ बहते हुए प्राकृतिक जल का उचित संरक्षण और व्यवस्था कर उसका लाभ मत्स्य-पालन में उठाया जा सकता है। साधारणतः ये जल जनता के लिए ही छोड़ दिये गये हैं अथवा उनकी व्यवस्था पंचायतों को सौंप दी गयी है। ऐसे स्थलों और तालावों में मत्स्याखेट के नियम बना देना चाहिए तथा एक निश्चित आकार और भार से कम की मछली का मारना निषिद्ध कर देना चाहिये। भारत के कुछ प्रान्तों में ऐसा ही किया जाता है। इसके साथ व्यवस्थापक के लिए यह आवश्यक है कि वह देखे कि इस सुविधा का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों के लोग उठा रहे हैं अथवा बड़े-बड़े ठेकेदार तो इसका अनुचित लाभ नहीं ले रहे हैं। नदी तालाबों की उचित व्यवस्था के लिए एक निर्धारित कार्य प्रणाली अपनानी होती है, जल-क्षेत्रों का सर्वेक्षण कराना आवश्यक है उसमें उपलब्ध मछली का जाति के अनुसार विश्लेषण तथा वहाँ के वर्तमान मछली पकड़ने के तरीकों की जानकारी प्राप्त की जाय तत्पश्चात् संरक्षण व्यवस्था बनायी जाय और क्रियान्वित की जाय, जिससे मछली की संख्या और उनके आकार और उपलब्धि के अनुसार उन्हें मारने पर नियन्त्रण रखा जा सके। आवश्यकता होने पर इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जलक्षेत्रों की परिस्थितियों में सुधार और नयी मछलियों का संचय भी किया जा सकता है। सर्वेक्षण-कार्य सबसे अधिक आवश्यक है और इसमें आर्थिक, जैविकी और भौतिक सभी परिस्थितियों का सर्वेक्षण सम्मिलित है। इस कार्य को कराने के लिए मत्स्य-वैज्ञानिकों की सहायता लेना आवश्यक है।

मत्स्य-पालन-तालाब का निर्माण और उनका उपयोग अन्य बड़ी-बड़ी संस्थाओं जैसे सार्वजनिक निवासगृह, कारागृह, पागलखानों इत्यादि में दोहरे लाभ से किया जा सकता है। इस प्रकार की संस्थाओं में विपुल परिमाण में जल प्रयोग होता है, साथ ही साथ बहकर जाने वाला मल-प्रवाह भी तालाब में लिया जा सकता है। इसके फलस्वरूप संस्था के लिए ताजा और सस्ता प्रोटीन उपलब्ध हो जायेगा। उचित व्यवस्था-प्रणाली अपनाकर छोटे से छोटे तालाब से पर्याप्त आहारयोग्य मछली प्राप्त की जा सकती है।

ग्रामीण विकास में मत्स्य-पालन

जलक्षेत्र ग्रामीण विकास योजनाओं की जान है। यह अनुपयोगी समझा जाने वाला भूखंड मत्स्य-पालन के ज्ञान और प्रसार से उपयोगी हो गया है। हर क्षेत्रीय पञ्चायत को चाहिये कि वे अपने क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक अस्थिर-जल अथवा तालाबों की देख-भाल और व्यवस्था उसी भाँति करें, जैसे वे अपने खेतों की करते हैं। यह समाज की आहार-समस्या हल करने के साथ, श्रमिकों को कार्य भी देता है। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह भी आवश्यक प्रतीत होता है कि शासन की ओर से प्रसार अधिकारी अधिक संख्या में नियुक्त किये जायँ। जिससे हर जगह सलाह दी जा सके। अन्वेषकों की भी वृद्धि की जाय, जो विशेष परिस्थितियों का अध्ययन कर उचित मार्गदर्शन करें।

देश में स्वतन्त्रता के बाद राज्य को समाजवाद के अनुरूप बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। पञ्चायतें विधान-वाद की निम्नतम सीढ़ी मानी गयी है। पञ्चायतों को स्थानीय शासन का रूप देकर उन्हें समाजवाद की स्थापना के लिए दृढ़ किया जा रहा है। इसके लिए यह भी आवश्यक हो गया है कि पंचायतों को विशेष अधिकारों के साथ स्थानीय कार्य चलाने के लिए विशेष आय के साधन भी प्रदान किये जायँ। ये साधन ऐसे होने चाहिये जिससे गाँव-शासन में एक दूसरे के प्रति कटुता अथवा स्पर्धा न बढ़े और पर्याप्त आय भी होती रहे। विभिन्न राज्यों ने ऐसे कार्यक्रमों की सूची बनायी है जो ग्राम-पंचायतों की आय के स्रोत हो सकते हैं। इन सबकी सूची में गाँव-तालाब में मछली-पालन करना और उससे पर्याप्त आय प्राप्त करना सबसे ऊपर रखा गया है। आर्थिक दृष्टि से यह खेती के रूप में विकसित किया जा सकता है, जिसमें पूँजी की कम से कम आवश्यकता है।

विभिन्न राज्यों ने कार्यक्रम की जो रूपरेखा बनायी है, उसमें प्रमुख कार्यक्रमों को निम्नांकित रूप से रखा गया है:—

1. विकास-खंड स्तर पर मत्स्योद्योग के लिए अधिकारी प्रदान करना।
2. विकास खंड अथवा क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप और पास ही मछली-बीज-सम्वर्धन के लिए सम्वर्धन-जलाशय बनाना।
3. बीज-वितरण को सरल बनाना।
4. मछुआ-सहकारी-समितियों का निर्माण।
5. मछुआ, ग्राम-पञ्चायत के कार्यकर्ता और अन्य स्थानीय अधिकारियों को प्रशिक्षण देना।
6. मछली-उत्पादन के काम में आने वाले नाव, जाल, तालाब की खाद आदि को सरल शर्तों पर और सस्ते में उपलब्ध करना।

केन्द्र सरकार ने विकास खण्डों की रूपरेखा में मत्स्योद्योग के प्रसार-अधिकारी की कोई पृथक् व्यवस्था नहीं रखी थी। परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ आदर्श विकास खंडों में वर्ष 1960-61 में एक निर्देशक योजना प्रारम्भ की गयी और उसमें विस्तार अधिकारी की नियुक्ति प्रथम बार की थी। इस प्रयोग की सफलता के वाद विभिन्न राज्य सरकारों ने आवश्यकतानुसार अपने-अपने राज्यों में सुलभ संसाधनों के आधार पर प्रसार-अधिकारियों की नियुक्ति कर ली है। प्रसार अधिकारी को क्षेत्र सहायक के रूप में एक सहायक भी प्रदान किया गया। इन सब लोगों ने अपने विकास खण्ड अथवा क्षेत्र की रूपरेखा बनाने के लिए खण्ड का सर्वेक्षण किया और फिर सम्बन्धित पञ्चायतों से सम्पर्क किया।

मत्स्य-बीज को वाहर से लाकर सञ्चय करने में समय और धन के व्यय के साथ-साथ वीज की हानि भी बहुत होती थी। वहाँ बीज दूर तक परिवहन करने में सरल भी नहीं होता है। इसी उद्देश्य से बीज-संवर्धन को पास करने के लिए नर्सरी इकाइयों का भी निर्माण किया गया। ये संवर्धन-इकाइयाँ प्रारंभ में दो एकड़ प्रति विकास खण्ड के हिसाव से रखी गयीं, परन्तु बाद में आवश्यकता को देखते हुए यह बढ़ा दी गयीं। कुछ पञ्चायतों को भी यह कार्य अपनाने की सलाह दी गयी।

बीज-वितरण को सरल बनाने के लिए वीज की माँग के अनुरूप गाँव-गाँव जाकर बीज एकत्र कर उसके वितरण की व्यवस्था की गयी। पहली बार प्रसार-अधिकारी ने हर पञ्चायत में जाकर परिवहन और सञ्चय के सही तरीके को समझाया। बीज को बाँटने में अनुदान की व्यवस्था भी की गयी। अनुदान की राशि आवश्यकतानुसार हर एक राज्य में अलग-अलग रखी गयी। कुछ राज्यों में प्रारम्भ में ही उसका मूल्य आधा लिया गया। इस प्रकार प्रोत्साहन देकर मत्स्य-पालन का विकास किया गया।

पौष्टिक-आहार योजना में मत्स्यपालन का योगदान

ग्रामीण-क्षेत्रों में मछली-उत्पादन और मछली को आहार के रूप में उपयोग कराने के प्रसार की दृष्टि से पौष्टिक आहार-योजना विकास-खंडों में प्रारम्भ की गयी। इस योजना के अन्तर्गत चुनी हुई पञ्चायतों के 25 ग्रामों में मछली उत्पादन के लिए तालाब की मरम्मत का प्रारम्भिक व्यय दिया जाता है। फिर दो वर्ष तक तालाब में मछली-बीज सञ्चय के लिए, मछली-आहार पर तथा देख-भाल के लिए व्यय अनुदान दिया जाता है। उत्पादित मछली में से 20% गाँव के बच्चों, गर्भवती स्त्रियों तथा माताओं में वितरित की जाती है। इससे इन लोगों का स्वास्थ्य तो सुधरता ही है, साथ ही मछली खाने की आदत भी पड़ती है। पौष्टिक-आहार योजना के अन्तर्गत मछली-पालन बहुत सफल हुआ है। इसके अंतर्गत प्रतिवर्ष नये-नये विकास खंडों में कार्यक्रम का विकास किया जा रहा है।

सहकारी-समितियाँ

ग्राम-पञ्चायतें स्थानीय-शासन की इकाई हैं। किसी भी स्थानीय विकास की योजना को पूरा-पूरा लाभ स्थानीय लोगों को मिले, इसका विशेष रूप से ध्यान ग्राम-पञ्चायतें रखती हैं। जिन क्षेत्रों में दस से अधिक मछुआ परिवार थे, उनकी सहकारी-समितियाँ निर्माण कराकर उन्हें इस धंधे की ओर प्रेरित किया गया। इससे स्थानीय लोगों को दोहरा लाभ मिला। स्थानीय उन्नति में सभी को लाभ होता है। मछली मारना, मछली-बीज पालना और सञ्चय करना, मछली निकालना और बेचना आदि कार्य इन्हें सौंपने से सबको कार्य मिलने लगा और स्थानीय विकास के कार्यों में इनका योगदान मिलने लगा। इनके सहयोग से व्यय भी कम होता है और देखरेख, चौकीदारी आदि पर होने वाला व्यय भी नगण्य हो गया है।

ग्रामीणों का मत्स्यपालन के लिए प्रशिक्षण

मछुआ सहकारी-समिति के सदस्य और ग्राम-पञ्चायत के सदस्यों को प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था आवश्यक थी। वर्तमान मत्स्यपालन क्रियाओं से इनकी जानकारी करायी गयी, जिससे ये लोग स्वयं ही अपने कार्य कर सकें। फिर भी, आवश्यक तकनीकी सलाह इन्हें सदैव समय-समय पर दी जाती है। तालाबों की जाँच आदि प्रसार-अधिकारी का कार्य है जो वह पूर्ण करता है। ग्राम-सेवकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में मत्स्योद्योग को जोड़ा गया। स्थान-स्थान पर इनके लिए प्रशिक्षण शिविर लगाये गये। इस प्रकार इस कार्यक्रम को सफल बनाने में योगदान देने वाले सभी स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देकर उसकी सफलता की व्यवस्था की गयी। यहाँ तक विकास अधिकारियों को जानकारी देने के लिए, समय-समय पर विभागीय कार्यकर्ताओं द्वारा भाषण आदि दिये जाते रहे।

शासन ने उद्योग में काम आने वाले आवश्यक उपकरणों को सरल और सस्ती दर पर देने की व्यवस्था भी की। चुने हुए क्षेत्रों में ऐसी सामग्री को या तो अनुदान के रूप में वितरित किया गया अथवा आधे मूल्य पर दिया गया। नाव बनाने के उपकरण, कृत्रिम धागा, नायलोन आदि की कमी होने के कारण विभागीय सहायता के रूप में पर्याप्त मात्रा में इन वस्तुओं को बँटवाया गया।

इन सब उपायों का समुचित फल भी प्राप्त हुआ। बञ्जर पड़ी हुई डूबी भूमि से किया गया उत्पादन सब ओर से सराहा गया। यहाँ तक कि गाँवों में रूढ़िवादी परिवारों ने जो मछलीपालन को हीन दृष्टि से देखते थे, इसके लाभ को समझकर उसमें रुचि ली और मत्स्यपालन की व्यवस्था में सहायता की। राज्य-शासनों की ओर से नियमानुसार सभी तालाबों का स्वामित्व पञ्चायतों को दिये जाने से सुदृढ़ आधार मिल गया और मत्स्योद्योग व्यवस्था सरल हो गयी। मत्स्योद्योग से प्राप्त आय को ग्राम-उन्नति के कार्यों में

लगाने का अधिकार ग्राम-पञ्चायतों को है। इससे ग्रामीण विकास के बहुत से कार्य सरलता से होने लगे हैं।

मत्स्य-पालन आय का स्रोत

यह कार्य यद्यपि सभी राज्यों में सफलतापूर्वक अपना लिया गया है। परन्तु आन्तर-स्थलीय मत्स्य-प्रक्षेत्रों में इस कार्यक्रम को विशेष सफलता मिली है। सर्वेक्षण करने पर मत्स्य-पालन योग्य तालाब सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश में पाये गये हैं तथा राज्य भर में यह कार्यक्रम सफलतापूर्वक अपना लिया गया है। मध्यप्रदेश राज्य में तीन हजार संस्थाएँ यह कार्यक्रम अपना चुकी हैं और ये प्रतिवर्ष 250 से 300 लाख बीज प्रतिवर्ष सञ्चय करती हैं। ग्राम-पञ्चायतें औसतन तीन हजार से पन्द्रह हजार रुपये तक प्रतिवर्ष मछली की आमदनी से प्राप्त कर लेती हैं। इसकी आय से स्थानीय उन्नति के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं कहीं-कहीं तो इसकी आय से हाईस्कूल तक चल रहे हैं। कुछ ग्राम-पञ्चायतें बीज-उत्पादन करने लगी हैं। बंगाल-प्रान्त में 2 अक्टूबर 1964 से यह स्थानीय आय का स्रोत पञ्चायतों को सौंप दिया गया। आन्ध्र - प्रदेश, उड़ीसा आदि अन्य सफल राज्य हैं, जहाँ ग्राम पञ्चायतों ने मछली-उत्पादन करके संतुलित और पौष्टिक आहार प्रदान कर मत्स्य- पालन की सफलता का झण्डा गाड़ दिया है।

ग्राम-पञ्चायतों और मत्स्योद्योग का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक की सफलता से दूसरे की सफलता निश्चित हो गयी है। मत्स्य-पालन की सफलता से पञ्चायती राज्य सुदृढ़ हो गया है। इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सभी के सहयोग से कार्य किया जाय। यदि ग्राम पञ्चायतें गाँव के मछुओं और मछुआ-सहकारी-समितियों को साथ लेकर चलें तो कार्यक्रम और भी अधिक सफल हो सकता है। ग्राम-पञ्चायतों को और भी अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से कुछ राज्यों में इन्हें और भी अधिक उत्तरदायित्व सौंपे जा रहे हैं। गाँव-पञ्चायतों को मछली-बीज संवर्धन कर पास की पञ्चायतों को बीज बाँटने और उथले और टूटे पड़े हुए तालाबों को मरम्मत कर उन्हें भी मछली-पालन के लिए उपयोगी बनाने की योजनाएँ प्रारम्भ कर दी गयी हैं। इस सब प्रगति से यह कहा जा सकता है कि आन्तरस्थलीय मछली-पालन में ग्राम-पञ्चायतें महत्त्वपूर्ण हिस्सेदार बन गयी हैं। और इनकी प्रगति 'अधिक मछली पैदा करने' का लक्ष्य पूरा करके स्पष्ट हो जाती है। मध्यप्रदेश में 'मछली-पालन अधिक आय का साधन' केवल नारा ही नहीं रह गया है वरन्, वहाँ की पञ्चायतें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प्रान्त की वित्तीय व्यवस्था में धीरे-धीरे यह महत्त्वपूर्ण स्थान लेता जा रहा है। इन प्रयोगों ने यह साबित कर दिखाया है कि खेती पर जितनी मेहनत की जाती है, उतनी ही मेहनत करके जलक्षेत्र से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

१६

मछुआ-सहकारिता और मत्स्य-विक्रय व्यवस्था

मछली और मछुओं का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मछली-उद्योग की उन्नति के लिए मछुआ समुदाय की उन्नति भी आवश्यक है। मछुओं की आर्थिक और सामाजिक दशा बहुत ही पिछड़ी हुई है। ये शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत पीछे हैं। समाज में आर्थिक साधनों का अभाव है और इनका स्तर नीचा माना जाता है। मछुओं में सहकारिता से काम करने की परम्परागत प्रवृत्ति है। सामान्य छट्टा जाल में सैकड़ों व्यक्ति साथ-साथ काम करते हैं। तथापि अभी तक इनके इस पैत्रिक गुण को पूर्ण विकास का अवसर नहीं मिल पाया है। समुद्री-मत्स्य प्राप्त करने में बहुत धन लगता है और इसके लिए बड़े आर्थिक साधन आवश्यक हैं। ऐसी स्थिति में ये लोग साहूकारों और व्यापारियों पर आर्थिक सहायता के लिए निर्भर रहते हैं। इन सब परिस्थितियों में सहकारिता सिद्धान्तों पर कार्य करना और संस्थागत सहायता सुलभ होना, इन सबके लिए अति आवश्यक है।

मछुआ-सहकारिता की प्रगति—भारत सरकार और राज्यों ने मछुआ सहकारिता पर विशेष ध्यान दिया है। सन् 1944 में केवल 200 मछुआ सहकारी संस्थाएँ थीं, जिनकी संख्या सन् 1967-68 में 3758 हो गयी। इन समितियों में प्राथमिक समितियों के अतिरिक्त चार शिखर-समितियाँ तथा 45 क्षेत्रीय संघ भी सम्मिलित हैं। रिजर्व- बैंक की एक सूचना के अनुसार प्राथमिक सहकारी समितियों के सदस्यों की संख्या 3,95,125 हो गयी है। सन् 64 से 67 के वीच समितियों की संख्या 8.67% बढ़ी, परन्तु सदस्यों की संख्या में लगभग 11% वृद्धि परिलक्षित हुई। इनके धन में 43.45% की वृद्धि दिखाई दी। सन् 1964-65 में देश में कुल मत्स्य-उद्योग का 1.5% सहकारी-समितियों के माध्यम से हुआ, जबकि 66-67 में समितियों ने 3.5% व्यापार किया।

सन् 66–67 के आकड़ों के अनुसार आठ समुद्र-तटीय राज्यों में कुल समितियों की संख्या 75 प्रतिशत थी, तथा इनकी सदस्य संख्या कुल संख्या की 89% पश्चिमी बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, केरल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र इत्यादि में मछुआ समितियाँ कुल

संख्या की 66% थीं। मछुआ-सहकारी-समितियों के उपयोग में अब इञ्जन लगी छोटी दस नावें हो गयी हैं तथा मछलियों के व्यापार-निर्यात में भी अनुभव प्राप्त करने लगी हैं। महाराष्ट्र और गुजरात में सहकारी समितियों ने निर्यात व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया है। सन् 1968-69 में मछुआ-सहकारी-समितियों के माध्यम से 13.38 लाख का महाराष्ट्र में, तथा 8.85 लाख का गुजरात में निर्यात हुआ।

आन्तरस्थलीय-राज्यों में भी मछुआ सहकारिता सम्बन्धी प्रगति हुई। प्रमुख राज्यों में मत्स्योद्योग विभागों ने यह नीति बना ली है कि मछुआ-सहकारी-संस्था के माध्यम से ही मछली निकलवायी जायगी। मध्यप्रदेश इन राज्यों में प्रमुख है। यहाँ 187 प्राथमिक सहकारी-समितियाँ और चार-क्षेत्रीय-संघों का गठन हो चुका है। मछुओं की सदस्य-संख्या 7000 से ऊपर हो गयी है। सन् 1970-71 में मध्यप्रदेश में 800 टन मछली मछुआ-सहकारी-संस्थाओं के माध्यम से उत्पादित की गयी, जिससे समितियों को अनुमानतः 15 लाख रुपये की आय हुई। उत्तरप्रदेश और राजस्थान में भी अब सहकारी-संस्थाओं को मछली निकालने का काम, प्राथमिकता के आधार पर मिलने लगा है।

राष्ट्रीय स्तर पर केरल का स्थान, मछुआ-सहकारिता के क्षेत्र में सर्वप्रथम है। इस राज्य में 817 सहकारी समितियाँ हैं। इनमें से 623 उत्पादन करने वाली तथा 194 समितियाँ ऋण देने वाली हैं। यहाँ समितियों की सदस्य संख्या 1,03,360 हो गयी है। इसके बाद क्रमशः महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु का स्थान है। मछुआ-सहकारिता की प्रगति इससे स्पष्ट परिलक्षित होती है।

मछलियों की विपणन व्यवस्था—भारतवर्ष में मत्स्य-उत्पादन सन् 1972 में 18.45 लाख मीटरिक टन हो गया है। इसमें से लगभग दो तिहाई समुद्री-स्रोतों से और एक तिहाई आन्तरस्थलीय-स्रोतों से उपलब्ध होती है। मूल्य के हिसाब से देखा जाय, तो एक तिहाई उत्पादन अर्थात् आन्तरस्थलीय -मछलियों की कीमत समुद्री-मछलियों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। भारत की प्रति व्यक्ति वार्षिक मछली की खपत 2.6 किलोग्राम है, जो किसी भी विकासशील देश की तुलना में बहुत कम है। यद्यपि मछली का उत्पादन बढ़ाने के प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं। मत्स्योद्योग की सफलता के लिए मछली की सही विपणन-व्यवस्था की उन्नति भी आवश्यक है। भारत में मछली और मछली से उत्पन्न पदार्थों का निर्यात बढ़ रहा है और विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाली वस्तुओं में इसका प्रमुख स्थान है। सन् 1972 में मछली निर्यात से देश को 58.13 करोड़ रुपये की आय हुई।

देश की विपणन-व्यवस्था का अध्ययन निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है :—

1. मछली इकट्ठे होने के केन्द्र, उनकी स्थिति, मछली भेजने के पूर्व सफाई इत्यादि की व्यवस्था।

2. परिवहन के साधन, तरीके और आधान।
3. मछलियों के संग्रहागार की व्यवस्थाएँ।
4. मछली के बाजार—(अ) थोक बाजार (ब) फुटकर बाजार।
5. अन्य समस्याएँ—जैसे शीतागार की सुविधा, बर्फ तथा प्रोसेसिंग की व्यवस्थाएँ।
6. विपणन-व्यवस्था के विकास की आवश्यकता और सहकारिता का उपयोग।

1. मछली इकट्ठे होने के केन्द्र—भारतवर्ष में मछली मारकर उन्हें किनारे पर लाकर इकट्ठा करने की प्रथा का बहुत अभाव रहा है। देश के समुद्री तथा आन्तरस्थलीय मछली मारने के केन्द्रों के समीप मछली इकट्ठे करने के केन्द्र बहुत दूर तक फले हुए हैं। साधारणतः इन केन्द्रों से रेलगाड़ी या मोटर इत्यादि वाहन या अन्य सड़क-परिवहन के साधन बहुत दूर हैं। भीतरी हिस्सों में होने के कारण ऐसे स्थलों से मछली को अन्य स्थलों को भेजना एक समस्या बन जाती है। मछली के बीज के व्यापार में भी ऐसी ही समस्याएँ हैं। इस व्यापार में तो दोनों ओर ही यह समस्या है—भीतरी भाग में स्थित मत्स्य-बीज एकत्र करने के केन्द्रों से बाजार तक बीज लाने की और बाजार से अन्दर गाँवों में फैले हुए तालाबों और झीलों तक उन्हें पहुँचाने की।

अधिकांश मछुए मछली पकड़ने के बाद मछलियों को साफ नहीं करते। पकड़ने के स्थलों पर किसी भी प्रकार की सफाई, आँतों आदि को निकालने की क्रिया नहीं की जाती है। ऐसे स्थानों से प्रमुख बाजार तक आने के लिए परिवहन के साधन भी शीघ्रगामी नहीं होते हैं। अतः सफाई के अभाव और धीमे परिवहन के कारण शीघ्र सड़ने वाली मछली बाजार में पहुँचते-पहुँचते खराब होने लगती है। यही कारण है कि बाजारों में मछली का पूरा-पूरा मूल्य नहीं मिल पाता है। यदि मछलियाँ नाव पर ही भलीभाँति साफ कर ली जायँ; उनकी आँतें आदि निकाल दी जायँ और उन्हें बर्फ में भलीभाँति सुरक्षित कर दिया जाय; तो मछली उचित अवस्था में रखी जा सकती है। बाजार में मछली के अच्छी हालत में पहुँचने पर उसका अच्छा मूल्य प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था प्रदान करने की दिशा में शासन की ओर से अब ध्यान दिया जा रहा है।

2. परिवहन—इन एकत्र करने के स्थलों से प्रमुख मछली-बाजारों, संग्रहागारों और सञ्चय केन्द्रों आदि तक मत्स्यों को परिवहन के विभिन्न साधनों तथा विभिन्न स्थानीय तरीकों से ले जाया जाता है। इन स्थानों में प्रमुख साधन निम्नांकित हैं:—

1. सिर पर, कंधों पर बहँगी में।
2. साइकिल।
3. बैलगाड़ी।
4. घोड़ागाड़ी।

5. जहाज या नावों द्वारा।
6. मोटरगाड़ी।
7. रेलगाड़ी।

उपलब्ध और मितव्ययी परिवहन के साधन का ही प्रयोग प्रमुखतः किया जाता है। अन्य साधनों का प्रयोग स्थान की दूरी के आधार पर ही किया जाता है। मछली की मात्रा, उसके प्रकार और व्यय सीमा ऐसे विचारणीय विषय हैं, जिनके आधार पर परिवहन के साधन का निर्णय लिया जाता है। लम्बी यात्रा के लिए साधारणतः रेल का प्रयोग किया जाता है। रेल में साधारण पार्सल किराये की दर से, आधा किराया ही मछली के लिए लिया जाता है। रेलवे मछली को ढोने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान कर रही है। कुछ मार्गों पर अब शीतागार-युक्त रेल के डिब्बे चलाये जा रहे हैं, जिनमें केवल मछली ही ले जायी जाती है। इस सुविधा के विस्तार के लिए रेलवे योजनाएँ बना रही है। मछली के बच्चों को ढोने के लिए हवाई-जहाज का भी प्रयोग किया जाने लगा है। राज्य सरकारों ने सड़क-परिवहन-निगम की तथा अतिरिक्त मोटरगाड़ियों की व्यवस्था कर दी है। कुछ राज्यों में विशेष स्थानों पर, शीतागारयुक्त मोटर-वाहन की व्यवस्था भी की गयी है। यदि ये परीक्षण सम्पन्न होते हैं तो इस व्यवस्था को बढ़ाये जाने की सम्भावना है। इन साधनों के द्वारा मछली इकट्ठे करने के स्थानों से, प्रमुख बाजार तथा परिवहन-केन्द्रों तक लायी जाती है।

मछली-परिवहन के लिए प्रयोग में आने वाले आधानों में बाँस की बनी टोकरी, चटाइयाँ, लकड़ी के बक्से, बोरे, मिट्टी के बर्तन, ताड़ के पत्ते की चटाई, टोकनी, टीन के डिब्बे आदि आते हैं। इन सबमें मछली परिवहन के लिए सबसे अधिक बाँस-टोकरी प्रयुक्त होती है। ये बाँस की टोकरियाँ फटे बाँस के खपच्चों से बनायी जाती है तथा ये विभिन्न आकार और रूपों में होती हैं। व्यापारी लकड़ी के बक्सों का भी उपयोग करते हैं। सामान्यतः बाँस की टोकरियाँ चौकोर तथा आयताकार होती हैं। 75 से०मी० × 60 से०मी० × 45 से०मी० आयताकार टोकरी में लगभग चार मन मछली और बर्फ रखी जा सकती है। बाँस के अतिरिक्त ताड़ की चटाइयाँ, सूखी मछलियों को पैक करने के लिए उपयोग की जाती हैं। मछली के बच्चों को परिवहन करने के लिए टीन या मिट्टी के बर्तनों का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक के थैलों को टीन में रख कर मछली के बच्चों को आक्सीजन वायु में पैक किया जाता है। मत्स्य-परिवहन में कीमती साधनों का प्रयोग बहुत ही सीमित किया जाता है।

मत्स्य-परिवहन के तरीकों को सुधारने और मितव्ययी तथा उपयोगी बनाने का कार्य वैज्ञानिक कर रहे हैं। मैसूर की 'फूड टेक्नोलोजीकल प्रयोग शाला' में इस सम्बन्ध में कुछ कार्य हुए हैं।

3. **मछलियों के संग्रहागार**—मत्स्य-संग्रहागारों की सुविधाएँ लगभग नहीं के बराबर ही हैं। साधारणतः बाजारों में मछली आते ही बेचने के लिए प्रस्तुत कर दी जाती है। यह प्रयास किया जाता है कि ताजी मछली, सड़ने के पहले शीघ्र ही बिक जाय। इस जल्दबाजी की वजह से उत्पादक को पूरा मूल्य नहीं मिल पाता है। अब संग्रहागार की सुविधा और बर्फघर की सुविधा की ओर शासन का ध्यान गया है। अतः अब शासन की ओर से अथवा सहकारी समितियों के माध्यम से ये सुविधाएँ दी जा रही हैं। आवश्यकता के आधार पर अब शीतागार की सुविधाएँ शासन की ओर से योजनावद्ध रूप से प्रदान की जा रही हैं।

4. **मछली व्यापार**—मछली का बाजार और व्यापार साधारणतः सभी स्थानों पर मध्यजन अथवा बिचौलियों के हाथ में है। इन बिचौलियों का एक समुदाय है, जो सारे व्यापार को अपने हाथ में ही रहने देना चाहते हैं, जिससे कि इन्हें अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। ये बिचौलिये उत्पादक-मछुओं को उनके उत्पादन का कम से कम मूल्य देते हैं और खरीददार से अधिक मूल्य वसूल करते हैं। व्यापार का लाभ पूर्णतः इन मध्यजनों (बिचौलियों) को ही प्राप्त होता है। भारतवर्ष के मछुए निर्विवाद रूप से सभी स्थानों पर बहुत ही गरीब हैं, जिनको मछली मारकर वर्षभर में, सामान्य-जीवन-यापन के लिए भी धन कठिनाई से प्राप्त होता है। ये बिचौलिये आवश्यकतानुसार मछुओं को धन पहले ही दे देते हैं। तत्पश्चात् बदले में उनका सारा उत्पादन अपने मनमाने निश्चित भार पर क्रय कर लेते हैं, भले ही बाजार का भाव कुछ भी रहे। इस भाँति बिचौलिये अधिकतम लाभ प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

थोक-बाजार—थोक-बाजार तरह-तरह के गन्दे स्थानों पर पाया जाता है। ये बाजार समुद्र के किनारे, जलाशय के किनारे अथवा किसी पक्के भवन में हों तथापि अधिकांश थोक-बाजार अस्वास्थ्यकर और अशौचस्थानों पर ही स्थापित हैं। ये बाजार मुख्यतः मछली विक्रेताओं, बिचौलियों, और आढ़तियों के हाथ में हैं। मछुए का अपने उत्पादन के विक्रय के संबंध में बहुत ही कम हाथ रहता है। देश भर में मत्स्य-उत्पादन का लगभग 5% ही मछुआ-सहकारी-समितियों के माध्यम से बेचा जाता है।

थोक-बाजार में बिक्री की व्यवस्था प्रमुखतः नीलामी के द्वारा की जाती है। नीलामी की प्रक्रिया स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न है। नीलामी में बोली मछली की ढेरी, मछलियों की गिनती (दर्जन अथवा कोरी या बीसी) अथवा क्विंटल भाव के लिए लगायी जाती है। अधिकतम मूल्य देने वाला व्यक्ति माल क्रय कर लेता है। बोली कम से अधिक की ओर बढ़ती है। इन बाजारों में भी बहुत जल्दी-जल्दी भाव बदलते रहते हैं। ये भाव कभी-कभी आधे-आधे घण्टे पर भी बदलते हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ हर पग पर अस्थिरता हो, मछुओं को सही और उचित मूल्य मिलना सम्भव नहीं है।

फुटकर बाजार—देश भर में मछली के फुटकर बाजारों की स्थिति, स्थान और परिस्थितियाँ सामान्यतः असन्तोषजनक हैं। मछली बेचने के लिए न तो बाजारों में साफ-सुथरी मक्खी-मच्छर से बचाव वाली दुकानें है और न ही मछली रखने के लिए साफ चबूतरे ही हैं। वरन् उखड़े हुये फर्श तथा ऊँचे-नीचे गड्ढेदार स्थान ही मछली-बाजार के रूप में दिखाई देते है। बाजारों में सर्वत्र धोने और सफाई करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं की जाती है। बची हुई मछली को दूसरे दिन तक रखने के लिए ठण्डे बक्से प्रदान करने अथवा शीतागारों की कोई भी व्यवस्था नहीं है। स्वच्छ हवा और रोशनी के लिए पर्याप्त रोशनदान भी नहीं होते हैं। यहाँ मछली की बिक्री का भी कोई एक तरीका नहीं है। मछली की प्रजातियों के अनुसार यह ढंग बदलता रहता है। देश में मत्स्य-बिक्री के लिए प्रचलित निम्नांकित तरीके हैं :—

1. मछली, प्रति नग के हिसाब से,
2. मछली, प्रति जोड़ी के हिसाब से,
3. मछली, प्रति किलो, तौल के हिसाब से,
4. ढेरी लगाकर, ढेरी के हिसाब से।

छोटी सूखी और तली मछलियों की ढेरी लगाकर बेचने की क्रिया सामान्य है। कुछ स्थानों पर बाजारों में बड़ी मछलियों की ढेरी लगाकर बेचना भी प्रचलन में है।

ताजी और सड़ी मछली—बाजार में व्यापारी यह प्रयास करता है कि उसकी सभी मछलियाँ बिक जायँ। अपने इस प्रयास में वह सड़ी और खाने के लिए अनुपयोगी मछलियाँ भी बेच डालता है। इस स्वार्थपरता में बिक्रेता समाज के साथ किये जा रहे अहित का ध्यान नहीं रखता। अधिकांश राज्यों में बिक्री-बाजार में मत्स्य-वैज्ञानिकों या मत्स्य-विभाग का नियमानुसार कोई नियन्त्रण नहीं है। अतः स्वयं खरीददार को ही इस ओर सतर्कता बरतनी होगी।

सड़ी मछली और अच्छी मछली की पहचान साधारणतः उसके गलफड़ों के रंग, उसकी बू या गंध, उसके शरीर की श्लेष्मा तथा मांस को देख कर की जाती है।

फुटकर बाजार की आवश्यकताएँ—भारतीय मछली-बाजारों में सामान्यतः बर्फ का प्रयोग कर मछली को सुरक्षित रखने की व्यवस्था नहीं पायी जाती और खुले स्थान पर पड़ी मछली ऐसे ही बेच दी जाती है। शीतागार-युक्त वाहन और शीतगारों की सुविधा लगभग नहीं है। मछली पकड़ने की नावें आदि जो प्रयोग की जाती हैं उनमें मछली रखने के लिए स्थान और बर्फ की सुविधा नहीं पायी जाती है। मछलियों को निरोग (क्योर) करने, टीन के डिब्बे में बन्द (केन) करने तथा प्रशीतन द्वारा सुरक्षित रखने (फ्रीज) की सुविधाएँ भी बहुत ही सीमित हैं; केवल कुछ स्थानों पर ही हैं और ये भी पर्याप्त

नहीं हैं। अब इस ओर कुछ व्यापारियों और शासन का ध्यान आकर्षित हुआ है। वर्फ-घरों फ्रीजिंग यन्त्रों आदि को लगाने की व्यवस्था होती जा रही है तथापि यह संख्या आवश्यकता से बहुत कम है। यदि पर्याप्त बर्फ की सुविधा ही हर उत्पादन केन्द्र के निकट उपलब्ध हो जाय, तो अच्छी हालत में ही मछली को बाजार में बेचने की व्यवस्था हो सकती है। विविध आन्तरस्थलीय राज्यों में मत्स्य-विभागों का ध्यान अब इस ओर गया है। बड़े जलाशयों के पास, जहाँ निरन्तर अधिक उत्पादन होता है, वर्फघरों को लगाया जा रहा है। जहाँ-जहाँ यह सुविधा प्रदान की जा चुकी है वहाँ के फल बड़े ही संतोष-जनक रहे हैं।

विपणन व्यवस्था के विकास की आवश्यकता और सहकारिता का उपयोग---मत्स्य-विपणन का कोई सुदृढ़ रूप नहीं है, यह बड़े अस्त-व्यस्त ढंग से चल रहा है। इसकी कोई सुगठित संस्था नहीं है। भारत की मत्स्य-बिक्री व्यवस्था की समस्याएँ उलझी हुई हैं, और विभिन्न प्रकार की हैं और इन पर विशेष ध्यान देकर ही इन्हें सुलझाया जा सकता है। सारा का सारा व्यापार बिचौलियों अथवा आढ़तियों के हाथों में ही रहा है। ये दोहरा मुनाफा कमाते हैं। ये बिचौलिये किसी अन्य नाम से आढ़तियों का व्यापार भी करते हैं। इस कारण एक ओर तो मछली की कीमत फुटकर बाजार तक पहुँचते-पहुँचते बढ़ जाती है, दूसरी ओर उत्पादक को बहुत कम कीमत मिलती है। वर्तमान विपणन-व्यवस्था में उत्पादक और खरीदार दोनों को ही हानि हो रही है। इस व्यवस्था में सह-कारी-समितियों को कुछ करने के लिए बहुत कम मौका है, क्योंकि उक्त व्यापारियों का संगठन सुदृढ़ है। किसी दूसरे को उनके संगठन में घुसने की गुन्जाइश नहीं है। यदि कोई संस्था इनके बीच में घुस कर व्यापार करना चाहती है, तो उसे घाटा दिलाकर अस-फल बनाने की ये लोग पूरी-पूरी कोशिश करते हैं। फलस्वरूप वह संस्था विशेष व्यापार में अलग हो जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि बिचौलियों को हटाने के लिए एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय; जो मछुओं को, बिचौलियों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं और साधनों को स्वयं प्रदान कर सकें; जिससे मछुए मत्स्य-व्यापार में आत्मनिर्भर होकर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकें।

उपरोक्त कारणों से ही सहकारी-समितियों और विपणन-संघों की आवश्यकता प्रारंभ होती है। प्रत्येक प्रादेशिक शासन में मछुओं के लिए साख-सहकारी-समितियाँ और बिक्री-सहकारी-संघों को बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके लिए विशेष रूप से धनराशि का प्रावधान है। ये सहकारी समितियाँ धनराशि, नाव, जाल, रेशम, सूत आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ मछुओं को प्रदान करती हैं। इन्हें वसूल करने के लिए सरल ढंग से धीरे-धीरे वसूली की विधि अपनायी जाती है और दिये गये

ऋण पर व्याज की दर बहुत कम ली जाती है। कहीं-कहीं मछली-सहकारी-समितियाँ विपणन की व्यवस्था, परिवहन के साधन, ट्रक आदि की व्यवस्था भी करती हैं। सहकारी-समितियों का महत्त्व मत्स्योद्योग के लोग अब भली-भाँति समझने लगे हैं। सफल और बड़ी सहकारी समितियों ने वर्फघर, शीतागार और संग्रहागार आदि निर्माण कर लिये हैं और सहकारी समितियों के सदस्य-मछुओं को बिक्री की अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं। योजना की सफलता के लिए ईमानदार कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। यदि इस प्रकार के व्यक्ति मिल जायँ, तो बिचौलियों को हटाना बहुत सरल हो जाता है। यह देखा गया है कि समुद्री-किनारों के मछुओं में, सहकारिता का प्रभाव अधिक पड़ा है। आन्तरस्थलीय राज्यों में सहकारिता का प्रभाव मछली निकालने आदि के क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति कर रहा है। विपणन के क्षेत्र में अभी संतोषजनक कार्य नहीं हो पाया है। इस ओर कुछ राज्य प्रयत्नशील हैं। कुछ क्षेत्रों में आसपास की सहकारी समितियों का और विपणन के उद्देश्य से क्षेत्रीय-संघों का गठन किया जा रहा है। इनसे प्राथमिक समितियों के सदस्यों को लाभ मिलता है। मध्यप्रदेश राज्य में अब तक ऐसे चार क्षेत्रीय संघों का गठन हो चुका है।

राज्य सरकारें कुछ महत्त्वपूर्ण स्थानों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शीतागारों संग्रहागारों और बर्फघरों की सुविधाएँ प्रदान कर रही हैं। इनका लाभ प्राथमिक-सहकारी-समितियों और सदस्य मछुओं को सरल शर्तों और कम मूल्य पर मिल रहा है। कहीं-कहीं राज्य शासन ने मछली ले जाने के लिए इन्जन लगी नावों और ट्रकों की व्यवस्था भी कर दी है। कहीं-कहीं सरकार की ओर से शीतागारयुक्त वाहन भी प्रदान किये जा रहे हैं। स्थान-स्थान पर साफ और स्वच्छ मछली-बाजारों का निर्माण कराया जा रहा है।

भारत-सरकार ने परिस्थितियों के अध्ययन के बाद देशीय स्तर पर मछली-विपणन की व्यवस्था के लिए योजना बनाने का काम भी किया है। ये सहकारिता के सिद्धान्त पर काम करेंगी। मद्रास, महाराष्ट्र, उड़ीसा आदि समुद्रतटीय राज्यों में अच्छी प्रगति हुई है। कुछ वर्षों पूर्व 'केन्द्रीय-मत्स्योद्योग निगम' का गठन इसी उद्देश्य से किया गया था। इसका मुख्यालय कलकत्ता रखा गया है। सर्वप्रथम देश के सबसे बड़े मत्स्य-विक्रय केन्द्र कलकत्ता की मछली-पूर्ति का काम इस निगम ने अपने हाथ में लिया है। यहाँ प्रतिदिन लगभग 32000 क्विण्टल मछली की प्रतिदिन आवश्यकता है। आवश्यकतानुसार इसका मुख्यालय कलकत्ता रखा गया है। इस निगम ने अन्य राज्यों में भी मछली प्राप्त करने के लिए उप-केन्द्र खोले हैं। ऐसे उपकेन्द्र सामान्यतः उन्ही स्थानों पर खोले गये हैं, जहाँ अधिक से अधिक मछली निकाली जाती है। इस प्रकार निगम ने यह व्यवस्था भी कर ली है जिससे मछली अच्छी से अच्छी हालत में बाजार तक पहुँच सके। इस निगम के बहुत से अंश राज्य शासनों ने क्रय कर लिये हैं। स्पष्ट है कि राज्य शासन भी निगम

के कार्य में भागीदार बन गये हैं। निगम को सफल बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मछली-बाजार और विपणन व्यवस्था अभी तक दिशा-हीन और संस्था-विहीन चल रही थी। अब सहकारी समितियों, राज्य शासन और केन्द्रीय शासन के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप मत्स्योद्योग सुदृढ़ और संस्थागत होता जा रहा है। इससे मछुओं की हालत सुधर रही है और मछली खरीदार तक ताजी और अच्छी हालत में पहुँचाने की व्यवस्था भी हो रही है। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि मछली-व्यापार भारत के अन्य विकसित व्यापारों के समकक्ष शीघ्र ही आ सकेगा। इसका एक लाभ यह भी होगा कि उत्पादक को अधिक लाभ मिलने से तालाबों के मालिकों में रुचि जाग्रत होगी और उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

१७

आन्तरस्थलीय जलों में मछली पकड़ने के उपकरण

पानी से मछली, झींगा आदि खाद्य जीवों को प्राप्त करना एक पुरानी परम्परा रही है । प्रारम्भ में पत्थरों के हथियारों और भालों से मछलियाँ मारने की प्रथा थी । मानव समाज की प्रगति के साथ-साथ मत्स्य-पालन के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हुआ है। भाँति-भाँति के जाल बनाने की सामग्री में कृत्रिम रेशे का धागा, नायलान ट्रवाइन, ट्रेप्स आदि से अब बहुत उपयोगी और अधिक कार्य-क्षमता वाले जालों का निर्माण होने लगा है । यद्यपि भारत में अभी भी विविध प्रकार के जालों का प्रयोग हो रहा है तथापि प्रत्येक स्थान पर हर जाल उपयोग में नहीं लाया जा सकता है । क्षेत्र विशेष के जलाशय और स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर पृथक्-पृथक् जाल प्रयोग में लाये जाते हैं । ये जाल मछलियों की जातियों के हिसाब से बदल दिये जाते हैं । मछली पकड़ने के सिद्धान्त लगभग एक ही हैं तथापि जालों में भिन्नता हो सकती है ।

आन्तरस्थलीय-जलों में मछली पकड़ने के तरीकों ये, धारा में अवरोध उत्पन्न करके, मछली पकड़ना भी सम्मिलित है । नालों और छोटी नदियों में कच्ची दीवार उठा देते हैं और बीच में बाँस की चटाई आदि से पानी निकलने का मार्ग बना देते हैं। इस प्रकार पानी छन जाता है और आस-पास में जमा हुई मछली को सरलता से एकत्र कर लिया जाता है । ऐसे स्थानों में जहाँ वर्षाकाल में पानी भर जाता है, लोग गड्ढे बना लेते हैं । बाढ़ के समाप्त हो जाने पर भी गड्ढों में पानी रह जाता है, और पानी में छोटी-छोटी मछलियाँ इकट्ठी हो जाती हैं । इन्हें सरलता से पकड़ा जाता है । मछली पकड़ने के साधनों में निम्नलिखित मुख्य हैं ––

1. काँटों से मछली पकड़ना
2. पिंजरे
3. घुमौआ जाल

4. छट्टा या घेरनेवाले जाल
5. गिल नेट्स या फसले
6. थैले-नुमा जाल (बैग नेट)
7. ग्रंथि जाल (पर्स नेट)

1. **काँटों से मछली पकड़ना**--काँटों से मछली पकड़ने की क्रिया सामान्य है। बाँसों में धागा बाँधकर और धागे के अंत में एक काँटा लगा कर मछली पकड़ना वर्षाकाल में एक सामान्य बात है। हर गहरे या उथले जल में काँटा लगाकर मछली पकड़ी जाती हैं। काँटों में मछली को आकर्षित करने के लिए चारा लगाया जाता है। काँटों से सामान्यतः मांसाहारी मछलियाँ ही पकड़ी जाती हैं तथापि विशेष प्रकार का चारा लगाकर अन्य मछली भी पकड़ी जा सकती हैं।

बहुत से काँटों को एक साथ मिलाकर लम्बी डोरी से बड़ी संख्या में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इन्हें दामन या बोरसी भी कहते हैं। दामन में मुख्य डोरी लगभग 600 से 800 मीटर लम्बी होती है। यह डोरी 1.3 मि० मी० व्यास की होती है। इस पर 1.5 मीटर की दूरी पर 1 मि० मी० व्यास की छोटी डोरी बँधी रहती है। यह छोटी डोरी लगभग 0.20 से० 0.40 मीटर लम्बी होती है तथा अंत में 9 या 11 नं० काँटा लगा होता है। एक दामन में 400 से 500 काँटे होते हैं। एक दामन पर तैराने की दृष्टि से स्थानीय लौकी के दस-बारह टुकड़े (फ्लोट्स) लगा दिये जाते हैं। ये दामन कहीं-कहीं रात में और कहीं-कहीं सुबह से दोपहर तक लगायी जाती हैं। माँसाहारी मछलियों, जैसे बिडाल-मत्स्य, मरल आदि के लिए यह एक उपयुक्त साधन है।

2. **पिंजरे**--पिंजरे विभिन्न आकारों के होते हैं और अधिकांश बाँस की खपच्चियों से बनाये जाते हैं। साधारणतः ये आयताकार होते हैं, जो 60 से 100 से० मी० लम्बे, 18-15 से० मी० चौड़े और 30-50 से० मी० ऊँचे होते हैं। ये इस प्रकार और ऐसी जगह पर लगाये जाते हैं कि मछलियाँ स्वयं ही इनमें फँसने पहुँच जाती हैं। ये नदियों, नालों और उथले जलों में लगाये जाते हैं। मिश्रित-जलों के क्षेत्र में इनका प्रयोग काफी होता है। बहुत से पिंजरों को एक साथ लगातार पास-पास रख दिया जाता है। इनमें फँसी हुई मछली निकालने के लिए ऊपर की ओर एक मुँह होता है। इनके बीच में मछली को आकर्षित करने के लिए चारा भी रख दिया जाता है।

इलाहाबाद के निकट ऐसा ही एक पिंजरा गाँछ का प्रयोग गंगा में हिल्सा पकड़ने के लिए होता है। पानी में रास्ता रोकने के लिए बाँसों का अवरोध खड़ा किया जाता है और इस अवरोध के अन्त में गाँछ-जाल लगाया जाता है। इस जाल की बनावट तिखूँटी होती है। जाल में हिल्सा के आते ही हलचल होती है और मछुआ तुरन्त ही जाल में से मछली

निकाल लेता है। इस जाल में एक साथ ही पर्याप्त मछलियाँ आ जाती हैं। इस जाल का उपयोग जनवरी से जून तक रहता है।

दूसरी तरह के फिशपॉट 'कुमनी' नर्मदा में होशंगाबाद में उपयोग में लाये जाते हैं। ये पिंजरे गोल बेलनाकार होते हैं। इनका पिछला हिस्सा पतला होता जाता है और आगे मुँह बन्द हो जाता है, इसमें पकड़ी गयी मछलियाँ इकट्ठी होती हैं। पिंजरा 60 से० मी० लम्बा तथा 75 से० मी० व्यास का होता है। मुँह सहित पूरा पिंजरा, बाँस का बना होता है तथा धागे से बँधा होता है। ये पिंजरे एक पंक्ति में धारा के बीच में लगा दिये जाते हैं। बीच-बीच में पत्थर के टुकड़े लगा कर इनको सुदृढ़ रूप में लगा दिया जाता है। ये पिंजरे शाम को लगाये जाते हैं तथा प्रातः काल उठा लिये जाते हैं। इन पिंजरों में बारबस स्टिगमा, चिंगट आदि छोटी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

3. **घुमौआ जाल**––ये जाल वर्ष भर और लगभग सभी प्रान्तों में उपयोग होते हैं। ये सर्वव्यापी जाल हैं। ये शंकु आकार के होते हैं। इनका व्यास बढ़ता-घटता रहता है और विविध स्थानों पर पृथक्-पृथक् होता है। साधारणतः व्यास 3.5 मीटर होता है। नीचे की ओर फंदे अधिक और बड़े होते हैं। ये जाल अधिकतर सूत के बने होते हैं। किनारों पर लोहे, सीसे या मिट्टी के भार बँधे होते हैं, जिससे कि जाल सीधा डूबता है। ये जाल प्रमुख दो प्रकार के होते हैं; एक में नीचे के हिस्से को मोड़ कर उसमें खरियानुमा जेबेंसी बना दी जाती हैं और इसमें मछलियाँ फँस जाती हैं। दूसरे प्रकार के जाल में, नीचे के किनारे से 9 या 11 रस्सी इस प्रकार ऊपर की प्रमुख रस्सी से बाँधी जाती है कि ऊपरी रस्सी खींचने पर सारा जाल सिमट कर एक थैले का आकार ग्रहण कर लेता है। इन सभी जालों के फेंकने का तरीका समान है। मछुआ इसे हाथ में उठा कर फेंकता है। कहीं-कहीं सिर पर घुमा कर फेंकने का भी चलन है। ये जाल किनारे से अथवा नाव पर से पानी में फेंके जाते हैं। इन जालों से छोटी अथवा बड़ी सभी प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

4. **घेरने वाले जाल**––ये जाल भी सर्वाधिक प्रयोग में लाये जाने वाले जाल हैं। घेरने वाले जाल बहुत बड़े-बड़े होते हैं। सामान्यतः एक जाल 50 मीटर लम्बा तथा 2 या 3 मीटर चौड़ा होता है। ऊपर एक मजबूत रस्सी बँधी होती है जिस पर फ्लोट्स लगाये जाते हैं। नीचे की रस्सी में भार बँधे होते हैं जिनसे जाल भूमि पर रगड़ कर चलता है। साधारणतः यह जाल पानी में फैला कर बहाव को घेर लेता है और मछुए धारा के विपरीत जाल चलाकर दोनों कोनों को किनारे पर ले आते हैं। इस प्रकार सभी मछलियाँ जाल में फँस जाती हैं। कभी-कभी जब जाल चलाया जाता है तो उल्टी तरफ से कुछ मछुए पानी में आवाज करते हैं और पानी को पीटते हैं। इस प्रक्रिया से डरकर अधिक मछलियाँ जाल की ओर पहुँच जाती हैं।

ये जाल अधिकतर सूत की डोरी के बने होते हैं तथापि अब कहीं-कहीं नायलोन की कृत्रिम डोरी से भी बनने लगे हैं और इनमें फ्लोट्स की जगह लौकी के तुम्बे, स्थानीय घास बाँस और नये रबर के फ्लोट्स इत्यादि उपयोग किये जाते हैं। इन जालों के भी निम्नांकित कई प्रकार हैं :—

महाजाल—यह जाल किनारे से गहराई तक ले जाकर लगाया जाता है। जाल का एक किनारा नदी या जलाशय के किनारे पर छोड़ दिया जाता है और नाव की सहायता से जाल समस्त जलक्षेत्र घेर लेता है। धीरे-धीरे मछली के साथ इसे किनारे पर खींच लिया जाता है। इस जाल की बनावट सामान्य जाल से भिन्न होती है। इसके बीच में थैलेनुमा लम्बी पूँछ होती है जिसमें सभी मछलियाँ चली जाती हैं। इस जाल की लम्बाई लगभग 240 मीटर होती है। जाल को पानी में से इस प्रकार खींचा जाता है कि नीचे की रस्सी किनारे पर पहले पहुँचती है, परन्तु यह कभी भी भूमि से उठने नहीं दी जाती है।

महाजाल जैसा ही एक दूसरा जाल है करिया जाल। यह इलाहाबाद में गंगा के क्षेत्र में उपयोग में आता है। इस जाल की पूँछ बड़ी होती है तथा लम्बाई में भी यह महाजाल से दुगुना लम्बा होता है।

छट्टा जाल—यह जाल उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में बहुतायत से प्रयोग होता है। राजस्थान में इसे घसीटा-जाल के नाम से पुकारते हैं। इन जालों में, नीचे के हिस्से को मोड़ कर,झोली का रूप दे दिया जाता है। इसी तरह जाल के बीचमें एक लाइन में झोलियाँ बनी होती हैं। इन जालों की झोलियों के मुँह पर वजनदार सिंकर्स बँधे होते हैं। ये जाल भी महाजाल की भाँति ही प्रयोग किये जाते हैं। दक्षिण भारत में उपयोग में आने वाले इस प्रकार के जाल में केवल एक ही झोली होती है।

नौका से प्रयोग होने वाले पाश जाल—इन जालों में हुगली में प्रयोग होने वाला बूरोजाल आता है। इस जाल में एक प्रमुख थैलानुमा सूँड और दो किनारे के छोटे भाग होते हैं। इसे एक ओर नाव से बाँध कर नदी में फैला दिया जाता है तथा कुछ समय पश्चात् जाल को नाव पर इकट्ठा कर लिया जाता है। इसमें मुख्यत: विडाल-मत्स्य, प्रचिंगट और गोवी इत्यादि मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

चौंदी-जाल में मछलियों के झुण्ड को घेर लिया जाता है। यह जाल गोलाई में चलाया जाता है। धीरे-धीरे गोला छोटा करते जाते हैं और बीच की मछलियाँ पिलना आदि से इकट्ठी कर ली जाती हैं।

5. गिलनेट्स या फसले—ये आयताकार जाल होते हैं। इनके ऊपरी हिस्से पर रस्सी बँधी होती है। कुछ जालों में नीचे की ओर भी रस्सी होती है और कुछ में नहीं भी होती। ये जाल तालाबों, जलाशयों और नदियों में सभी जगह प्रयोग किये जाते हैं।

स्थान के अनुसार इनकी गहराई तथा फन्दे में अन्तर रहता है। इस प्रकार के सभी जाल प्रायः एक-सी बनावट के होते हैं तथा एक ही तरह प्रयोग किये जाते हैं।

ये जाल आजकल नायलोन के कृत्रिम धागे से बनते हैं। धागे की मोटाई, जाल के फन्दे के आधार पर रहती है। ऊपरी डोरी भी नायलोन की ही पड़ती है। इनमें फ्लोट्स लगाये जाते हैं। जाल लगाने के प्रयोगों के आधार पर सतह, स्तंभ और नितल पर लगाये जाने वाले जालों की दृष्टि से इनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

गिलनेटों का वर्गीकरण प्लावी (ड्रिफ्ट जाल) तथा स्थिर (सेट गिलनेट) दो रूप में किया जाता है। स्थिर (स्टेशनरी) गिलनेट में एक कोने पर भारी लंगर बँधा होता है, अन्य गिलनेटों में लंगर नहीं बँधा होता है।

इन जालों में मछली गलफड़ों से पकड़ी जाती है। इन जालों के फन्दों के आकार पर मछलियों का पकड़ना निर्भर रहता है। फँसी हुई मछलियाँ जितना ही छूटने का प्रयास करती है, उतनी ही वह फन्दों में जकड़ती जाती हैं। गिलनेट्स को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए अब इनमें खड़ी मोटी रस्सी डाल कर इनका फ्रेमिंग कर दिया जाता है। इससे जाल उलझता नहीं है और मछलियाँ अधिक फँसती हैं। गिलनेट्स का आकार 100 मीटर लम्बा तथा 4 से 8 मीटर तक गहरा होता है।

6. थैलेनुमा जाल (बैग-नेट) या बीनजाल––नदियों में उपयोग में आने वाले ये जाल लम्बी चिमनी के आकार के होते हैं। इनके माप स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न होते हैं। इन जालों के आकार के आधार पर ही पकड़ी जाने वाली मछलियों की स्थिति होती है। इनका व्यास 10 से 15 मीटर तथा लम्बाई 15 से 20 मीटर होती है। जाल का मुँह धारा की ओर रहता है तथा पानी के वेग के कारण खुला रहता है। वास्तव में पानी को छानकर मछली पकड़ी जाती है। एक रस्सी की सहायता से पूँछ का हिस्सा बाँधा जाता है और आवश्यकतानुसार पृथक् किया जा सकता है, इस क्रिया में मुख्य जाल पानी में ही रहता है। पूँछ के हिस्से में से मछली निकाल लेने के बाद इसे पुनः मुख्य जाल में बाँधकर पानी में डाल दिया जाता है।

इन जालों में सभी प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। हवा न चलने पर शान्त मौसम और पानी का एक-सा बहाव इन जालों से मछली पकड़ने के लिए सर्वोत्तम समय है। ये जाल गहरी नदियों में लगाये जा सकते हैं। ऐसे तीन-चार अथवा अनेक जाल एक साथ लगाये जाते हैं। इन जालों से इकट्ठी की गयी मछलियाँ अस्थायी रूप से नाव में रख दी जाती हैं।

इस प्रकार के जालों में से एक जाल वेहुण्डी या बुवा जाल है। इस जाल से बंगाल, विहार की नदियों से मछली-बीज (जीरा, अंडे) इकट्ठे किये जाते हैं। ये जाल मछली

इकट्ठा करने के मौसम में, दिन-रात पानी में ही लगे रहते हैं तथा बीच-बीच में इनमें से मछलियों के बच्चे इकट्ठे कर लिये जाते हैं।

बंगाल के शिकी जाल, दक्षिण भारत के सिंगली वलाई आदि इसी प्रकार के जाल हैं। पेलनी भी इसी प्रकार के छोटे जाल हैं। पेलनीजाल एक मछुए द्वारा पानी में धारा की विपरीत दिशा में, तली को रगड़ते हुए चलाया जाता है। थोड़े-थोड़े समय बाद इसको उठाकर मछली निकाल ली जाती है। जाल स्थिर करके मछलियों को दूर से जाल की ओर भागने के लिए प्रेरित किया जाता है। तत्पश्चात् जाल से मछली एकत्र कर ली जाती है।

ग्रंथि जाल (पर्सनेट)—प्रव्रजन करने वाली (माइग्रेटरी) मछलियों को थैलेनुमा (बैग) जालों में फँसाना इन जालों का मुख्य उद्देश्य होता है। यदि जाल का मुँह तुरन्त ही बन्द न किया जाय तो मछलियों के भाग जाने की पूरी संभावना रहती है। जाल के मुँह को बटुए की भाँति बन्द कर सकना इन जालों की विशेषता होती है।

ये जाल धनुषाकार होते हैं तथा उनका मुँह अर्धचन्द्राकार होता है। मुँह के ऊपर की ओर निचले हिस्से में बाँसों की चौखट लगायी जाती है। ऐसे फ्रेमों के लिए टेढ़े करके बाँस दो हिस्सों में जोड़े जाते हैं। इन जालों का निर्माण सन, सूत अथवा नायलान के धागों से किया जाता है। इनके फन्दे 42 से 50 मि० मी० के होते हैं। मुँह बन्द करने की रस्सी बाँस की चौखट के बीच में बँधी होती है। मलिन पानी में मुँह को बन्द करने वाली और खोलने वाली रस्सी अपेक्षाकृत छोटी होती है। जाल का मुँह खोलने वाली रस्सी, सामान्यत: 0.85 से 1.9 मीटर तक लम्बी होती है। निचले हिस्से में फ्रेम के बीच में जहाँ बंद करने वाली रस्सी बाँधी जाती है एक भारी पत्थर भी बाँध दिया जाता है।

ये जाल नाव द्वारा उपयोग किये जाते हैं। प्राय: एक नाव से एक ही जाल चलाया जाता है। कभी-कभी एक नाव से दो जाल भी प्रयोग किये जाते हैं। नाव जब जल की धारा में धीरे-धीरे बहती है, ये जाल मुँह खोलकर पानी में डाल दिये जाते हैं। जैसे ही मछुआ जाल में मछली का आगमन महसूस करता है वह जाल को बन्द कर ऊपर उठा लेता है। इन जालों में अधिकतर प्रव्रजक मछली हिल्सा ही गंगा नदी में पकड़ी जाती है। हिल्सा के मौसम में पानी के बहाव के साथ बहती हुई अनेक नावें दिखाई देती हैं।

शांगला-जाल (बंगाल) तथा कमेल-जाल (उत्तर प्रदेश) इस प्रकार के जालों के कुछ उदाहारण हैं।

जाल की निर्माण सामग्री—मछली पकड़ने के उपकरणों में विभिन्न प्रकार के जाल प्रमुख हैं। जालों को धागे से बुनकर बनाया जाता है। कच्चे सूत अथवा तकली पर बटे हुए धागों से जालों का निर्माण किया जाता है। परम्परागत मछुए अधिकतर अपने

हाथ से आवश्यकतानुसार मोटे धागे तैयार कर, जाल बुनते हैं। सम्प्रति बटे हुए धागे खरीदकर जाल बनाने की परपम्रा चल गयी है। सूती धागे के स्थान पर अब नायलोन या अन्य कृत्रिम रेशे से तैयार धागों से भी बहुत से जाल बनाये जाते हैं। कृत्रिम रेशों का प्रयोग गिलनेट्स या फसलों में तो प्रायः सभी जगह होने लगा है। कृत्रिम रेशे मजबूती, टिकाऊपन और रखरखाव की दृष्टि से सूत की अपेक्षा अधिक अच्छे माने जाते हैं। इनका प्रयोग मुख्यतः जलाशयों में किया जाता है। मछली के बच्चे पकड़ने के जाल और अन्य कुछ ऐसे ही जालों में कपड़ों का प्रयोग भी होता है। सन की रस्सी तथा पतला धागा भी जालों के लिए पसन्द किया जाता है। नारियल की जटा की रस्सी पानी में बहुत ऐंठती है अतः इसका प्रयोग कम ही किया जाता है।

सरकण्डा, बाँस, सोला, हल्की लकड़ी, सूखी लौकी, मुँह बन्द किये गये टीन (विभिन्न आकार-प्रकार के), रबर के और अन्य कृत्रिम साधनों से तैयार सामग्री से जालों में प्लावी (फ्लोट्स) लगाये जाते हैं। इन फ्लोट्स का रूप, आकार और माप स्थिति और जाल के अनुसार ही होता है। जालों में सिंकर्स भी बहुत प्रकार के लगाये जाते हैं। ये मिट्टी, ईंट, पत्थर, सीसे और लोहे के होते हैं। इनका आकार-प्रकार और भार जाल के अनुसार ही बदलता रहता है।

जालों का रक्षण——जालों का प्रयोग लगातार बहुत समय तक पानी में होता रहता है। अतः सूत के जाल शीघ्र सड़ने लगते हैं। इनका जीवन बढ़ाने के लिए उचित देख-भाल करना अति आवश्यक है। गाब नामक वृक्ष के रस में, जालों को डुबोकर रक्षण करना पुरानी प्रथा रही है। कोलतार और मिट्टी के तेल में भी जालों को डुबोकर रक्खा जाता है। सूती जालों के बचाव के लिए बबूल की छाल का घोल उपयोग किया जाता है। कहीं-कहीं रंगों के प्रयोग भी किये जाते हैं। कृत्रिम रेशों से बनाये गये जालों में अनु-रक्षण की कोई समस्या नहीं होती।

१८

मत्स्योद्योग संबंधी शिक्षण-प्रशिक्षण

किसी भी उद्योग का विकास प्रशिक्षित और सुशिक्षित व्यक्तियों पर निर्भर करता है। विश्व के मत्स्य-उत्पादन देशों में भारत सातवें स्थान पर है तथापि मत्स्योद्योग प्रशिक्षण में बहुत पीछे है । उद्योग की विभिन्न शाखाओं में विशेषज्ञों और शिल्पज्ञों की पूर्ति तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण-सुविधाओं से ही की जा सकती है। आज की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी पर्याप्त प्रशिक्षण सुविधाएँ नहीं हैं। अतः यह विचारणीय है कि भविष्य में मत्स्योद्योग के विकास के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की पूर्ति करना किस प्रकार सम्भव होगा। राज्य-सरकारों और केन्द्रीय-शासन ने मत्स्योद्योग संबंधी शिक्षण-प्रशिक्षण पर पर्याप्त कार्य किया है। आज देश में विभिन्न स्तर के और विविध विषयों के अनेक प्रशिक्षण संस्थान कार्य कर रहे हैं।

मत्स्योद्योग-प्रशिक्षण की व्यवस्था देश में अभी भी तदर्थ रूप में की जाती है। मत्स्योद्योग कार्यकर्ता का चयन अभी भी प्राणि-शास्त्र और जीव-शास्त्र के स्नातकों में से ही किया जाता है, जिन्हें बाद में मत्स्योद्योग की विशेष शाखा में एक या दो वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है तथापि यह दिन--प्रतिदिन बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। इस समय संपूर्ण देश की मत्स्योद्योग- प्रशिक्षण की नीति निर्धारण करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

वर्तमान शिक्षण व्यवस्थाएँ—केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक (मैसूर), उड़ीसा, उत्तर-प्रदेश इत्यादि कुछ प्रान्तों में हाईस्कूल स्तर पर 9वीं कक्षा से 11 वीं तक मत्स्योद्योग को ऐच्छिक विषय के रूप में प्रारम्भ कर दिया गया है। परन्तु स्कूलों में इनके पढ़ाने की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण विषय लोकप्रिय नहीं हो पाया।

कृषि-विश्वविद्यालय बंगलौर ने मत्स्योद्योग में स्नातक-स्तर पर पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिया है। केरल तथा कालीकट विश्वविद्याालयों ने भी मत्स्योद्योग के स्नातक-पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिये हैं। कृषि विश्वद्यालय तमिलनाडु, ने भी पाठ्यक्रम बनाना

प्रारम्भ कर दिया है। जवाहरलाल कृषि विश्वविद्यालय जवलपुर में भी मत्स्योद्योग महाविद्यालय प्रारम्भ कर दिया है और चार वर्षो का मत्स्योद्योग स्नातक-पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। इस प्रकार विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा यह कार्य हाथ में लेने से इस क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है।

वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था––प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों, दोनों की ओर से चलाये जा रहे हैं।

(अ) भारत सरकार द्वारा चलाया जानेवाला प्रशिक्षण-कार्यक्रम और संस्थाएँ

1. केन्द्रीय मत्स्योद्योग-प्रशिक्षण-संस्थान बम्बई—यह प्रशिक्षण-संस्थान बम्बई में 1961 से प्रारम्भ किया गया है। यह देश का एक मात्र संस्थान है, जहाँ स्नातकोत्तर-स्तर पर मत्स्य-जैविकी, मत्स्य-आर्थिकी और मत्स्य-शिल्प की शिक्षा दो वर्ष तक दी जाती है। यहाँ प्रतिवर्ष 30 प्रशिक्षणार्थी लिये जाते हैं। इस पाठ्यक्रम में प्राणिशास्त्र के स्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ अधिकांशत: राज्य शासनों के अधिकारी ही प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। नये स्नातकों को, जो मत्स्योद्योग का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते हैं, यह सुविधा बहुत सीमित है।

2. मत्स्योद्योग प्रशिक्षण इकाई-बैरकपुर––स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सन् 1947 में केन्द्रीय आन्तरस्थलीय और सामुद्रिक मत्स्योद्योग-अनुसन्धान-संस्थान प्रारम्भ किये जाने के साथ-साथ प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किये गये थे। सामुद्रिक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तो कालावधि में बन्द हो गया; परन्तु आन्तरस्थलीय प्रशिक्षण अभी भी चल रहा है। यह पाठ्यक्रम अब बम्बई संस्थान के अन्तर्गत ही चल रहा है। यहाँ एक-वर्षीय पाठ्यक्रम के लिए प्रतिवर्ष 50 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवेश की सुविधा है और इन्टर-मीडिएट विज्ञान तथा विज्ञान-स्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ आन्तरस्थलीय-मत्स्योद्योग के विकास और प्रशासन की शिक्षा भी दी जाती है। यहाँ के अधिकांश स्थानों पर राज्य शासन के कार्यकर्ताओं को ही प्रवेश दिया जाता है और नये स्नातकों को इस सुविधा का लाभ कम ही मिल पाता है।

3. अन्तर्देशीय कार्मिक (ओपरेटिव) प्रशिक्षण केन्द्र—यह केन्द्र बम्बई संस्थान के अन्तर्गत ही है। इसमें मौसम का प्रमाण-पत्र प्रशिक्षण पाठ्यक्रम है। इसके अन्तर्गत मत्स्य-पालन का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें प्रतिवर्ष लगभग 80 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवेश की सुविधा है।

4-5 केन्द्रीय मत्स्योद्योग कार्मिक संस्थान कोचीन—यह संस्थान नार्वेजियन-भारत योजना के प्रतिवेदन के आधार पर भारत सरकार ने सन् 1963 में स्थापित किया।

इस केन्द्र में हायर सेकेण्डरी में उत्तीर्ण विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं। इन विद्यार्थियों को विभिन्न प्रशिक्षण कालों की शिक्षा निम्नांकित विषयों में दी जाती है:—

(1) मास्टर फिशरमैन (2) इन्जन ड्राइवर (3) जाल-नाव के शिल्प का ज्ञान (4) नाव बनानेका शिल्प (5) रेडियो टेलीफोन कार्मिक (9) प्रशिक्षक (7) किनारे पर रहने वाले मैकेनिक आदि। इनके अतिरिक्त समय-समय पर विशेष विषयों पर अल्पकालिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं।

देश में कार्मिकों की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए केन्द्रीय-मत्स्योद्योग-बोर्ड ने ऐसे ही तीन और संस्थान स्थापित करने का अभिस्ताव किया है। इनमें से एक केन्द्र मद्रास (तामिलनाडु) में सन् 1968 में प्रारम्भ हो चुका है। इस केन्द्र पर भी कोचीन केन्द्र की भाँति ही प्रशिक्षण दिये जाते हैं। यहाँ भी प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए योग्यता हायर सेकेण्डरी है।

(ब) राज्य सरकारों द्वारा चलाये जानेवाले पाठ्यक्रम

(1) **उच्च प्रशिक्षण**—मत्स्योद्योग-प्रशिक्षण-संस्थान, काकीनाडा आन्ध्रप्रदेश में द्विवर्षीय प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें बीस विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया जाता है। इस स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को राज्य की मान्यता प्राप्त है। दुर्भाग्य से यह केन्द्र बीच में ही बन्द हो गया।

मत्स्योद्योग विभाग आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक (मैसूर) और तमिलनाडु अपने स्नातक अधिकारियों के लिए छः - छः मास के पाठ्यक्रम, मत्स्योद्योग विकास और प्रशासन के लिए चलाते हैं। मध्यप्रदेश में प्रशिक्षण संस्थान स्थापित कर प्राणिशास्त्र विषय में स्नातकोत्तर व्यक्तियों को एक वर्षीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जाता है। इन प्रशिक्षित व्यक्तियों को राज्य में सहायक-मत्स्योद्योग-अधिकारी के रूप में जिलों में नियुक्त किया जाता है।

(2) **सामान्य प्रशिक्षण**—राज्य के मत्स्योद्योग विभाग द्वारा आसाम, बिहार, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा में विभागीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए एक दसमासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम नियमित रूप से चलाया जा रहा है। इसमें मत्स्य-पालन और अन्तर्देशीय-मत्स्योद्योग का प्रशिक्षण दिया जाता है। विभाग में नियुक्ति के लिए चुने हुए व्यक्तियों को भी यह प्रशिक्षण दिया जाता है।

आसाम, बिहार, मैसूर, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल में राज्यों के मत्स्योद्योग-विभाग एक से छः मास तक का प्रशिक्षण-कार्यक्रम समय-समय पर चलाते हैं। ये कार्यक्रम विशेष रूप से ऐसे कर्मचारियों के लिए होते हैं जो स्नातक न हो।

आन्तरस्थलीय मत्स्य-पालन में लगे मछुओं का ज्ञान केवल अनुभव से ही बढ़ता है। कर्नाटक राज्य में इनके नियमित प्रशिक्षण की व्यवस्था कृष्णराजसागर पर की गयी है।

समुद्र में मछली मारने वाले मछुओं के प्रशिक्षण की सुविधा पश्चिमी-तट तथा पूर्वी-तट के सभी राज्यों में नियमित रूप से दी जाती है। इन राज्यों में आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक उल्लेखनीय हैं। यहाँ इन्जन लगी नावों में सफलता पूर्वक मछली मारने की शिक्षा दी जाती है। यह प्रशिक्षण छः से दस मास तक की अवधि का होता है। इन सभी केन्द्रों पर लगभग 700 प्रशिक्षार्थी एक बार में लिये जाते हैं।

इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो जाता है कि मत्स्योद्योग शिक्षा एवं शिल्पज्ञों के प्रशिक्षण की आवश्यकता के महत्त्व को देश में समझा गया है और गतवर्षों में हुई प्रगति के आधार पर देश की मत्स्योद्योग शिक्षा संबंधी नीति निर्धारित की जा सकती है। आज भी कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षण एवं शिक्षा के लिए हमें अन्य देशों में कार्मिकों को भेजना पड़ता है तथापि अब तक की प्रगति उत्साहवर्धक है।

१९

मत्स्य-पालन का आर्थिक-महत्त्व

विकास और वृद्धि के लिए किसी भी कार्यक्रम का मितव्ययी और लाभकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। मत्स्य-पालन का विकास द्रुत गति से होने का प्रमुख कारण, इसमें कम खर्च और अधिक लाभ है। ऐसे व्यक्ति; जिनके पास तालाब और भूमि है, वे सुविधा पूर्वक इन साधनों का अच्छा प्रयोग करके पर्याप्त आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मत्स्य-पालन में व्यापारिक महत्त्व की दृष्टि से मत्स्य-बीज उत्पादन, मत्स्य-बीज संवर्धन तथा मछली के आर्थिक पहलू पर आगे विस्तृत विचार किया जा रहा है, जिससे कि साधारण व्यक्ति भी इसकी उपयोगिता को समझ कर लाभ उठा सके।

मत्स्यबीज उत्पादन

मत्स्य-बीज उत्पादन के दो प्रमुख तरीके हैं:--

1. मौसमी-बाँध प्रजनन (ड्राय बंध)
2. प्रेरित प्रजनन

मौसमी बाँध प्रजनन--मौसमी-बाँध प्रजनन एक सरल तरीका है, जिसमें एक छोटे से बाँध का स्वामी भी सरलता से मनचाही मछली का प्रजनन करा कर, मछली-बीज पैदा कर सकता है, इसका पूर्ण विवरण पृथक् अध्याय में विस्तार से दिया जा चुका है। जिस किसी के पास भी 1/5 से 1/2 हेक्टर के मौसमी-बाँध हों और जहाँ बरसात का पर्याप्त पानी आ सकता हो, यह क्रिया अपनायी जा सकती है। डॉ० ज्ञान प्रकाश दुबे (1968–69) के मतानुसार प्रति लाख स्पान (क्षुद्र मीन) उत्पादन पर केवल रु० 63.50 पै० ही व्यय आता है और एक लाख स्पान का विक्रय मूल्य रु० 200 से 250 तक रहता है। उत्पादन-व्यय की विस्तृत जानकारी नीचे सारणी एक में दी जा रही है।

सारणी—1

मौसमी बाँध में मत्स्य-बीज-उत्पादन का व्यय-पत्रक—

अनावर्ती व्यय	(रुपया)	आवर्ती व्यय	(रुपया)
1. छोटे बाँधों या बंधियों का निर्माण	6500/-	1. संग्रह एवं परिवहन उपकरण	400/–

2.	स्टोर और देखभाल के कमरे का निर्माण	3500/–	2.	चार मास के लिए चौकीदार	240/–
3.	प्रजनक रखने के दो तालाबों का निर्माण	5000/–	3.	बीज एकत्रित करने के लिए श्रमिकों पर व्यय	100/–
			4.	अण्डे सेने के उपकरणों पर व्यय	1660/–
			5.	अन्य विविध व्यय	200/–
			6.	बंधिया का रख-रखाव	750/–
	कुल :	15000/–		कुल :	3350/–

(ब) एक बार के प्रजनन में 50 कि० मादा से उत्पन्न क्षुद्र-मीन (स्पान)—

1. एक किलो की मादा से 2 लाख अण्डे की प्राप्ति मान कर —— 100 लाख अण्डे
2. उपरोक्त क का 90% निषेचन —— 90 लाख
3. उपरोक्त ख की 60% प्राप्ति —— 54 लाख
4. उपरोक्त ग का 50% क्षुद्रमीन (स्पान) प्राप्त —— 27 लाख
   अथवा 25 लाख

(स) इस प्रकार के चार प्रजनन एक मौसम में कराने पर 25 लाख × 4 = 100 लाख स्पान का उत्पादन प्रति मौसम हो सकता है।

(द) उत्पादन व्यय––

1. अनावर्ती व्यय का 1/5 = 3000/–
2. आवर्ती व्यय 3350/–

योग : 6350/–

100 लाख क्षुद्रमीन (स्पान) का उत्पादन व्यय रु० 6350=00 है अर्थात् प्रतिलाख उत्पादन व्यय रु० 63.50 होता है।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार मौसमी-बाँध से जो मत्स्य-बीज उत्पादन होता है, वह शत-प्रतिशत शुद्ध होता है तथा इसको बड़ी सरलता से रु० 250 प्रतिलाख के भाव से बेच कर प्रति वर्ष 25,000 रुपये तक की आय सरलता से प्राप्त की जा सकती है। इस बीज की माँग बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त प्रजनन-बाँध में जो बीज रह जायगा, उससे अपने तालाब के सञ्चय के लिए, बिना मूल्य अंगुलिकाएँ मिल जायँगी।

प्रेरित-प्रजनन––प्रेरित-प्रजनन की विधि भी सरल है। इसमें थोड़े से पूर्व ज्ञान, प्रशिक्षण और अनुभव के बाद 80–90 प्रतिशत तक सफलता मिल सकती है। इसके लिए तैयार नर-मादा ही प्रमुख आवश्यकता है। व्यापारिक दृष्टिकोण रख कर इस तरीके

से भी 100 लाख क्षुद्र-मीन (स्पान) उत्पन्न कराया जा सकता है। प्रेरित-प्रजनन पर उत्पादन-व्यय कम होता है क्योंकि इसमें प्रजनन बाँध आदि का निर्माण व्यय नहीं होता है। केन्द्रीय अन्तर्देशीय मत्स्य-अनुसंधान संस्थान में हुए प्रयोगों के आधार पर प्रेरित-प्रजनन से उत्पन्न क्षुद्र-मीन (स्पान) का मूल्य प्रतिलाख रु० 38.60 पैसे आँका गया है। राजस्थान में यह उत्पादन व्यय 35 से 40 रुपये के बीच आता है। बाजार में इसका विक्री भाव मौसमी-बाँध से प्राप्त क्षुद्र-मीन के समान मिलता है। संवर्धन करने वाले इसी स्थिति में क्षुद्र-मीन (स्पान) क्रय कर लेते हैं।

शिशुमीन (फ्राय) का उत्पादन--क्षुद्र-मीन (स्पान) को क्रय कर शिशुमीन अवस्था (फ्राय) तक संवर्धन करके बेचना भी बहुत लाभप्रद है। इस धन्धे से वर्षाकाल के दो मास में दो या तीन फसलें सरलता से प्राप्त की जा सकती हैं। यदि पानी अच्छी मात्रा में उपलब्ध है और मई-जून से लेकर सितम्बर-अक्टूबर माह तक मिल सके तो एक हेक्टर का संवर्धन-तालाब बनाकर एक फसल में छः से आठ लाख शिशुमीन तैयार किये जा सकते हैं। प्रतिवर्ष दो फसलों में लगभग 12 से 15 लाख शिशुमीन प्रति हेक्टर उत्पन्न किये जा सकते हैं। शिशु मीन संवर्धन का व्यय विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। राजस्थान में यह व्यय 400 रुपये से 700 रुपये प्रति लाख आता है। बंगाल में यह व्यय 500 रुपये प्रति लाख आया है। मध्यप्रदेश में यह व्यय लगभग 800 रु० आता है। परन्तु शिशु-मीन (फ्राय) का विक्रय मूल्य सारे देश में 1200 रु० प्रतिलाख से कम नहीं है। कहीं-कहीं यह 1500 रु० प्रतिलाख भी है। इस प्रकार एक हेक्टर के संवर्धन जलाशय से अधिकतम व्यय और न्यूनतम विक्रय मूल्य के आधार पर प्रतिवर्ष 8–10 सप्ताह में 6000 रु० का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। एक हेक्टर के संवर्धन-तालाब का निर्माण और पानी की व्यवस्था का खर्च उसके अतिरिक्त होगा।

मत्स्य-पालन--बारहमासी तालाबों का अच्छा उपयोग मत्स्य-पालन द्वारा किया जा सकता है। सामान्यतः सही मत्स्यपालन व्यवस्था अपनाकर इन तालाबों में प्रति हेक्टर 1500 किलो मछली का उत्पादन होता है। एक हेक्टर की इकाई के लिए भारत शासन की मत्स्यपालक विकास अभिकरण योजना में जो आधार आय-व्यय पत्रक तैयार किया गया है, वह नीचे सारणी में दिया जा रहा है :—

सारणी—2

एक हेक्टर तालाब का आय-व्यय पत्रक—

(अ) वार्षिक आय	
1500 किलो ग्राम मछली का उत्पादन तथा इसको चार रुपये प्रतिकिलो के भाव से बेचना	6000/–

(ब) वार्षिक व्यय—

1.	दस हजार मत्स्य-बीज का मूल्य, भाव चालीस रुपये प्रति हजार	400/–
2.	मछली आहार, खाद आदि पर व्यय	850/–
3.	मछली निकालने पर श्रमिकों का वेतन	800/–
4.	तालाब की मरम्मत एवं जाली आदि	100/–
5.	मछली बिक्री पर देय कमीशन दर पाँच प्रतिशत	300/–
	कुल व्यय :	2450/–

(स) शुद्ध लाभ—

वार्षिक आय — वार्षिक व्यय = शुद्ध लाभ

6000/- — 2450/– = 3550/–

इसके अनुसार प्रतिवर्ष प्रति हेक्टर 3550 रुपये का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। यह लाभ सामान्य परिस्थितियों में सभी जगह कमाया जा सकता है। यदि मत्स्य-पालक अधिक लाभ कमाना चाहता है, तो रासायनिक एवं अन्य खादों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करके उत्पादन प्रति हैक्टर 3500 से 4000 किलो तक बढ़ाया जा सकता है। मत्स्य-पालन के विविध ढंग और तकनीकी मार्गदर्शन से भी इस क्षेत्र में लाभ उठाया जा सकता है।

अधिक उत्पादन के लिए सघन एवं मिश्रित मत्स्य-पालन विधि अपनानी आवश्यक है। भारतीय मत्स्य-वैज्ञानिकों ने जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है; उसमें अधिक मत्स्य-बीज सञ्चय, पर्याप्त खाद, मिश्रित पालन में अधिक से अधिक मत्स्य प्रजातियों का पालन और मछली-आहार का उपयोग प्रमुख है। इसका लाभ कार्यकर्ता और मत्स्यपालक अनुभव से बढ़ा सकते हैं। सघन मत्स्यपालन से प्रतिवर्ष प्रति हेक्टर शुद्ध लाभ लगभग 12000 रुपये तक प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे ही एक प्रयोग का सम्पूर्ण विवरण, मत्स्य-पालकों के मार्गदर्शनार्थ सारणी तीन में दिया जा रहा है। इसमें पूर्ण विवरण प्राप्त कर मत्स्य-पालक सीधे लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

सारणी–3

एक वर्षीय सघन एवं मिश्रित मछली-पालन का एक हेक्टर तालाब का आय-व्यय पत्रक

(अ) वार्षिक आय—

4200 किलो मछली का उत्पादन कर उसको 3.75 रुपये की दर से बेचा	15750/–

(ब) वार्षिक व्यय

1.	5 हजार अंगुलिकाओं का मत्स्य (100 रु० प्रति हजार की दर से) कतला रोहू मिरगल, सिलवर कार्प, ग्रासकार्प, कामनकार्प, तथा गैरामी का बीज सञ्चय किया।	500/–
2.	25000 किलो प्रांगारिक खाद (दो मास के अंतर से बराबर मात्रा में दिया गया), श्रमिक और परिवहन व्यय सहित	345/–
3.	अप्रांगारिक खाद 1725 किलो (प्रतिमास बराबर मात्रा में दिया) एवं परिवहन व्यय	980/–
4.	कृत्रिम आहार $6\frac{1}{2}$ किलो हेक्टर दिन के हिसाब से दिया गया	950/–
	(अ) 1200 किलो सरसों की खली	
	(ब) 1200 किलो चावल की भूसी	
5.	ग्रासकार्प का आहार-व्यय	250/–
6.	प्रतिमास जाल चलाने और नमूना लेने पर श्रमिक व्यय	375/–
7.	तालाब की तैयारी मरम्मत, जाली आदि	100/–
8.	जालों का मूल्यापकर्ष	500/–
		कुल व्यय = 4000 रुपये

(स) शुद्ध लाभ—

वार्षिक आय	वार्षिक व्यय	शुद्ध लाभ
15750/–	4000/–	11750/–

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि तालाब के स्वामियों को अब यह समझ लेना चाहिये कि वे तालाब के सही उपयोग और तकनीकी व्यवस्था करके अपने लिए आय प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही साथ अपने गाँव और आस-पास के मछुओं को धन्धा देने की भी उनके पास क्षमता है। पानी का साधन समीप होने से अनुर्वर भूमि द्वारा भी उत्पादन और आय प्राप्त की जा सकती है।
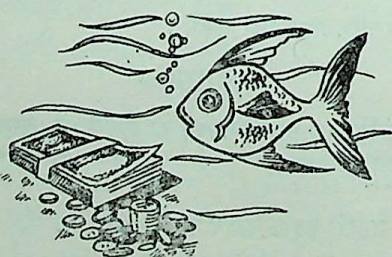
● परिशिष्ट—1

शब्दानुक्रमणिका

अंड कला	Egg membrane
अंड जनन (क्रि)	Spawn (v)
अंड जनन समय	Spawning Time
अंडा	Egg
अंडाकार	Oval
अंडाशय	Ovary
अंडाज्जनन	Hatching
अंडौघ (सं)	Spawn (N)
अंडौघ-जनक	Spawner
अंडौघ-जनन	Spawn
अंतर विकास	Incubation
अंतस्तर	Endoderm
अंवीक्ष्य पादप प्रजाति	Micro-vegitation
अंवीक्षा एवं विभ्रम	Trial and error
अंशिरोग्राह	Angle fish
अंशुमय, अंशुवत	Filamentous
अंस चिह्न	Shoulder Spot
अखंडितांग (अनुवर्ग)	Ostracod
अग्र	Anterior
अन्वीक्ष्य दृश्य	Microscopic
अधर	Ventral
अधिकतम	Maximum
अधिकोण	Obtuse
अधिप्लवन मार्ग	Spillway
अधोवर्ती	Inferior

अधोवसानिक	Subterminal
अध्यनोविद्ध	Super Saturation
अनति संपीड़ित	Moderately Compressed
अनुकूलतम	Optimum
अनुप्रस्थ	Transverse
अनुभवजन्य	Empirical
अनुभवाश्रित	Empirical
अनुभेदन	Saturation
अनुरूपजाति	Compatible Species
अनुवर्ग	Subclass
अन्वायाम	Longitudinal
अन्वीक्षा योग्य	Fit for trial
अप खंडन	Stripping
अप्रांगारिक	Inorganic
अभिजनक	Breeder
अभिपोषण तड़ाग	Rearing Pond
अभिरक्षणोपाय	Curative measures
अभिलिखित	Recorded
अभिलारी	Adhesive
अभिस्ताव	Recommendation
अभ्यागत प्रजातियाँ	Exotic Species
अभ्यागत मछलियाँ	Exotic Fishes
अम्ल	Acid
अम्लता	Acidity
अवपंक	Sludge
अवपीत हरि	Olive green
अवस्थापन	Conditioning
अवात जीवी	Anaerobic
अवात समुंद्रित या मुद्रित (हवाबन्द)	Hermatically Sealed
असाधारण	Abnormal
अस्थिमय	Osseous

अस्थिर जल	Lotic Waters
अहिंस्र	Non-Predator
अक्षत जल	Virgin Waters
अक्षिका	Ocellus
अंगुलिका	Fingerling
अंगोदीय	Carbohydrates
आंग्ल	English
आक्राम्य	Vulnerable
आखेट मीन	Sporting fish
आधान	Container
आधार तत्त्व	Basic Components
आधूसर हरित	Greyish green
आंत्र कुल्या	Gut
आपातिक	Emergency
आप्यका	Algaee
आप्यका आवर	Algal-bloom
आप्यका मलफेन	Algal seum
आरक्षित क्षार	Alkaline reserves
आलंकारिक मीन	Ornamental fish
आलगत्व	Viscosity
आलवण	Brackish
आविलता	Turbidity
आविलमान	Turbidity meter
आश्च्याव	Seepage
आह्लासी प्रत्याय	Diminishing return
आहार	Diet
आहार शृंखला	Food chain
इल्ली	Larva
उग्र पिंगी	Acriflamin
उत्तर हनु	Maxillary
उत्थापक	Elevator

उत्प्रवाही	Effluents
उत्प्लावी	Buoyant
उदरच्छद	Peritonium
उदरच्छेदीय	Peritonial
उदरपक्ष	Belly fin
उदरपाद	Gastropod
उद्‌जन शुल्वेय	Hydrogen Sulphide
उद्‌जनायन समाहार	Hydrogen ion concentration
उद्दीपन	Stimulation
उदुब्ज	Convex
उद्‌नीरक अम्ल	Hydrochloric Acid
उद्र, जल-बिडाल	Otter
उन्मग्न	Emergent
उपचारीय विधि	Curative measures
उपनदिका	Creeks
उपस्थापना	Presentation
उपह्रद	Lagoons
उपागम्य मात्रा	Appreciable quantity
उर पक्ष	Breast fin
उर्वरक	Fertilizer
उर्वरण	Fecundation
उर्वरता	Fecundity
उष्मकरण	Dissipation
उष्मप्रदेश	Tropical
ऊति	Tissue
ऋतुकालिक	Seasonal
एककोशीय	Unicellular
एकवर्षीय	Yearling
एनावस प्रजाति	Anabus Spp.
औदासीन्य या विराग	Apathy
किंचित्	Slight

कुंठित	Blunt
कच्छ	Marsh
कठोर	Hard
कण	Grane, Grannular
कर्णिनिवर्ग	Crustecea
कर्दम उत्पत्तिज	Mud formation
कर्ष जाल	Townet
कर्षण क्रिया	Cultural practice
कलुषीकरण	Pollution
कवक	Fungus
कक्षस्थ, कक्षवर्ती	Axillary
कारक	Factors
कारण्ड	Duck
कारण्ड घास	Duckweed
कीट	Insect
कीट-भक्षी	Insectivorous
कीलन कोण	Fishing angle
कुकुष्पृष्ठ	Humpback
कुप्यातित	Galvanised
कृमि	Worm
कृषियोग्य	Cultivable
कृत्रिम भोजन	Artificial food
केवल	Exclusive
कोष्ठ	Cyst
कोष्ण	Temperate
क्रकच	Serrated
क्रव्याद	Carrivorons
कीटघ्न	Insecticide
क्लीवता	Nutrality
क्लोम	Gill
—आवरण	Gill cover

–अंशु	-filament
–दल	-lamina
–दरी	-slit
–कला	-membrane
–जाल	-net
–अपक्षय	-rot
खंड	Lobes
खंडित	Serrated
खनिजायन, खनीजीकरण	Mineralisation
खाद	Manure
खींचनेवाली मशीन	Drag Scythe
गंभीर, गहन	Deep
गतिविधि	Movement
गमछा	Gamcha
गलफड़ा	Gill
गृहस्थान तड़ाग	Homestead pond
गोलाकार	Spherical
गौण शफर	Minor carp
ग्रभांकुश	Grapnel
घनिष्ठ संबंध	Intimately associated
घाऊपन	Voracious
घाटा	Nape
घातक	Lethal
घोंघा	Snail
चतुःस्पर्शा	Four barbels
चयापचय	Metabolic
चर्मशफर	Leather carp
च्यवन	Leakage
चारा मछली	Forage fish
चारा लगाना	Bait
चिंगट	Shrimps

चिपकाने वाला या अभिलारी	Adhesive
चूना (क्रि.)	Seepage, Leakge
चूर्ण प्रावार	Molluse
चूर्ण बनाना	Mascerate
चूषक	Sucker
चोट	Injury
छादन/छायाकरण	Shading
जल काक	Cormorant
जलग्रह क्षेत्र	Catchment area
जल निवारण	Dehydration
जल पिंशु	Water flea
जल वर्णना	Hydrography
जल जीवालय	Aquaria
जलीय श्वसन	Aquatic respiration
जारक	Oxygen
जारक जीवी	Aerobic
जारक रम्भ	Oxygen cylinder
जीव किण्व	Ferments
जीव जनित	Biogemic
जीवति	Vitamins
जीवन चक्र	Life cycle
जीवनावश्यक	Vital
जीव प्लवक	Zooplankton
जीव भौतिकीय	Biophysical
जीव रसायनज्ञ	Biochemist
जीव-रासायनिक जारजावश्यकता (जी०जा०आ०)	Biochemical Oxygen Demand (B. O. D.)
जैविकी नियन्त्रण	Biological control
झल्लरित	Fringed
झल्लरीवत	Fimbriated
डिम्भ	Larva

डिम्भ भक्षी मीन	Larvicidal fish
तटवर्ती	Coastal
तत्स्थानीय (स्वदेशी)	Indigenous
तनुशीर्ष प्रजाति	Leptocephalus
तर्कु आकार	Spindle shaped
तल प्रणाल	Surface drainings
तल प्लावी	Pelagic
तल भोजी	Surface feeder
तलरूप	Topography
तित्काति	Ammonia
तिरछा/तिर्यक	Oblique
तुण्ड	Snout
तुण्डास्थि	Rostral
तैलगोलिका	Oil globule
तैलोध	Oil emulsion
तृणक	Weed
तृणक मीन	Weed fish
दहातु	Potassium
दक्षता	Efficiency
दीर्घकालीन तड़ाग	Long seasonal pond
दीर्घ-शल्क शफर	Mirror carp
दीर्घायित	Oblong
दुर्बल विलेयन	Weak solution
द्रुतरोही जाति	Fast growing species
द्रुत श्यान या प्रशीतन	Quick freezing
दूषित मत्स्य	Spoiled fish
दैहिक	Physiological
दोलाण्य प्रजाति	Oscillatoria
नदी मन्द प्लवक	Limno plankton
नदीमुख भूमि	Deltas
नाशक चक्र	Destructive cycle

निचला	Ventral, Inferior
नितल	Bottom
—मत्स्य जाति	-fish fauna
—भोजी	-feeder
—वासी	-Benthic
निदेशक योजना	Pilot project
निमग्न	Submerged
निमज्जी	Demersal
नियामक	Regular
निर्देशक	Indicator
निर्यासोदीय	Musilaginous
निलम्बित	Suspended
निवारक उपाय	Preventive measures
निश्च्याव	Oozing
निषेचन	Fertilization
निषित्क	Fertilized
निष्प्रवाह जल	Stagnant water
निष्क्रम	Outlet
निस्सारण	Extract
नीरजित	Chlorinated
नीलहरि आप्यका	Blue green algae
न्यासर्ग	Hormone
—तृणक नाशक	Hormone weedicide
न्युब्ज	Concave
न्यूनतम	Minimum
न्यून संग्रह	Under stocking
पंक-उत्पत्ति	Mud formation
पंकीकरण	Puddeling
पट्ट	Board
—स्फुरण	flash
—प्रदर्शक	-guide

पनकौआ	Cormorant
परजीवी	Parasite
परजीव्याक्रमण	Parasitization
परारोही	Epiphyte
परिपाचन	Assimilation
परिमाणवर्ग	Size group
परिमेय	Rational
परिरक्षण	Preservation
परिवहण/परिवाह	Circulation
परिशुद्ध शुषव	Absolute alcohol
परिशुद्धता	Accuracy
परिस्थिति संतुलन	Ecological Balance
पश्चकपाल	Occipital
पश्चजल	Back water
पर्णलताया	Rotenone
पर्णलता चूर्ण	Derris root powder
पक्ष	Fin
–रश्मि	-Fin-ray
–पश्च	-Anal fin
–पुच्छ	-Caudal fin
–पृष्ठ	-Dorsal fin, Back fin
–अपक्षय	-Finrot
–अधर	-Ventral fin
–अंस	-Pectoral fin
पक्ष्मता	Ciliated
पारदर्शी	Transparent
पारिस्थिक	Ecological
पावपत्र	Filter paper
पार्श्वरेखा	Lateral Line
पार्श्व संपीड़ित	Laterally compressed
पीठिता या भस्मीयता	Basicity

पीत	Yellow
पीतक स्यून	Yolk bac
पीलाभक्षी जातक	Yellow grab
पुच्छचिह्न	Caudal spot
–वृन्त	-Caudal peduncle
–वस्त्र	-Tail cloth
पुतली	Pupil
पूयन	Putrification
पृश्नि प्रजाति	Perch
पेशीय	Muscular
पैत्रक	Genetic
पैत्रक पालन पोषण	Parental care
पोषणचक्र	Nutrient cycle
पोषक	Nutrients
पौष ग्रन्थि	Pituitary gland
पौष्टिक	Inerigorating
प्रचण्ड	Virulent
प्रचिंगट	Prawns
प्रचुर	Abundant
प्रगर्तीथन	Emerginate
प्रजनक	Breeder
प्रजनन तड़ाग	Breeding pond
प्रजनन समय	Breeding time
प्रजनन स्थल	Breeding ground
प्रजाति	Species
प्रजीर्णक मिट्टी	Muck soil
प्रजीवा	Protozoa
प्रत्यारोधक क्रिया	Buffering action
प्रथशीर्ष वंश	Gobiidae
प्रधान शफर	Major carp
प्रवद्धावस्था	Advanced stage

प्रभेद	Variety
प्रमीलिक भेषज	Narcotic drug
प्रयोग	Application
प्रवर्दीजाल	Scoop Net
प्रबल विलेयन	Strong solution
प्रविलीन जारक	Dissolved oxygen
प्रवेशद्वार	Inlet
प्रशीतक	Refrigerator
प्रसर	Protoplasm
प्रसृत या प्रसरण	Diffused
प्रह्लासिक शाकाणु	Reducing bacteria
प्रक्षेत्र	Farm
प्रांगारिक तत्व	Organic matter
प्राकृतिक वितरण	Natural distribution
प्राणस्थगन	Asphyxiation
प्राणकीय आपरीक्षण	Zoological survey
प्राण जात	Fauna
प्राण जातीय आपरीक्षण	Faunistic survey
प्रायद्वीप	Peninsular
प्रारूपिक	Typical
प्रावैधिक	Technical
प्रोभूजिन	Protein
प्लवक	Plankton
–प्राणि	-Zoo
–पादप	-Phyto
प्लावी तृणक	Floating weed
वक	Herons
बहुप्रज	Prolific
बहुप्रजता	Fecundity
बाँध	Dikes
बारहमासी बाँध	Wet bundh, Perennial

बाह्य	Extraneous
भासंश्लेषण	Photosynthesis
भास्वीय	Phosphate
भूतलरूप	Topography
भूयाति	Nitrogen
भूयीय	Nitrate
भ्रूण	Embryo
भेषजमीन	Doctor fish, Tinca
भोज्यमीन	Table fish
भौत रसायनिक	Physicochemical
मत्स्य-अंडौघ	Fish spawn
मत्स्य-अधिकार	Right to take fish
मत्स्य अभिसाधन	Fish curing
मत्स्य अभिसाधन प्रांगण	Fish curing yard
मत्स्य उपकरण	Fishing implements
मत्स्य खाद	Fish guano/Fish mannure
मत्स्य-ग्रहण	Occupation of fish taking
–ग्रहण काल	-Fishing season
–ग्रहण अधिकार	-Right of taking fish
–ग्रहण पोत	-Fishing vessel
–ग्रहण संभार	-Fishing gear
–चूर्ण	-Fish meal
–तड़ाग	-Fish pond
–धूमन	-Fish smoking
–पंजर	-Fish trap
–पालन	-Fish culture, Pisciculture
–बीज	-Fish seed
–भोजी	-Piscivorous
–अन्वेषण	-Fishery research
–समंक	-Fishery statistics
–संवर्धन	-Pisciculture, Fish culture

—यान	-Fish carrier
—यकृत तैल	-Fish liver oil
—लूका	-Fish louse
—वास्ति —वाताशय	-Fish bladder, Fish maws
—वाहक	-Fish van
—विक्रेता	-Fish monger
—विधायन	-Fish processing
—सुपर्ण	-Fish eagles
—क्षेप्य	-Fish waste
मथित	Centrifuged
मथित्रण	Centrifuging
मरल	Murrel
मलप्रवाह	Sewage
मलबा	Debris
मलिनता	Turbidity
मलिना	Mullet
मलिना पालन	Mulletry, Mullet culture
मांसभक्षी	Carnivorous
महापादप प्रजाति	Maero vegetation
महाशन	Voracious
मिश्रित मत्स्यपालन	Mixed fish farming
मीनअस्थि	Fish bone
मीन रंक	King fisher
मीन शल्क	Fish scale
मीनिका	Minnow
मीनोत्पन्न पदार्थ	Fish products
मूल्यांकन	Appraisal
मृदा	Soil
—अधो	-Subsoil
—आक्लिन्न	-Humeous clay

–ऊपरी	-Surface soil
–चिकनी	-Claycy soil
–जलौढ़	-Alluvial soil
–जीर्णक	-Peat soil
–खतीली	-Marl soil
–प्रांगारिक	-Organic soil
–रंध्रमय	-Porous soil
–लवण	-Saline soil
–मृदावंध्यक	-Soil sterilents
–समृंदामय	-Loamy soil
–सुकोमल	-Mellow soil
–क्षारीय	-Alkaline soil
मौसमी	Seasonal
यांत्रिक उपघात	Mechanical injury
यांत्रिक क्रियाएँ	Mechanical device
यूथवासी	Gregarious
यूरोपीय	European
रंगाभर	Chromatophore
रंभाकार	Cylindrical
रचनात्मकचक्र	Constructive cycle
रसायनिक	Chemical method
रक्षकभोजन	Protective food
रुण्डन	Truncate
रूपान्तरण	Conversion
रोगग्राही	Susceptible
रोगाणुनाशक	Disinfect
रोमघास	Hair weed
रोहि प्रश्नि	Climbing perch
लम्बवत	Vertical
लघुसामयिक	Short seasonal
लवणता	Salinity

लांगलन	Anchorage
लैंगिक परिपक्वता	Sexual maturity
वपा	Adipose
वपा पलक	Adipose eyelid
वसा निवारक	Defating
वाणिज्य	Commercialization
वाताप्रवेश	Airtight
वाति	Gas
वातिरोग	Gas-disease
वायव्य दृष्टि	Aerial vision
वायु जलानुकूल	Acclimatisation
वायु नर्तक वंशीय	Chironemid
वायु श्वसन	Air breathing
विडाल मत्स्य	Cat fish
विभासी	Iridesence
विभूयक शाकाणु	Denitrifying bacteria
विरल	Sparse
विरलन	Thining
विरलावृत	Sparsely covered
विलेय	Solvable
विबन्धन	Decomposition
विशेष लक्षण	Characteristics
विषालु	Toxic
वृषमीन	Breeder, Brood fish
व्यपघृष्ट	Detritus
व्यांधपतंग	Dragonfly
शफर	Carp
शल्क	Scale
शल्क शफर	Scale carp
शल्य	Spine
शत्रुतापूर्ण	Inimical

शाक-भोजी	Herbivorous
शाकाणु, शाकाणवः	Bacteria
शाखा	Prongs
शिकार	Sporting
शिशुमीन	Fish fry
शुक्ता	Acetone
श्यान	Frozen
श्लिषमय	Gelatinous
श्लेषमीय	Colloidal
श्लेषमल	Mucous
षट्कोण	Hexagonal
संग्रहण तालाब	Stocking pond
संगत अनुरूप	Compatibles
संघातचारी	Gregarious
संभावना	Contingency
संयोजन क्षमता	Combining capacity
संस्पर्श तृणक नाशक	Contact Herbicide
संवर्धन	Culture
संवर्धन जलाशय	Nursery pond
संक्षारण	Corroding
क्षेपावृत्ति	Recapitulation
संकेन्द्रन	Concentration
सजीव मत्स्य	Live fish
सड़ना	Decomposition
सड़ी मछली	Spoiled fish
सापेक्ष क्षमता	Relative efficiency
समरुप मिश्रक	Homogenisor
समस्त लम्बाई	Total length
समू अंक	PH
समुद्रोच्छाय	Altitude
समुपयुक्तता	Fitness

सदा, सतत्	Invariably
सरल	Plain
सर्पमीन	Eels, Angiulla
सर्पशीर्ष प्रजाति	Murrels, Ophicephalus
सर्वभक्षी	Omnivorous
सहगामी	Concomitant
सहचारी	Association
सहायक श्वसनांग	Accessory Respiratory organs
सहिष्णुता	Tolerance
सहिष्णुरोही	Hardy
सागर संगम मत्स्य	Estuarive fish
सागर संगम मास्त्यिकी	Estuarive fishery
साद	Silt
साद आवरण	Silting up
सादपूर्ण	Silted
सादमय जल	Siltladen water
सादृश्य	Affinity
समजनि	Strains
सामान्यकरण	Generalisation
साम्य	Equilibrium
संचित क्षार	Alkaline reserves
सीमित संपीड़ित	Moderately compressed
सूक्ष्मदर्शी	Microscope
सूत्रवत्	Filamentous
सैद्धान्तिक विचार	Theoritical Consideration
स्कन्ध चिन्ह	Shoulder spot
स्कम्भ	Column
स्कम्भ भोजी	Column feeder
स्तर-विन्यास	Straitification
स्थायीकरण	Stabilisation
स्थिर जल	Lentic waters

स्पर्धा	Compete
स्पर्शी	Barbels
स्वजातिभक्षी	Cannitalistic
स्वतन्त्र प्लावी	Free Floating
स्वतन्त्र विचरण	Free movement
स्वदेशी अभिजातियाँ	Indiginous fauna
स्वव पीतारक्त	Cream
हलास्थि	Vomer
हिंगुलरक्त	Vermilion red
हिंस्र	Predator
हिंस्र मीन	Predatory fish
क्षारीय	Alkaline
क्षुद्र प्राणी	Animalcule
क्षुद्रमीन	Fish spawn
क्षैतिज	Horizontal